वर्ष-7 अंक-10

ISSN 2231 - 2455

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विज्ञान पत्रिका

विज्ञान-गंगा

2017

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

BANARAS HINDU UNIVERSITY

सर्व विद्या की राजधानी

हिन्दी प्रकाशन समिति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

''मुझे इत्र की गन्ध पसन्द नहीं, मुझे शील की गन्ध, चरित्र की गन्ध,
धर्म की गन्ध, सबसे अधिक विश्वविद्यालय की सुगन्ध पसन्द है।''

-महामना पं. मदन मोहन मालवीय

विज्ञान-गंगा 2017

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विज्ञान पत्रिका

वर्ष - 7 अंक - 10 2017 ISSN 2231 - 2455

मुख्य संरक्षक

प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी

कुलपति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सलाहकार मण्डल

डॉ. नीरज त्रिपाठी, कुलसचिव, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. एस.बी. पटेल, वित्त अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. बच्चा सिंह, निदेशक, विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. एस. एन. उपाध्याय, भूतपूर्व निदेशक, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. एस. एन. ठाकुर, पूर्व अध्यक्ष, भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. शशि भूषण अग्रवाल, पूर्व समन्वयक, हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. रमा शंकर दुबे, पूर्व कुलपति, तिल्का माझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

प्रो. मधुलिका अग्रवाल, अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. शिव गोपाल मिश्र, प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद

प्रो. राम सन्मुख उपाध्याय, वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. राणा प्रताप सिंह, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. श्रवण कुमार तिवारी, पूर्व सह-निदेशक, हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. अशोक कुमार, जैव प्रौद्योगिकी स्कूल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद

प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र, होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, टी.आई.एफ.आर., मुम्बई

डॉ. डी.डी. ओझा, जोधपुर

संजय गोस्वामी, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, अणु शक्ति नगर, मुम्बई

शुकदेव प्रसाद, इलाहाबाद

मुहम्मद खलील, जामिया नगर, नई दिल्ली

प्रो. आर. पी. मलिक, अध्यक्ष, भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. सुनील कुमार सिंह, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. बी.के. सिंह, भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डा. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डी.डी.ओ.

संजय कुमार

उप-संपादक

डॉ. देवेश कुमार गुप्त

डॉ. दया शंकर त्रिपाठी

प्रकाशक

हिन्दी प्रकाशन समिति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सम्पर्क

समन्वयक

हिन्दी प्रकाशन समिति (भौतिकी प्रकोष्ठ)

द्वितीय तल, हिन्दी भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005 (भारत)

फोन : 0542-6701424, ई-मेलः vigyanganga.bhu@gmail.com

पत्रिका में प्रकाशित लेखों व कथन के लिए सम्पादक, प्रकाशक अथवा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रशासन का सहमत या असहमत होना आवश्यक नहीं है। वे सभी लेखकों के अपने विचार हैं। पत्रिका में प्रकाशित कुछ छायाचित्र इन्टरनेट से लिये गये हैं जो जनहित में उपयोग किये गये हैं। इन छायाचित्रों के लिए हम सम्बन्धित छायाकारों के आभारी हैं।

अनुक्रमणिका

विज्ञान-गंगा अंक-10 (जनवरी-फरवरी 2017)

1. मंगलयान और मंगल ग्रह पर स्पेक्ट्रोस्कोपी की दिलचस्प कहानी
प्रो. सूर्य नाथ ठाकुर 6-16

2. त्वरित डी.एन.ए. संपादन की नई तकनीक है क्रिस्पर
मंजुलिका लक्ष्मी एवं प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव 17-19

3. मानव शरीर में वसा अम्लों के प्रभाव तथा आवश्यकता
संजय गोस्वामी 20-23

4. न्यूरोट्रांसमीटर : हमारे मन और मिजाज के निर्धारक
प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र 24-28

5. अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री स्काट केली और उनका अन्तरिक्ष रिकार्ड
काली शंकर 29-33

6. वाराणसी में बढ़ता शहरीकरण बन रहा है गंगा प्रदूषण का कारण
शिखा शर्मा एवं प्रो. मधुलिका अग्रवाल 34-35

7. पृथ्वी के पर्वतों एवं पठारों का रहस्य
प्रो. रामाश्रय प्रसाद सिंह 36-41

8. क्षोभमंडलीय ओजोन द्वारा फसलों की उत्पादकता पर पड़ता प्रभाव
प्रो. शशि भूषण अग्रवाल एवं डॉ. निवेदिता चौधरी 42-44

9. आखिर क्या है 'इसरो' की चुनौतियाँ?
शुकदेव प्रसाद 45-50

10. ग्रामीण भारत में बायोमास ईंधन का उपयोग– स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव
प्रो. मुरारी लाल माथुर 51-53

11. सामाजिक भूमिका में विज्ञान और गाँवों के विकास की चुनौती
प्रो. राणा प्रताप सिंह 54-57

12. ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान
अनिल कुमार मिश्र 'विज्ञ' 57

13. भारतीय उपमहाद्वीप में भूकम्पीय अनुमान के कुछ महत्वपूर्ण पहलू
डॉ. संजय कुमार तिवारी एवं डॉ. आशुतोष दूबे 58-62

14. एंटीबायोटिक्स : घटता जादू, बढ़ते खतरे
डॉ. विनोद गुप्ता 63-66

15. विज्ञजनों का है ऐलान, वृक्ष मित्र अरु गुरु महान
अनिल कुमार मिश्र 'विज्ञ' 66

16. विज्ञान में विनोद की फुआर : आईजी नोबल पुरस्कार
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी 67-71

17. कार्बन फुटप्रिंट को घटाकर अपनी धरती को सँवारें
मनीष मोहन गोरे 72-74

18. पुष्प निर्जलीकरण की विधि एवं गृह उद्योग में उपयोग
अतुल बत्रा 75-77

19. एक तारे की अंतिम साँस : सुपरनोवा!
मिलिन्द साव 78-80

20. स्वरोजगार हेतु करें फलों एवं सब्जियों का प्रसंस्करण
डॉ. राम रोशन शर्मा 81-84

21. माइकोटॉक्सिन : मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव
मनोज कुमार चितारा, डॉ. चेतन केसवानी एवं प्रो. एच.बी. सिंह 85-86

22. नाभकीय सुरक्षा पर खतरा
विजन कुमार पाण्डेय 87-90

23. पेड़ सुरेश आनन्द 90

24. स्वस्थ मृदा एवं उत्तम स्वास्थ्य के लिए जैविक कृषि
प्रतीक सनोडिया एवं प्रो. मनोज कुमार सिंह 91-93

25. मधुमेह रोगियों को मिलेगा इंसुलिन सुई से छुटकारा
डॉ. दया शंकर त्रिपाठी 94-95

26. कहाँ मिलता है बेरूज?
डॉ. विजय कुमार उपाध्याय 96-97

27. उपयोगी कचनार
जगनारायण 98-99

28. गणित के महान उन्नायक और विलक्षण विद्वान : पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र
डॉ. राकेश कुमार दूबे 100-103

29. प्रवाल शैलेन्द्र कुमार गुप्ता 103

30. सहस्र चक्र का वैज्ञानिक प्रारूप - पीनियल ग्रन्थि
प्रो. चन्दना हालदार 104-107

31. पर्यावरण संरक्षण एवं स्थायी विकास
प्रो. गिरीश चन्द्र चौधरी 108-109

32. संरक्षण की आस में हैं कुछ अन्य जलधाराएँ
डॉ. श्याम बाबू पटेल 110-111

33. ध्वनि विज्ञान के शीर्ष विज्ञानी : डॉ. अमर गोपाल बोस
प्रेमचन्द श्रीवास्तव एवं मंजुलिका लक्ष्मी 112-115

34. भारत माँ के महान सपूत-डॉ. कलाम संजय गोस्वामी 115

35. मन के बहुरुपिए
डॉ. श्रीगोपाल काबरा 116-118

36. प्रकृति, अद्भुत है तेरा संसार
जगदीश प्रसाद तिवारी 119

37. विज्ञान में प्रगति की पहली शर्त है समय प्रबन्धन
डॉ. दया शंकर त्रिपाठी 120-121

38. पुस्तक समीक्षा 122-123

39. पुरस्कार/सम्मान/सदस्यता/नियुक्ति 124

40. हिन्दी प्रकाशन समिति की गतिविधियाँ
डॉ. दया शंकर त्रिपाठी 125-127

41. महान देश भारत
डॉ. सरोज शुक्ला 128

प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी
कुलपति

Prof. Girish Chandra Tripathi
Vice-Chancellor

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
BANARAS HINDU UNIVERSITY
(Established by Parliament by Notification No. 225 of 1916)
VARANASI-221 005 (INDIA)
Phones : 91-542-2368938, 2368339
Fax : 91-542-2369100, 2369951
e-mail : vcbhu1@gmail.com, vc_bhu@sify.com
website : www.bhu.ac.in

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शताब्दी वर्ष के अवसर पर हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा ''विज्ञान-गंगा'' के अंक 10 का प्रकाशन किया जा रहा है।

इस पत्रिका में विज्ञान, चिकित्सा, कृषि एवं प्रौद्योगिकी जैसे विषयों के मौलिक, रुचिकर, ज्ञानवर्धक व जनोपयोगी लेख लोकप्रिय व सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशित किये जा रहे हैं। हमारे संस्थापक महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी चाहते थे कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षण में राष्ट्रभाषा हिन्दी का अधिकाधिक उपयोग किया जाय। इस दिशा में विज्ञान-गंगा का प्रकाशन एक सार्थक कदम है। विज्ञान-गंगा के इस अंक में ऐसे नवोन्मेषी एवं प्रेरणादायी लेख प्रकाशित किये जा रहे हैं जो ज्ञानवर्धन करने के साथ-साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रयोग को मजबूती प्रदान करने वाले हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विज्ञान-गंगा का यह अंक भी अपने पूर्व अंकों की भाँति ही छात्र-छात्राओं, शोधकर्ताओं, शिक्षकों, कृषकों एवं जनसामान्य में लोकप्रिय सिद्ध होगी तथा पाठकगण इससे अत्यधिक लाभान्वित होंगे।

मैं, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की तरफ से उक्त प्रकाशन से जुड़े समस्त लोगों को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा अंक के सफल प्रकाशन हेतु शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(गिरीश चन्द्र त्रिपाठी)

विज्ञान-गंगा

हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान-गंगा' (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विज्ञान पत्रिका) का अंक-10 आपके समक्ष प्रेषित करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। हालाँकि यह अंक कुछ अपरिहार्य कारणों से वर्ष 2016 में प्रकाशित नहीं हो सका, अतः यह अंक कुछ विलम्ब के साथ आपके समक्ष पहुँच रहा है। विज्ञान-गंगा के विगत अंक-6, 7, 8 व 9 जो पूर्णतया रंगीन प्रकाशित हुई हैं और इनके पूर्व के पाँच अंकों जो बहुरंगी आवरण सहित श्वेत-श्याम रंग में प्रकाशित हुई थीं, ने काफी लोकप्रियता हासिल की हैं। पत्रिका ने मात्र सात वर्षों में ही अपनी राष्ट्रीय पहचान बना ली है और इसका अंक-6, 7 व 9 विद्यार्थियों, शिक्षकों, अनुसंधानकर्ताओं और विज्ञानप्रेमियों तथा जनसामान्य के लाभार्थ बीएचयू की वेबसाइट पर भी उपलब्ध हैं। हम विज्ञान-गंगा के माध्यम से विज्ञान एवं उससे जुड़ी महत्वपूर्ण सूचनाओं, आविष्कारों और नवीन अनुसंधानों को आप तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं। इसमें प्रकाशित विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर सूचनापरक व जनोपयोगी लेख जनसामान्य द्वारा काफी प्रशंसित हो रहे हैं। विज्ञान-गंगा के माध्यम से हम अपने विश्वविद्यालय की गरिमा के अनुरूप विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग को सुदृढ़ करने एवं जनसामान्य तक पहुँचाने का भरपूर प्रयास कर रहे हैं।

गत वर्षों में हिन्दी प्रकाशन समिति द्वारा अनेक उल्लेखनीय कार्य किये गये हैं। जिसके अन्तर्गत समिति द्वारा विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तक निर्माण योजना के अन्तर्गत ''पर्यावरण विज्ञान के विविध आयाम'', ''ओजोन प्रदूषण : वनस्पतियों एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव'', ''भारतीय वैज्ञानिक पुनर्जागरण की आधुनिक महाविभूतियाँ'' तथा ''मधुमेह के कारण एवं निवारण'' प्रकाशित की गयी हैं। समिति द्वारा पूर्व में 'पर्यावरण सुरक्षा : मूलभूत समस्याएँ एवं निदान' तथा 'जल संरक्षण : समस्याएँ एवं समाधान' पुस्तिकायें प्रकाशित की जा चुकी हैं जिसने जनसामान्य में काफी लोकप्रियता हासिल की हैं। ये सभी पुस्तकें पर्यावरण विज्ञान के छात्रों, अध्यापकों, प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित हो रहे प्रतिभागियों, गैर-सरकारी समाजसेवी संस्थाओं एवं पर्यावरण प्रेमियों के लिए काफी उपयोगी हैं। इस वर्ष भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (बी.एच.यू.) के प्रो0 सिद्ध नाथ उपाध्याय एवं प्रो0 बीरेन्द्र नाथ राय की पुस्तक 'तरलन : एक सामान्य परिचय' मुद्रणाधीन है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे लब्धप्रतिष्ठ कुलपति माननीय प्रो0 गिरीश चन्द्र त्रिपाठी जी के कुशल नेतृत्व में हिन्दी प्रकाशन समिति और भी समृद्ध होगी और निरंतर नई ऊँचाइयाँ प्राप्त करेगी।

सर्वप्रथम, मैं अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अर्थशास्त्री एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के यशस्वी कुलपति और 'विज्ञान-गंगा' के मुख्य संरक्षक प्रो0 गिरीश चन्द्र त्रिपाठी जी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनका शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी को प्रोत्साहित करने में विशेष रुचि रहती है। उनके प्रोत्साहन, उत्साहवर्द्धन एवं आवश्यक धनराशि प्रदान करने के परिणामस्वरूप ही 'विज्ञान-गंगा' पत्रिका की यह उत्कृष्ट एवं आकर्षक रंगीन अंक-10 आप तक पहुँच रही है। मैं, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ0 नीरज त्रिपाठी का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने इस अंक के प्रकाशन में सभी प्रकार के प्रशासनिक सहयोग प्रदान किये हैं। विज्ञान संस्थान के निदेशक प्रो0 बच्चा सिंह के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जो हिन्दी को आगे बढ़ाने एवं समिति को सुदृढ़ बनाने में अपना रचनात्मक सुझाव एवं यथोचित सहयोग प्रदान करते रहे हैं। वित्तीय सहयोग प्रदान करने हेतु विश्वविद्यालय के वित्त अधिकारी डॉ0 एस. बी. पटेल के प्रति भी

आभार प्रकट करता हूँ। मैं 'विज्ञान-गंगा' के सलाहकार मण्डल के सभी सदस्यों का विशेष रूप से आभारी हूँ जिनका 'विज्ञान-गंगा' को स्तरीय बनाने में हमें निरन्तर सहयोग एवं रचनात्मक सुझाव प्राप्त होता रहता है। मैं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के अध्यक्ष प्रो0 अवनीश कुमार द्वारा इस समिति को प्रदान किये गये हर सम्भव सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। इस पत्रिका में प्रकाशित लेख के लेखकों के प्रति मैं व्यक्तिगत रूप से धन्यवाद प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने उत्कृष्ट लेख इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु प्रेषित किये हैं। मैं पत्रिका के पूर्व सम्पादक व हिन्दी प्रकाशन समिति के पूर्व समन्वयक प्रो. शशि भूषण अग्रवाल को विशेष रूप से धन्यवाद प्रेषित करता हूँ जिनके निर्देशन में उच्च स्तरीय लेखों का चयन इस अंक के लिए किया गया है। हम अपने सहयोगी उप-संपादकों डॉ0 देवेश कुमार गुप्त एवं डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी को भी कुशल संपादन सहयोग हेतु आभार प्रकट करते हैं। साथ ही समिति के कार्यालय सहायक एवं संगणक कार्मिक श्री अनुप सोनकर एवं श्री तुलसी दास एक्का को भी उनके विविध सहयोगों हेतु धन्यवाद देते हैं। पत्रिका के मुद्रक मे0 गौतम प्रिन्टर्स, वाराणसी के अधिष्ठाता श्री अरुण कुमार सिंह पत्रिका को समय से प्रकाशित करने हेतु साधुवाद के पात्र हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका का प्रस्तुत अंक-10 भी अपने पूर्व प्रकाशित अंकों की भाँति ही छात्रों, वैज्ञानिकों, शिक्षकों एवं सामान्यजनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। आपके सृजनात्मक एवं उत्कृष्ट सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

संजय

(संजय कुमार)

मंगलयान और मंगल ग्रह पर स्पेक्ट्रोस्कोपी की दिलचस्प कहानी

प्रो0 सूर्य नाथ ठाकुर*

पूर्णरूप से भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित एवं अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित मंगलयान 24 सितम्बर 2014 को मंगल ग्रह (चित्र 1) का एक कृत्रिम उपग्रह (सैटेलाइट) बन गया। भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान के लिए यह बहुत गौरवशाली क्षण था क्योंकि अपने प्रथम प्रयास में ही भारत ने जो सफलता हासिल किया उसके लिये अमेरिका, रूस एवं यूरोपीय संघ को अनेक बार असफलता का सामना करना पड़ा और जापान तथा चीन अभी तक सफल नहीं हो सके हैं। भारतीय इंजीनियरों और वैज्ञानिकों की उत्कृष्ट क्षमता का आंकलन इस तथ्य से किया जा सकता है कि उस समय तक विश्व के अग्रणी देशों के इस प्रकार के 40 में 23 प्रयास असफल रहे थे। भारत न केवल दुनिया का एकमात्र देश है जिसे प्रथम प्रयास में ही सफलता मिली बल्कि उसका निर्माण एवं प्रक्षेपण का खर्च भी सबसे कम रहा। मंगलयान पर व्यय 450 करोड़ रुपये प्रति किलोमीटर की लागत पड़ती है। भारत को अर्जित ख्याति का आंकलन इस बात से किया जा सकता है कि मंगलयान रातों-रात मॉम (MOM : Mars Orbiter Mission) के नाम से दुनियाभर में प्रसिद्ध हो गया।

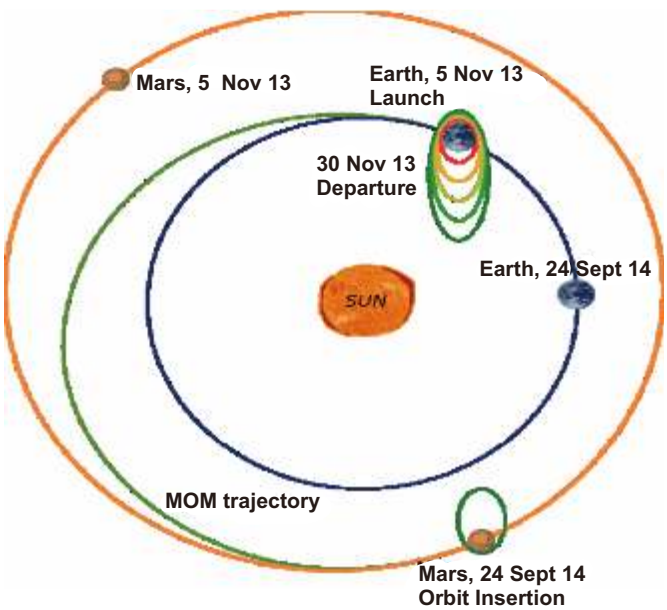

चित्र 2 : मंगलयान की पृथ्वी की कक्षा (नीला) से मंगल की कक्षा (नारंगी) तक की यात्रा होमैन परिपथ (हरा) पर सूर्य के गुरुत्व क्षेत्र में बिना ईंधन खर्च किये 300 दिन में पूरी की गयी। 5 से 30 नवम्बर 2013 तक पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्र में यान के इंजन द्वारा दीर्घ वृत्ताकार कक्षा का क्रमशः विस्तार एवं 24 सितम्बर 2014 को मंगल के गुरुत्व क्षेत्र की दीर्घ वृत्ताकार कक्षा (हरा) में प्रवेश को भी दिखाया गया है। विभिन्न तिथियों पर अपनी-अपनी कक्षा में पृथ्वी एवं मंगल की स्थिति भी दर्शायी गयी है। (चित्र विकिपीडिया से साभार)

चित्र 1 : मंगल ग्रह

केवल 15 माह की अल्प समय सीमा के भीतर भारतीय अनुसंधान संस्थान (ISRO) के वैज्ञानिकों ने गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ करते हुए ऐसी डिजाइन को मूर्त रूप दिया जिसके अनुसार कम क्षमता वाले देशी रॉकेट (PSLV) द्वारा प्रक्षेपित मंगलयान को करोड़ों मील गन्तव्य पर पहुँचाया जा सकता था। मंगलयान का कुल भार 1352 किलोग्राम था जिसमें 500 किग्रा. के उपकरण थे तथा 852 किग्रा. ईंधन भरा था। मंगलयान को पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्र से बाहर निकालने तथा उसे मंगल के गुरुत्व क्षेत्र में प्रविष्ट कराने के लिए यान में स्थित शक्तिशाली इंजन को चलाने में इस ईंधन का प्रयोग होना था। अपनी यात्रा के दौरान मंगलयान को लगातार पृथ्वी के विशिष्ट रेडियो केन्द्रों से रेडियो संकेतों का आदान-प्रदान करना था। इसके लिए उसमें कम, मध्यम एवं उच्च क्षमता के 3 एन्टेना लगे थे तथा यान में लगे उपकरणों की बिजली आपूर्ति हेतु लगी 230 वाट की दो बैटरियों को चार्ज करने के लिए सोलर पैनल भी थे।

भारत सरकार ने 3 अगस्त 2012 को मंगलयान प्रोजेक्ट को कार्यान्वित करने की अनुमति दी तथा इसके प्रक्षेपण के लिये 2013 में 28 अक्टूबर और 19 नवम्बर के बीच की अवधि निर्धारित की गयी। इस 3 हफ्ते की समय सीमा के भीतर प्रक्षेपित करने पर ही मंगलयान को सबसे कम ईंधन खर्च कर पृथ्वी से मंगल तक पहुँचाया जा सकता था। इस प्रकार की अगली सुगम परिस्थिति 780 दिन बाद 2016 में आने वाली थी।

*पूर्व अध्यक्ष, भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221 005; आवास : 33-34 नन्दनगर, पोस्ट-बीएचयू, वाराणसी - 221 005.

मंगलयान के लिए इसरो (ISRO) द्वारा गठित टीम के अदम्य उत्साह एवं कठिन मेहनत के बल पर सारी तैयारियाँ अक्टूबर 2013 के दूसरे सप्ताह तक पूरी हो गयी थीं। इसरो (ISRO) के चेयरमैन (के. राधाकृष्णन) ने 19 अक्टूबर को सूचित किया कि प्रक्षेपण तिथि 28 अक्टूबर न होकर 5 नवम्बर होगी। यह समय परिवर्तन भारतीय जलपोत के फिजी द्वीप के पास विलम्ब से पहुँचने के कारण किया गया। इस जलपोत पर मंगलयान से रेडियो संपर्क के लिए उपकरण लगाये गये थे।

चित्र 3 : 5 नवम्बर 2013 का श्रीहरिकोटा से मंगलयान के अन्तरिक्ष में प्रक्षेपण का दृश्य (इसरो से साभार)

मंगलयान 5 नवम्बर 2013 को पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्र की दीर्घ वृत्ताकार (elliptical) कक्षा में आरोपित हो गया जिसकी पृथ्वी से न्यूनतम दूरी (perigee) 264 किलोमीटर तथा अधिकतम दूरी (apogee) 23900 किलोमीटर थी (चित्र 2 व 3)। उसके एन्टेना और सोलर पैनल खोल दिये गये जिससे रेडियो संपर्क किया जा सके। यान को पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्र से निकालकर सूर्य के गुरुत्व क्षेत्र में ले जाने के लिए उसकी कक्षा की एपोगी (apogee) एक लाख किलोमीटर से अधिक होनी थी जो यान में लगे इंजन की मदद से कम से कम ईंधन के उपयोग द्वारा किया गया। मंगलयान की गति में उस समय बढ़ोत्तरी द्वारा कक्षा का परिवर्तन किया जाता था जब यान पृथ्वी के निकटतम होता था। बंगलोर में स्थित कन्ट्रोल स्टेशन (नियंत्रण केन्द्र) द्वारा यह कक्षा परिवर्तन 4 बार में 6, 7, 8 तथा 10 नवम्बर को किया गया जैसा चित्र 2 में दिखाया गया है। आखिरी बार का परिवर्तन असफल हो जाने की वजह से 12 नवम्बर को कंट्रोल स्टेशन द्वारा एपोगी की दूरी बढ़ाकर 1 लाख किलोमीटर से अधिक तथा पुनः 16 नवम्बर को उसे बढ़ाकर करीब 2 लाख किलोमीटर कर दिया गया जो चित्र 2 में प्रदर्शित है। मंगलयान के मार्ग में अगला परिवर्तन बहुत महत्वपूर्ण था। अब उसे सूर्य केन्द्रित एक हाइपरबोलिक (hyperbolic) मार्ग पर अग्रसर कराना था जो आरंभ में पृथ्वी की सूर्य केन्द्रित कक्षा को स्पर्श करते निकले तथा मंगल ग्रह के नजदीक पहुँचने पर उसकी सूर्य केन्द्रित कक्षा को स्पर्श करते हुए मंगल के गुरुत्व क्षेत्र में प्रवेश करे। पृथ्वी और मंगल के बीच का मार्ग होमैन परिपथ (Hohmann

चित्र 4 : 24 सितम्बर को मंगलयान के मंगल ग्रह के गुरुत्व क्षेत्र की दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में प्रवेश का ऐतिहासिक दृश्य देखने तथा वैज्ञानिक एवं इंजीनियर समूह का उत्साहवर्धन करने के लिए भारत के प्रधानमंत्री स्वयं बंगलोर के कन्ट्रोल स्टेशन पर मौजूद थे (इसरो से साभार)

transfer orbit) के नाम से जाना जाता है जो चित्र 2 में हरे रंग से प्रदर्शित है। मंगलयान की शक्तिशाली इंजन को चलाकर उसे 30 नवम्बर को होमैन परिपथ में प्रविष्ट करा दिया गया जहाँ बिना अपना ईंधन खर्च किये सूर्य के गुरुत्वाकर्षण द्वारा आगे बढ़ते हुए पृथ्वी से मंगल की दूरी को 300 दिन में पूरा करना था। करीब 78 करोड़ किलोमीटर की दूरी तय करते हुए मंगलयान 24 सितम्बर 2014 को मंगल ग्रह के गुरुत्व क्षेत्र में पहुँच गया और अब उसे मंगल केन्द्रित कक्षा में प्रविष्ट कराने की बारी थी। भारतीय समयानुसार 7 बजकर 17 मिनट पर मंगलयान की शक्तिशाली इंजन को चलाकर उसकी गति में परिवर्तन करते हुए उसे मंगल ग्रह केन्द्रित दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में प्रविष्ट करा दिया गया जिसकी मंगल से न्यूनतम दूरी करीब 422 किलोमीटर तथा अधिकतम दूरी करीब 77 हजार किलोमीटर है। इस दृश्य को देखने व वैज्ञानिकों का उत्साहवर्द्धन करने के लिए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी स्वयं उपस्थित रहे (चित्र 4)। मंगलयान अपनी कक्षा में घूमते हुए मंगल ग्रह की परिक्रमा करीब 72 घंटे 52 मिनट में पूरी करता है।

मंगल पर मीथेन गैस उपलब्धता कर सकती है जीवन की पुष्टि

मंगलयान पर लगे वैज्ञानिक उपकरणों में एक माइक्रोवेव स्पेक्ट्रोफोटोमीटर भी है जिसका उद्देश्य मंगल ग्रह के वायुमंडल में उपस्थित मिथेन गैस के बारे में जानकारी प्राप्त करना है। मिथेन एक आर्गेनिक अणु है और पृथ्वी के वायुमंडल में भी पाया जाता है जिसकी नब्बे प्रतिशत मात्रा पृथ्वी के सतह पर रहने वाले अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं द्वारा उत्सर्जित की जाती है। हाल ही में अमेरिकी शोधों से पता चला है कि मंगल ग्रह के उत्तरी गोलार्द्ध से मिथेन गैस का गुब्बार उसके वायुमंडल में प्रविष्ट हो रहा है। मिथेन गैस का वायुमंडल में उत्सर्जन जीव-जन्तुओं के अलावा ज्वालामुखी तथा भूगर्भ में होने वाली अन्य रासायनिक क्रियाओं द्वारा भी होता है। मंगल ग्रह पर जीवन की संभावना का पता लगाने में यह जानकारी आवश्यक है कि उसके वायुमंडल में उपस्थित मिथेन गैस की कितनी मात्रा भूगर्भीय घटनाओं के कारण है। मंगलयान पर लगा करीब 3 किलोग्राम का मिथेन गैस सेन्सर इतना सक्षम है कि वायुमंडल के एक अरब कुल अणुओं के बीच एक मिथेन अणु की

उपस्थिति का मापन कर सकता है। जब इस सेन्सर से मिथेन के मापन के समय तथा स्थान की जानकारी का मिलान मंगल ग्रह के अन्य भू-भौतिकी गणनाओं से किया जायेगा तो यह पता चल सकता है कि वायुमंडल की मिथेन गैस जैविक अथवा अजैविक कारणों से उत्पन्न होती है।

अमेरिका के नासा के मुकाबले भारत के इसरो निर्मित मंगलयान की सफलता छोटी दिख सकती है मगर हमारे देश को गौरवान्वित करने वाली यह एक असाधारण घटना है। हमारे वैज्ञानिकों ने चन्द्रयान की सफलता के अनुभव को अन्तरिक्ष की खोज में एक बड़ी छलांग के रूप में प्रदर्शित किया है। नासा ने इसरो की सफलता को इंजीनीयरी की अद्भुत उपलब्धि बताकर सराहना की तथा मंगल ग्रह के रहस्यों को सुलझाने में अहम भूमिका अदा करने की भारत से अपेक्षा व्यक्त किया। कुछ लोग यह कहते पाये गये हैं कि भारत को मंगलयान के बजाय देश में भुखमरी की समस्या पर ध्यान देना चाहिए। यहाँ स्पष्ट करना जरूरी है कि इसरो की प्रगति में बहुत कम धन खर्च होता है और भुखमरी के समाधान में बड़ी समस्या वितरण की है धन की नहीं। कोई भी देश केवल भोजन करके प्रगति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता है बल्कि प्रगति के लिए देशवासियों को बड़े सपने देखने और पूरे करने पड़ते हैं। इसरो के लोगों ने बहुत बड़े सपने को हकीकत में तब्दील कर दिखाया। यह बहुत खुशी की बात है कि 67वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर अपनी भारत यात्रा के दौरान फ्रांस के प्रधानमंत्री ने 2020 में मंगल पर यान भेजने में भारत के साथ सहयोग की सरकारी अनुमति दी है। मंगलयान ने भारत की श्रेष्ठता को बढ़ाने में अहम योगदान किया है।

चित्र 5 : जगमगाते तारों का समूह

गंगा जी के किनारे भारत के बिहार प्रदेश में और उत्तर प्रदेश के बलिया शहर के ठीक सामने स्थित हमारा गाँव गंगौली कई माने में एक अनोखा गाँव है। जिस मिडिल स्कूल में मैं सन् 1949 में पढ़ा था वह आज भी एक मिडिल स्कूल ही है। दस हजार से अधिक जनसंख्या वाले इस गाँव के लिए 5 वर्ष पहले तक ठीक ढंग की सड़क नहीं थी और दो वर्ष पहले तक बिजली नहीं थी। हालाँकि, इस प्रकार की आधुनिक सुविधाओं से रहित इस गाँव की अपनी विशेषताएँ हैं। बिजली रहित इस गाँव की कृत्रिम प्रकाश से अदूषित तारों से जगमगाती रातें मुझमें बरबस ही 60 वर्ष पूर्व की अपने बचपन की यादें ताजी कर देती हैं। रात में सोने के पहले चन्दा मामा के विभिन्न रूपों से जुड़ी कहानियों के अलावा जगमगाते तारों (चित्र 5) के मनोहारी ज्यामितीय समूह मेरे मन में उनके बारे में जानकारी पाने की जीवनपर्यन्त रहने वाली जिज्ञासा पैदा कर गये।

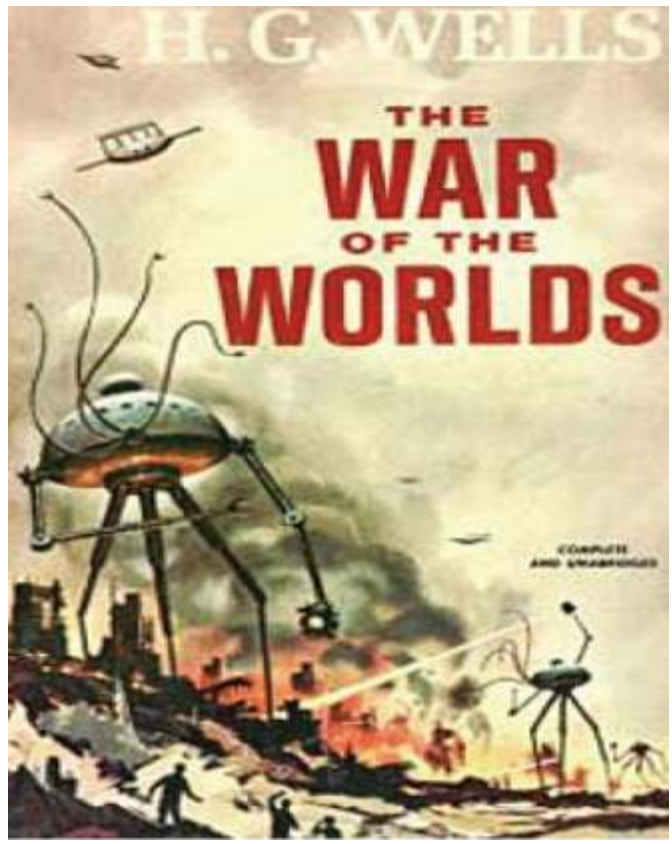

चित्र 6 : पुस्तक का आवरण पृष्ठ

जब आगे की पढ़ाई के लिए 1950 के पूर्वार्द्ध में मैं सारनाथ आया तो मुझे तारा और ग्रह का अन्तर नहीं मालूम था। पहली बार मैंने मंगल ग्रह के बारे में सुना तथा अपने पिताजी की मदद से, जो वहाँ इन्टरमीडिएट कालेज में भूगोल के अध्यापक थे, धीरे-धीरे लाल रंग के साधारण से दिखने वाले इस आकाशीय पिंड को पहचानना सीख गया। उस समय यह चर्चा का विषय था कि मंगल ग्रह पर शक्तिशाली दूरबीनों की सहायता से नहरों की जानकारी प्राप्त हुई है और यह आंकलन लगाया जा रहा था कि वे मंगल ग्रह पर रहने वाले बुद्धिमान मनुष्यों ने सिंचाई के लिये बनाये हैं। कुछ दिनों बाद एच.जी. वेल्स द्वारा लिखित 'द वार आफ द वर्ल्डस' (चित्र 6) नामक कल्पित कथा पढ़ने का मौका मिला जिसमें मंगल ग्रह के प्राणियों द्वारा इंग्लैंड पर आक्रमण का वर्णन था। बड़ा होने पर यह भी चर्चा सुनने को मिली कि साम्यवादी लोगों को लाल रंग होने के कारण मंगल ग्रह के प्रति विशेष आकर्षण था और रूस के बहुत से लेखकों ने इस पर आधारित उपन्यास भी लिखे थे।

विज्ञान और तकनीकी की प्रगति के चलते रूस और अमेरिका द्वारा पृथ्वी के चारो ओर चक्कर लगाने वाले स्पुतनिक और सैटलाइट छोड़े गये तथा दोनों देशों में चन्द्रमा तथा मंगल की सतह पर मनुष्य को पहुँचाने की होड़ लग गयी। यद्यपि वैज्ञानिकों को पता था कि चन्द्रमा की सतह पर मानव जीवन संभव नहीं है मगर बहुत से लोग मंगल ग्रह पर मानव जीवन के लिए अनुकूल परिस्थिति होने के प्रति आशावान थे। अमेरिका ने मंगल ग्रह के पर्यवेक्षण में विशेष सफलता अर्जित किया जब उसके द्वारा 1965 में छोड़े गये मेरिनर-4 नामक अन्तरिक्षयान ने इस ग्रह के पास से गुजरते हुए इसकी सतह के बहुत से चित्र प्रेषित किये। इन चित्रों में साफ दिखता था कि मंगल की निर्जल सतह पर न तो नदियाँ हैं, न समुद्र है और न ही जीवन के अन्य कोई लक्षण हैं। मेरिनर-4 द्वारा लिये गये चित्रों में उसकी सतह के कुछ भाग ज्वालामुखी पहाड़ों से पटे पाये गये जिन्हें 19वीं सदी के अन्त में टेलीस्कोप से पर्यवेक्षण के आधार पर नहरें होने का अनुमान लगाया गया था जैसा चित्र 7 में स्पष्ट है। इस इस प्रकार मंगल वासियों द्वारा सिंचाई के लिए निर्मित नहरों के होने की कल्पना का अन्त हो गया।

चित्र 7 : मंगल ग्रह की सतह का 1965 में मेरिनर-4 द्वारा लिया गया एक फोटो (नासा से साभार)

मंगल ग्रह का संक्षिप्त इतिहास

भारत के पौराणिक ग्रन्थों में मंगल को बहुत शुभ ग्रह एवं पृथ्वी का पुत्र माना गया है। भूमि से संबंध होने की वजह से इसको भौम भी कहा जाता है। इसके लाल रंग के कारण इसे अंगारिका भी कहा जाता है और इसे युद्ध के देवता के रूप में पूजा जाता है। यह महज एक संयोग है कि 1857 में ईस्ट इंडिया कंपनी की ब्रिटिश हुकुमत के खिलाफ भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बन्दूक की पहली गोली चलाने वाला सैनिक बलिया जिले के रहने वाले 'मंगल पांडे' थे। मंगल को सरेआम फांसी दिये जाने से भारतीय जनमानस में ऐसी चिनगारी फैली जो 1947 में भारत के स्वतंत्र होने तक कायम रही। रोम के लोग इसके लाल रंग को युद्ध में बहने वाले खून का प्रतीक मानते हुए इसे मार्स के नाम से युद्ध, आग एवं विनाश का देवता मानते हैं तथा ग्रीस के लोग इसे युद्ध का देवता कहते हैं। टेलीस्कोप से देखने पर मंगल लाल दिखता है तथा इसके स्पेक्ट्रम के विश्लेषण से यह सिद्ध हो गया है कि इसकी पूरी सतह आयरन आक्साइड की महीन धूल से ढ़ँकी है जिसे बवंडर मंगल के वायुमंडल में फैला देते हैं जो सूर्य के प्रकाश के लाल रंग को चारो ओर परावर्तित करता है।

महान जर्मन खगोलशास्त्री केप्लर द्वारा सन् 1909 में ग्रहों की गति के पहले दो नियम रात्रि के आकाश में मंगल की बदलती स्थिति पर ही आधारित थे। मंगल की आकाशीय स्थिति का अचूक मापन खगोलशास्त्री टाइको ब्राहे के पर्यवेक्षण द्वारा उपलब्ध था और वैज्ञानिकों का विश्वास है कि अगर केप्लर ने किसी अन्य ग्रह की स्थिति के आंकणों का उपयोग किया होता तो वह सूर्य के चारों ओर ग्रहों की दीर्घवृत्ताकार कक्षाओं का सही आंकलन नहीं कर पाता। पृथ्वी और मंगल की कुछ समानताएँ सारिणी-1 में दी गयी हैं।

सारिणी-1

मंगल	पृथ्वी
सौर मंडल का चौथा ग्रह	सौर मंडल का तीसरा ग्रह
सूर्य से दूरी 1.52 खगोलीय यूनिट	सूर्य से दूरी 1 खगोलीय यूनिट*
धुरी पर एक चक्कर 24.6 घंटे में	धुरी पर एक चक्कर 24 घंटे में
कक्षा में सूर्य का एक चक्कर 687 दिन में	कक्षा में सूर्य का एक चक्कर 365 दिन में
मंगल की धुरी का झुकाव 25.2 डिग्री	पृथ्वी की धुरी का झुकाव 23.4 डिग्री
तापक्रम 20 से -140 सेन्टीग्रेड तक	औसत भूमंडलीय तापक्रम 14.52 सेन्टीग्रेड

*खगोलीय यूनिट = 14,95,97,870 किमी. अथवा 9,29,55,807 मील (लगभग 15 करोड़ किमी. अथवा 9 करोड़ मील)

मंगल का अत्यंत हल्का वायुमंडल कार्बन डाईआक्साइड का बना है तथा उसकी सतह पर वायुमंडलीय दबाव पृथ्वी की समुद्री सतह पर वायुमंडल के दबाव का केवल एक प्रतिशत है। मंगल की सतह बहुत कुछ पृथ्वी की तरह है जिसमें पर्वत श्रेणियाँ और बालू से ढ़ँके मैदान हैं। इसके सबसे बड़े पहाड़ ओलिम्पस की ऊँचाई 27 किलोमीटर तथा सबसे बड़ी घाटी वैलेस मेरिनरीस 4000 किलोमीटर लंबी एवं 7 किलोमीटर गहरी है।

यद्यपि मंगल की बर्फीली ध्रुवीय टोपियों को 17वीं सदी के मध्य में ही देखा जा चुका था मगर 1781 में विलियम हर्शेल ने सर्वप्रथम यह खोज की कि दोनों गोलार्द्ध के जाड़ों में इन बर्फीली टोपियों का विस्तार हो जाता है तथा गर्मियों में वे सिकुड़ जाती हैं। मंगल के प्रत्येक ध्रुव पर जाड़ों में अनवरत अंधेरा रहता है और इसकी सतह का तापक्रम इतना कम हो जाता है कि वायुमंडल की करीब 25 प्रतिशत कार्बन डाईआक्साइड गैस बर्फीली ध्रुवीय टोपी पर ठोस कार्बन डाईआक्साइड के रूप में जम जाती है जिसे 'ड्राई आइस' कहा जाता है। जब गर्मी के मौसम में ध्रुवों पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है तो 'ड्राई आइस' पुनः गैस के रूप में वायुमंडल में फैल जाती है। इस प्रक्रिया के चलते मंगल के ध्रुवीय क्षेत्रों के वायुमंडलीय दाब एवं संरचना में भारी वार्षिक परिवर्तन होते रहते हैं। चित्र 8 में प्रदर्शित सूर्य के आस-पास का नीला रंग मंगल के वायुमंडल में स्थित धूल की वजह से है। वायुमंडल की यह धूल सूर्य के श्वेत प्रकाश के नीले रंग को अवशोषित कर लेती है तथा लाल रंग का प्रकीर्णन कर देती है जिससे मंगल के

चित्र 8 : सूर्यास्त के समय मंगल के आकाश का पाथफाइन्डर द्वारा लिया गया फोटो (नासा से साभार)

आकाश का ज्यादातर भाग लालिमा से युक्त दिखाई देता है। सूर्य के श्वेत प्रकाश में नीले रंग का प्रकीर्णन लाल की अपेक्षा अधिक होता है और सूर्योदय तथा सूर्यास्त के वक्त दिन की अपेक्षा किरणों को मंगल की धरती पर पहुँचने में वायुमंडल की सबसे अधिक मोटाई पार करनी होती है। वायुमंडल की मोटाई ज्यादा होने की वजह से मंगल के महीन धूलकणों की मात्रा भी बहुत बढ़ जाती है तथा अवशोषण के बावजूद लाल की अपेक्षा नीले रंग के अधिक प्रकीर्णन के चलते सूर्य के इर्द-गिर्द का आसमान नीला दिखता है। मंगल पर सूर्योदय और सूर्यास्त के ये दृश्य पृथ्वी के सूर्योदय और सूर्यास्त के बिल्कुल विपरीत हैं।

पृथ्वी के एक चन्द्रमा के मुकाबले मंगल के फोबोस ओर डीमोस नाम के दो छोटे-छोटे चन्द्रमा हैं जिनकी जानकारी 1877 में हो गयी थी। यह नामकरण ग्रीस के लोगों द्वारा उनके युद्ध के देवता के दो पुत्रों के नाम पर किया गया है। फोबोस डर का प्रतीक है तथा यह अपनी कक्षा में मंगल का एक चक्कर 7 घंटे में लगाता है जबकि आतंक का प्रतीक डीमोस यह काम करीब 31 घंटे में पूरा करता है।

मंगल ग्रह के वायुमंडल में स्थित प्राकृतिक लेजर

अणुओं एवं परमाणुओं के स्पेक्ट्रम का अध्ययन मेरे रिसर्च का मुख्य विषय होने के कारण मंगल ग्रह के बारे में प्रकाश संबंधी जानकारी में मेरी दिलचस्पी रही है। सन् 1976 में मंगल ग्रह के वायुमंडल से कार्बन डाईआक्साइड गैस के अणुओं द्वारा उत्सर्जित अप्रत्याशित किस्म का इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रम देखा गया। इसमें स्पेक्ट्रमी रेखाओं की तीव्रता गैस के अणुओं की ऊष्मीय साम्यावस्था में होने की अपेक्षा करीब एक अरब गुना अधिक पायी गयी। ऊष्मीय साम्यावस्था में अणुओं की घनत्व संख्या निम्न ऊर्जा स्तर में अधिक तथा उच्च ऊर्जा स्तर में कम होती है। सन् 1960 में सर्वे प्रथम निर्मित तथा वर्तमान समय में अत्यन्त उपयोगी लेजर प्रकाश स्रोत इस सिद्धान्त पर आधारित है कि परमाणु या अणु की उच्च ऊर्जा स्तर में उनकी संख्या निम्न ऊर्जा स्तर से अधिक होनी चाहिए। इस प्रकार कार्बन डाईआक्साइड द्वारा उत्सर्जित अप्रत्याशित तीव्रता वाली इन्फ्रारेड की स्पेक्ट्रमी रेखायें इस बात की द्योतक हैं कि मंगल ग्रह के वायुमंडल में अणुओं के कम्पन ऊर्जा स्तरों के बीच संक्रमण पर आधारित एक 'प्राकृतिक लेजर' विद्यमान है। इस जानकारी के बाद से इस लेजर का उपयोग मंगल ग्रह के वायुमंडल में तापक्रम एवं गैस के स्वरूप की जानकारी के लिए एक साधन के रूप में होने लगा है। सन् 1997 में नासा के वैज्ञानिकों ने मंगल ग्रह पर भेजे जाने वाले 'मार्स पाथफाइन्डर' के उतरने की जगह का निरीक्षण करने वाली पृथ्वी पर स्थित टेलीस्कोप से यह जानकारी हासिल की कि प्राकृतिक इन्फ्रारेड लेजर का उद्गम मंगल ग्रह के वायुमंडल की ऊपरी सतह से होता है। 'प्राकृतिक लेजर' का उद्गम क्षेत्र चित्र 9 में दर्शाया गया है।

चित्र 9 : मंगल ग्रह के काइस प्लैटिना स्थल केन्द्र वाले वृत्त से प्रदर्शित वायुमंडल द्वारा प्राकृतिक लेजर उत्सर्जित होता है (नासा से साभार)

अन्तरिक्षयान द्वारा मंगल ग्रह के पर्यवेक्षण

अमेरिका की नासा संस्था द्वारा मंगल ग्रह के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए वाइकिंग अन्तरिक्षयान नामक कार्यक्रम सबसे अधिक खर्चीला रहा जिस पर 1975 तक करीब एक अरब डालर की लागत आयी थी। यह बहुत सफल कार्यक्रम रहा और 1990 के मध्य तक मंगल के बारे में सबसे अधिक जानकारी इसी कार्यक्रम के तहत हुई थी। पृथ्वी से मंगल ग्रह के लिए छोड़े गये प्रत्येक वाइकिंग अन्तरिक्षयान के दो मुख्य भाग आर्बिटर तथा लैन्डर होते थे। आर्बिटर की डिजाइन मंगल ग्रह की परिक्रमा करते हुए उसकी सतह की फोटोग्राफी लेने के लिए की गयी थी और लैन्डर की डिजाइन सतह पर उतरकर उसका अध्ययन करने के लिए की गयी थी। आर्बिटर का काम लैन्डर तथा पृथ्वी पर स्थित 'नासा

प्रयोगशाला' के बीच संचारण सम्पर्क भी स्थापित करना था। वाइकिंग का मुख्य लक्ष्य प्रयोगों द्वारा मंगल की मिट्टी में सूक्ष्म जीवाणुओं का पता लगाना था क्योंकि करीब 4 अरब वर्ष पहले से ही मंगल ग्रह पर बहुकोशीय जीवाणुओं के क्रमिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ समाप्त हो गयी थीं। आर्बिटर द्वारा पृथ्वी पर भेजे गये शुरू के चित्रों में एक ज्वालामुखी पहाड़ का मुख मानव आकृति का भ्रम पैदा करता था जिससे यह अटकलबाजी होने लगी कि यह आकृति परग्रही प्राणियों द्वारा निर्मित हो सकती है जैसा चित्र 10 से स्पष्ट है।

चित्र 10 : वाइकिंग आर्बिटर द्वारा आदमी के मुखमंडल की आकृति वाला लिया गया फोटो (नासा से साभार)

लैन्डर द्वारा बाद के लिये गये फोटो ज्यादा यथार्थवादी थे जिससे मंगल की सतह तथा वायुमंडल की वास्तविक जानकारी प्राप्त करने में बहुत सफलता मिली। चित्र 11 में इसी प्रकार का एक फोटो दिखाया गया है जिसमें लैन्डर के स्वयं के फोटो के साथ ही मंगल की सतह पर फैले लाल रंग के पत्थर के टुकड़े तथा महीन धूल साफ दिखायी पड़ती है। लाल रंग की इन्हीं धूल कणों के मंगल के वायुमंडल में भी लटके होने के कारण उसका आकाश गुलाबी रंग का दिखता है जो चित्र 8 में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित है।

मंगल की जमीन पर चलने वाले रोवर की तीन पीढ़ियाँ

मार्स पाथफाइन्डर नाम से 1997 में मंगल ग्रह की जानकारी के लिए शुरू किया गया कार्यक्रम इस श्रेणी का पहला अन्तरिक्षयान था जिसमें उसकी सतह पर चलने में सक्षम रोवर गाड़ी का उपयोग किया गया था। पाथफाइन्डर यान में मंगल की सतह पर उतरने के स्थान पर स्थिर एक लैन्डर था जिसे कार्ल सैगन मेमोरियल स्टेशन का नाम दिया गया तथा एक अत्यन्त हल्की पहिये पर चलने वाले रोबट के समान सोजर्नर नाम की रोवर गाड़ी थी। वैज्ञानिक प्रयोगों के अलावा मार्स पाथफाइन्डर कार्यक्रम का उद्देश्य अन्तरिक्षयान को मंगल की सतह पर बिना धक्का लगे उतारने की तकनीक का परीक्षण करना तथा स्वचालित रोवर गाड़ी के मार्ग में आने

चित्र 11 : वाइकिंग लैन्डर द्वारा मंगल की सतह से लिया गया फोटो (नासा से साभार)

वाले सतही अवरोधों से बचने की कला का विकास करना भी था। सोजर्नर रोवर में लगे उपकरण मंगल के वायुमंडल, जलवायु, भूगर्भ तथा उसकी मिट्टी एवं चट्टानों की संरचना संबंधी जानकारी प्राप्त करने में सक्षम थे।

नासा के वैज्ञानिकों ने मार्स पाथफाइन्डर के सफल अभियान से प्राप्त जानकारी के आधार पर अधिक परिष्कृत रोवर के निर्माण के कार्यक्रम आरम्भ कर दिये। परिणामस्वरूप जनवरी 2004 में मंगल के पर्यवेक्षण के लिए स्पिरीट एवं अपार्चुनिटी नाम के जुड़वा रोवर प्रक्षेपित किये गये जिसमें स्पिरीट 2010 तक मंगल की सतह पर चलायमान था तथा अपार्चुनिटी आज भी कार्यरत है। मंगल के गुसेव नामक ज्वालामुखी के कारण बनी सूखी झील में स्पिरीट रोवर उतारा गया जिसका उद्देश्य वहाँ पानी की खोज करना था। नुकीले पथरीली सतह पर चलने से पहियों में हुई क्षति के बावजूद स्पिरीट रोवर पास की 30 डिग्री ढ़ाल वाली 'कोलम्बिया' पहाड़ी पर चढ़ने में सफल रहा तथा ज्वालामुखी के प्रभाव से निर्मित गर्म पानी के झरनों द्वारा पत्थरों में हुए परिवर्तन की जानकारी प्राप्त किया। नासा के वैज्ञानिक स्पिरीट की सोलर बैटरी को चार्ज करने के लिए उसे सूर्य के सामने पड़ने वाले ढ़ाल पर चलाते हुए मंगल ग्रह की तीन कठोर शीत ऋतुओं तक कार्यरत रखने में सफल रहे। अन्त में मंगल की कठोर ठंढ़क के कारण स्पिरीट की बिजली की सर्किट ने काम करना बन्द कर दिया जिससे 2010 में पृथ्वी से उसका सम्पर्क बन्द हो गया। अपने 6 वर्ष के कार्यकाल में स्पिरीट ने मंगल की धरती पर 8 किलोमीटर की दूरी तय की तथा नासा द्वारा तय किये गये उद्देश्य से 12 गुना अधिक सफलता प्राप्त की। स्पिरीट पृथ्वी के अलावा किसी अन्य पहाड़ी ढ़ाल पर चढ़ने तथा उतरने का कीर्तिमान स्थापित करने वाला पहला रोवर था। स्पिरीट की खोजों में सबसे महत्वपूर्ण खोज 'होम प्लेट' नामक पठार पर पुरातन काल में गर्म पानी के झरने अथवा छेदों से निकलने वाली भाप के चिन्ह थे जो सूक्ष्मजीवियों के लिए उचित परिस्थिति का आभास देते थे। यह जानकारी तब मिली जब स्पिरीट के पहिये से निकली चमकदार सफेद मिट्टी का रोवर पर स्थित स्पेक्ट्रोमीटर द्वारा विश्लेषण किये जाने पर उसमें शुद्ध सिलिका पाया गया। इससे यह अनुमान लगाया गया कि वर्तमान में मंगल का यह

ठंढ़ा तथा बेकार पठार पुरातन काल में गर्म पत्थरों और पानी के सम्पर्क से उत्पन्न ज्वालामुखी के विस्फोट वाला भयानक क्षेत्र रहा होगा।

मंगल ग्रह के 'ईगल क्रेटर' नामक स्थल पर उतरने वाला अपार्चुनीटी रोवर 30 किलोमीटर से अधिक दूरी तय करते हुए आज भी क्रियाशील है। इसके लिए वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित सभी लक्ष्य जिसमें नम वातावरण का प्रमाण प्राप्त करना भी शामिल था 3 माह के भीतर ही पूरे हो गये थे। अपने अगले 4 वर्ष के कार्यकाल में अपार्चुनीटी ने ईगल क्रेटर से भी बड़ी एवं गहरी खाइयों का निरीक्षण किया तथा ईगल की ही भाँति नम तथा सूखे वाले समान युगों के प्रमाण प्राप्त किये। नासा के वैज्ञानिकों ने 2008 में अपार्चुनीटी को एक किलोमीटर व्यास वाले 'विक्टोरिया क्रेटर' से बाहर निकालकर इसे 22 किलोमीटर व्यास वाले 'इन्डेवर क्रेटर' की ओर अग्रसर किया जहाँ सूर्य का सामना करने वाले 'ग्रीली हीवेन्स' नामक ढ़ाल पर इसे 2012 के मध्य तक मंगल की भयानक ठंड से बचाने के लिए रखा गया था। ग्रीली हीवेन्स में अपार्चुनीटी की प्राथमिकता रेडियो संकेतों द्वारा यह पता लगाना है कि मंगल का भीतरी भाग ठोस है अथवा पिघला हुआ है।

'क्युरियासीटी रोवर' और 'लीब्स' (LIBS)

मैं 6 अगस्त 2012 को प्रातः संयोगवश कैलिफोर्निया में था जब 'क्युरियासीटी रोवर' के मंगल ग्रह के 'गेल क्रेटर' में सफलता पूर्वक उतरने की सूचना प्रसारित की गयी थी। करीब 150 किलोमीटर व्यास वाला गेल क्रेटर मंगल ग्रह की भूमध्य रेखा के ठीक दक्षिण में स्थित है तथा इस रोवर का उद्देश्य 'माउन्ट शार्प' नामक पहाड़ के पास की भूगर्भीय परतों का अध्ययन करना है।

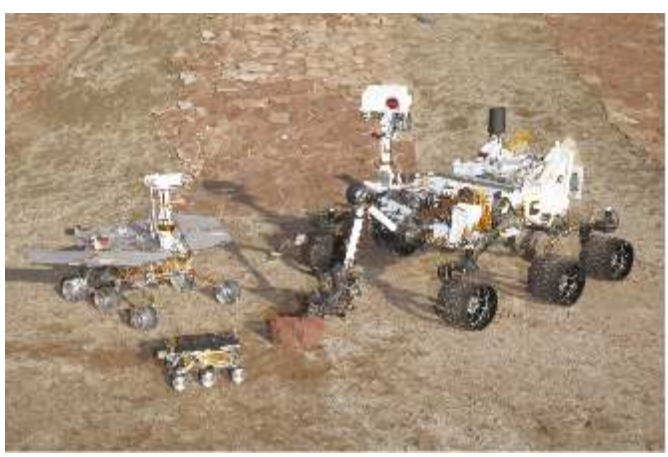

चित्र 12 : मंगल ग्रह की सतह पर चलने वाले तीन पीढ़ी के रोवरः सोर्जनर का डुप्लीकेट (सामने बायीं ओर) जो सबसे छोटा था, अपार्चुनीटी का डुप्लीकेट (बायीं ओर पीछे) जो मझौले कद का था तथा क्यूरियासीटी का डुप्लीकेट (दायीं ओर) जो सबसे बड़ा रहा (नासा से साभार)

क्युरियासीटी रोवर को माउन्ट शार्प एवं गेल क्रेटर के उत्तरी किनारे के बीच मंगल की सतह की एक पतली एवं समतल पट्टी पर उतारा गया है (चित्र 12) जिससे कड़ी जमीन पर करीब 4 सेन्टीमीटर प्रति सेकन्ड की गति से चलने में सक्षम इस यान को अपनी निर्धारित महत्वपूर्ण खोजों के लिए बहुत दूर का सफर न तय करना पड़े। ज्ञातव्य है कि मंगल ग्रह के कई अरब वर्ष के जीवनकाल में कभी उसके ठंढ़े, वायुरहित एवं सूखे रेगिस्तान अपेक्षाकृत गर्म एवं नम धरातल हुआ करते थे। लेकिन इस जानकारी का अभाव है कि मंगल में यह परिवर्तन बहुत कम समय में हुआ या इसमें धीरे-धीरे कई अरब वर्ष लगे। धीमी गति से होने वाले परिवर्तन की स्थिति में मंगल पर पुरातन काल में व्यापक रूप से जीवधारियों के होने की संभावना बढ़ जाती है। क्युरियासीटी रोवर एक बड़ी जीप की तरह है जिसकी लंबाई करीब 3 मीटर, चौड़ाई 2.7 मीटर, ऊँचाई 2.2 मीटर तथा वजन करीब 900 किलोग्राम है। यह एक चलती फिरती प्रयोगशाला है और इसके द्वारा की गयी खोज मंगल के इतिहास के उपरोक्त अज्ञात पहलू को उजागर कर सकती है। क्युरियासीटी रोवर, जिसे 'मार्स साइन्स लेबोरटरी' भी कहा जा रहा है, द्वारा निम्नलिखित चार प्रकार के प्रयोग संपादित करने हैं :

1. कम से कम एक नियत क्षेत्र में उपस्थित कार्बनिक यौगिक पदार्थ की विस्तृत सूची बनाना जिससे वहाँ पर जैविक संभावना का अनुमान लगाया जा सके।
2. रोवर के उतरने वाले क्षेत्र में विभिन्न सतह के भूतत्व की विशेषता ज्ञात कर उस प्रक्रिया का पता लगाना जिसके कारण वहाँ पर चट्टान तथा मिट्टी का निर्माण हुआ।
3. मंगल के वायुमंडल में लंबे समय की क्रमिक विकास से संबंधित घटनाओं का आंकलन कर वर्तमान में पानी एवं कार्बन डाईआक्साइड के चक्र तथा वितरण की जानकारी द्वारा उन प्रक्रियाओं को समझना जिनके कारण पुराने समय में वहाँ जीवन के लिए अनुकूल परिस्थिति रही हो।
4. मंगल की सतह पर पड़ने वाले सभी प्रकार के रेडियेशन की विशेषज्ञता ज्ञान करना जिससे सूर्य द्वारा उत्सर्जित प्रोटान, सेकन्डरी न्यूट्रान तथा ब्रह्मांड से आने वाले अन्य रेडियेशन भी शामिल हैं।

क्युरियासीटी रोवर पर स्थित प्रयोगशाला में भेजे गये 10 उपकरणों में से एक लेजर पर आधारित स्पेट्रोमीटर भी है जिसका काम मंगल पर पाये जाने वाले तत्वों का पता लगाना है। लेजर के माध्यम से स्पेक्ट्रम प्राप्त करने की इस विधा का नाम 'लेजर इन्डूस्ड ब्रेकडाउन स्पेक्ट्रोस्कोपी'

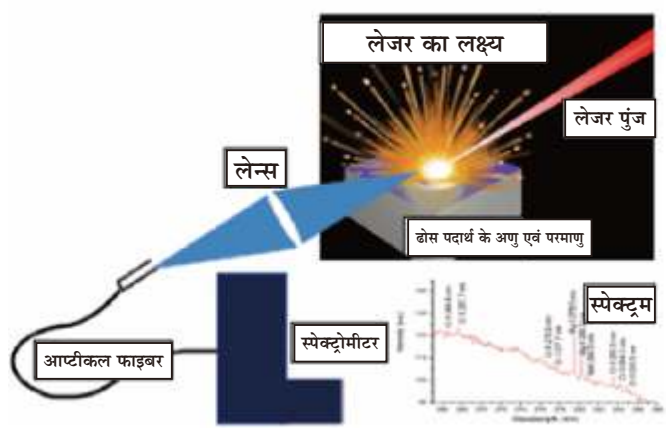

चित्र 13 : 'लीब्स' द्वारा स्पेक्ट्रम रिकार्ड करने का एक नमूना। लेजर एब्लेशन से लक्ष्य का एक सूक्ष्म भाग गर्मी के कारण प्लाज्मा बन जाता है तथा उसके परमाणु एवं अणु अपनी विशिष्ट स्पेक्ट्रमी रेखायें उत्सर्जित करते हैं

(LIBS: Laser Induced Breakdown Spectroscopy) है। मुझे कुछ वर्ष पहले अपने एक भूतपूर्व शोध छात्र प्रोफेसर जगदीश सिंह द्वारा पदार्थ के विश्लेषण की इस बहुउपयोगी स्पेक्ट्रोस्कोपी पर काम करने की प्रेरणा मिली थी जिसका सिद्धान्त चित्र 13 द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

जब लेजर का तीव्र प्रकाश पुंज किसी पदार्थ से टकराता है तो अत्यधिक तापक्रम उत्पन्न होने के कारण उसका एक अतिसूक्ष्म भाग प्लाज्मा में परिवर्तित हो जाता है तथा उसमें उपस्थित तत्वों के परमाणु अपना विशिष्ट प्रकाश उत्सर्जित करने लगते हैं। जब हम लेन्स के द्वारा लक्ष्य से उत्सर्जित प्रकाश को स्पेक्ट्रोमीटर से जुड़े आप्टिकल फाइबर पर फोकस करते हैं तो प्लाज्मा की लौ में उपस्थित सभी प्रकार के परमाणुओं एवं अणुओं की स्पेक्ट्रमी रेखायें एक साथ प्राप्त हो जाती हैं। लेजर आधारित इस स्पेक्ट्रम द्वारा कई मीटर दूर स्थित लक्ष्य में उपस्थित अवयवी तत्वों को ज्ञात किया जा सकता है।

ऐसा लगता है कि गेल क्रेटर के उत्तरी किनारे तथा माउन्ट शार्प की तलहटी के बीच का क्षेत्र जहाँ रोवर उतारा गया है वहाँ से कभी तेज पानी की धारा बहा करती थी। रोवर के शक्तिशाली कैमरे से वहाँ की जमीन का लिया गया एक दृश्य चित्र 14 में दिखाया गया है। छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े ठीक उसी प्रकार के लगते हैं जैसे कि पृथ्वी पर नदी की तलहटी में पड़ी बजरी दिखती है। क्युरियासिटी द्वारा लिये गये चित्रों से पत्थर के इन नन्हें टुकड़ों की आकृति एवं आकार की विस्तृत जानकारी मिली है जिसके आधार पर वैज्ञानिक यह जानने की कोशिश कर रहे हैं कि पानी की धारा यहाँ कैसे बहती रही होगी। इस चित्र के माध्यम से पहली बार मंगल पर पानी के बहाव के कारण बजरी का फैलाव देखने को मिला है। बजरी के आकार का अध्ययन करने के बाद वैज्ञानिक यह अनुमान लगा रहे हैं कि पानी के प्रवाह की गति करीब 3 फीट प्रति सेकन्ड रही होगी तथा उसकी गहराई आदमी के घुटने से लेकर कमर तक रही होगी। पत्थर के टुकड़ों का गोलाकार होना यह अहसास कराता है कि वे बहुत दूर तक पानी के साथ बहते रहे।

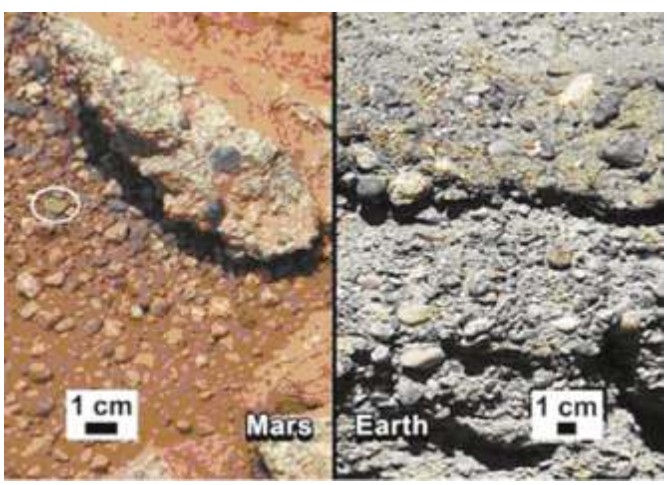

चित्र 14 : क्युरियासिटी के कैमरे से मंगल की सतह का एक दृश्य (बायें) तथा पृथ्वी पर पानी के तेज बहाव के कारण उसी प्रकार के पत्थर की बजरी से पटा क्षेत्र (दायें) (नासा से साभार)

पृथ्वी पर स्थित नासा केन्द्र के वैज्ञानिकों ने मंगल के वातावरण में क्युरियासिटी के लेजर और स्पेक्ट्रोमीटर की कार्यशीलता का परीक्षण करने के लिए रोवर के बाहर जमीन पर पड़े एक पत्थर के टुकड़े कोरोनेसन (चित्र 15) की संरचना की जाँच करने का निश्चय किया। इस इन्फ्रारेड लेजर की किरण कुछ नैनोसेकन्ड के स्पन्द के रूप में निकलती है मगर इसका पावर 10 लाख वाट के प्रकाश स्रोत के बराबर होता है। किसी लक्ष्य को भेदने के लिए लेजर स्पन्द का वैसे ही प्रयोग किया जाता है जैसे बन्दूक से निकली गोली का होता है।

चित्र 15 : क्युरियासिटी के अवतरण स्थल के पास मंगल की जमीन पर 7 सेन्टीमीटर का पत्थर जिसे 'कोरोनेसन' नाम दिया गया। 19 अगस्त 2012 को सर्वप्रथम इस पत्थर का लेजर स्पार्क द्वारा स्पेक्ट्रम रिकार्ड किया गया

इस शक्तिशाली लेजर स्पन्द के किसी पदार्थ से टकराने पर इतनी गर्मी उत्पन्न होती है कि उसकी सतह पर एक सूक्ष्म छेद हो जाता है तथा वहाँ का पदार्थ एक स्पार्क सरीखा दिखायी पड़ता है। स्पार्क के प्रकाश को रोवर की टेलीस्कोप द्वारा एकत्र करके आप्टिकल फाइबर के माध्यम से स्पेक्ट्रोमीटर में पहुँचा दिया जाता है। आप्टिकल फाइबर प्रकाश के संचार बिजली के संचार में करता है। क्युरियासिटी में लगा स्पेट्रोमीटर दृश्य प्रकाश के साथ ही साथ अल्ट्रावायलेट एवं इन्फ्रारेड के अदृश्य प्रकाश का भी स्पेक्ट्रम रिकार्ड करने में सक्षम है तथा कुल मिलाकर यह 6144 स्पेट्रमी रेखायें एक साथ रिकार्ड कर सकता है।

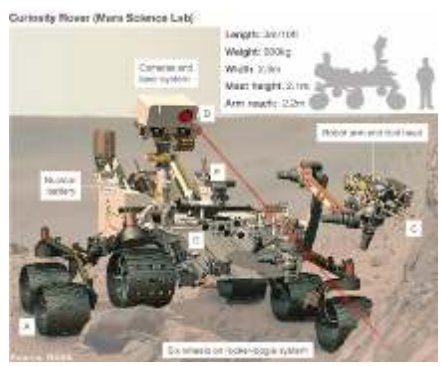

चित्र 16 : आर्टिस्ट की कल्पना पर आधारित लाल लेजर द्वारा मंगल की चट्टान का स्पेक्ट्रम रिकार्ड करने की विधि (नासा का साभार)

चित्र 16 में लिब्स द्वारा मंगल ग्रह पर रोवर के बाहर स्थित किसी चट्टान अथवा जमीन पर किसी अन्य लक्ष्य का स्पेक्ट्रम रिकार्ड करने का सिद्धांत प्रदर्शित किया गया है तथा चित्र 17 में कोरोनेसन नामक पत्थर के टुकड़े का स्पेक्ट्रम प्रस्तुत किया गया है। यह लेजर आधारित लिब्स स्पेक्ट्रम इस तकनीक के किसी अन्य ग्रह पर उपयोग होने का पहला उदाहरण है।

स्पेक्ट्रम रिकार्ड करने के लिए 5 नैनोसेकन्ड अवधि के 30 लेजर स्पन्दों का उपयोग किया गया था तथा इस कार्य को पूरा करने में 10 सेकेन्ड का समय लगा। इस प्रयोग का मकसद मंगल की मिट्टी तथा

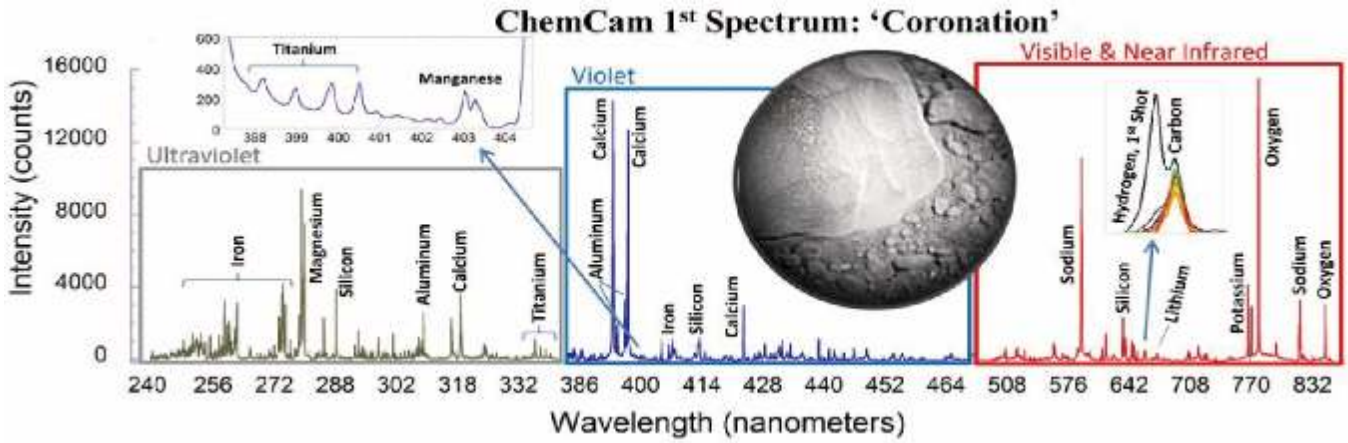

चित्र 17 : मंगल की धरती पर पड़े पत्थर के टुकड़े 'कोरोनेसन' का 'लिब्स' स्पेक्ट्रम जहाँ पत्थर की संरचना करने वाले परमाणुओं की स्पेक्ट्रमी रेखायें स्पष्ट देखी जा सकती हैं (नासा से साभार)

चित्र 18 : मंगल की मिट्टी में निर्धारित लक्ष्य 'बीची' का कैमरे से लिया गया फोटो लेजर स्पन्दों के पड़ने के पहले (बायीं ओर) तथा बाद में (दायीं ओर) (नासा से साभार)

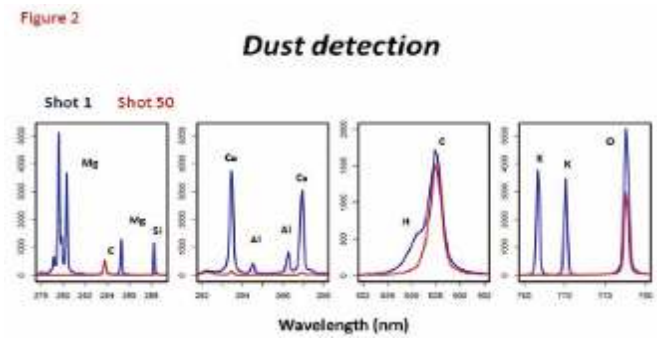

चित्र 19 : ग्रेफाइट के ऊपर जमी मंगल की धूल के कुछ चुने हुए अल्ट्रावायलेट (बायें से दो), दृश्य (बीच) का एवं इन्फ्रारेड (दायें) स्पेक्ट्रम जहाँ पहले लेजर स्पन्द की रेखायें नीले रंग से तथा आखिरी स्पन्द की लाल से प्रदर्शित की गयी है (नासा से साभार)

चट्टानों की संरचना जानने के लिए भेजे गए जटिल उपकरण की लेजर द्वारा लक्ष्य भेदने तथा टेलीस्कोप एवं स्पेक्ट्रोमीटर के कार्य निष्पादन की क्षमता का आंकलन करना था। लिब्स की स्पेक्ट्रमी रेखाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि सिलिकान, मैग्नीशियम, सोडियम, कैल्शियम, आयरन तथा अल्युमिनियम आदि सभी तत्व पृथ्वी की ही भाँति मंगल ग्रह पर भी मौजूद हैं। क्योंकि पत्थर की सतह पर मंगल के धूल की पतली परत जमी हो सकती है अतः वैज्ञानिक यह आंकलन कर रहे हैं कि पत्थर की सतह तथा उसमें लेजर द्वारा हुए छेद से निकले पदार्थ की स्पेक्ट्रमी रेखाओं को किस भाँति अलग किया जा सकता है।

25 अगस्त 2012 को लेजर स्पार्क द्वारा पत्थर के आस-पास धूल भरी जमीन के स्पेक्ट्रम रिकार्ड किये गये। रोवर से करीब 12 फीट की दूरी पर स्थित इस लक्ष्य को 'बीची' (चित्र 18) नाम दिया गया तथा इस पर (क्रमशः बायें से दायें चलते हुए) 5 बिन्दुओं में से प्रत्येक पर 50 लेजर स्पन्द दागे गये जो चित्र 18 में स्पष्ट दिख रहे हैं। मिट्टी में लेजर द्वारा बने छेदों का व्यास 2 से 4 मिलीमीटर के बीच था। प्रत्येक लेजर स्पन्द के स्पार्क का स्पेक्ट्रम रिकार्ड किया गया तथा यह पाया गया कि सभी छेदों से पहले लेजर स्पन्द द्वारा लिया गया है स्पेक्ट्रम तो एक जैसा था मगर बाद के लेजर स्पन्दों द्वारा लिये स्पेक्ट्रम भिन्न थे। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला गया कि किसी लक्ष्य पर जमी धूल या भुरभुरे कणों को शक्तिशाली लेजर स्पन्द विस्थापित कर देते हैं।

नासा के वैज्ञानिकों ने लेजर द्वारा धूल उड़ाने के आंकलन की पुष्टि के लिए 2 सितम्बर 2012 (मंगल के 27वें दिन) को लक्ष्य के रूप में रोवर के बाहरी भाग में लगी ग्रेफाइट की पट्टी का चुनाव किया जिस पर मंगल की धूल जम गयी थी। इस पट्टी पर 50 लेजर स्पन्द दागे गये जिसमें पहले एवं आखिरी स्पन्द का स्पेक्ट्रम चित्र 19 में दिखाया गया है। इस चित्र में पहला लेजर स्पन्द केवल ग्रेफाइट पर जमी धूल का जबकि आखिरी स्पन्द केवल ग्रेफाइट का स्पेक्ट्रम प्रदर्शित करता है क्योंकि बीच में के दागे गये लेजर स्पन्दों के कारण ग्रेफाइट की सतह पर जमी धूल उड़ जाती है। पहले लेजर स्पन्द के कारण धूल में मैग्निशियम, सिलिकन, कैल्शियम, अल्युमिनियम तथा पोटैशियम की स्पेक्ट्रमी रेखायें स्पष्ट दिखती हैं जबकि कार्बन एवं आक्सीजन की रेखाओं की वजह मंगल के वायुमंडल की कार्बन डाईआक्साइड (CO_2) है। पहले लेजर स्पन्द के कारण दिखने वाली हाइड्रोजन की स्पेक्ट्रमी रेखा की वजह वायुमंडल में पानी (H_2O) या हाइड्रोक्सिल (OH) की उपस्थिति हो सकती है। आखिरी लेजर स्पन्द का स्पेक्ट्रम शुद्ध ग्रेफाइट की वजह से है जिसमें केवल कार्बन और आक्सीजन की रेखायें स्पष्ट देखी जा सकती हैं।

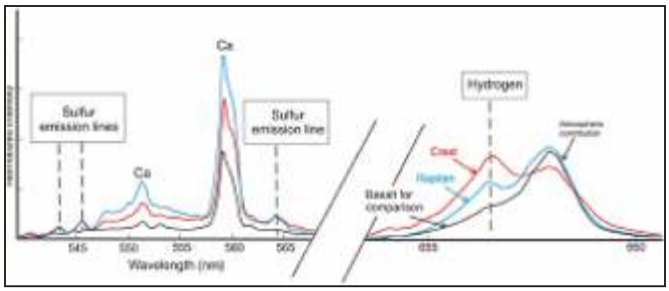

चित्र 20 : लिब्स द्वारा रिकार्ड किये दृश्य स्पेक्ट्रम के कुछ भाग जहाँ क्रेस्ट की स्पेक्ट्रमी रेखायें लाल रंग से रापिटान की नीले एवं बासाल्ट की काले से प्रदर्शित की गयी हैं (नासा से साभार)

लिब्स विधि से 13 दिसम्बर 2012 (मंगल के 125वें दिन) को 'यलोनाइफ बे' नामक क्षेत्र के 'केस्ट' नाम वाली चट्टान तथा 23 दिसम्बर (मंगल के 135वें दिन) को इसी क्षेत्र की 'रापिटान' नामक चट्टान के स्पेक्ट्रम रिकार्ड किये गये। यहाँ सारिणी 1 के आलोक में बताना

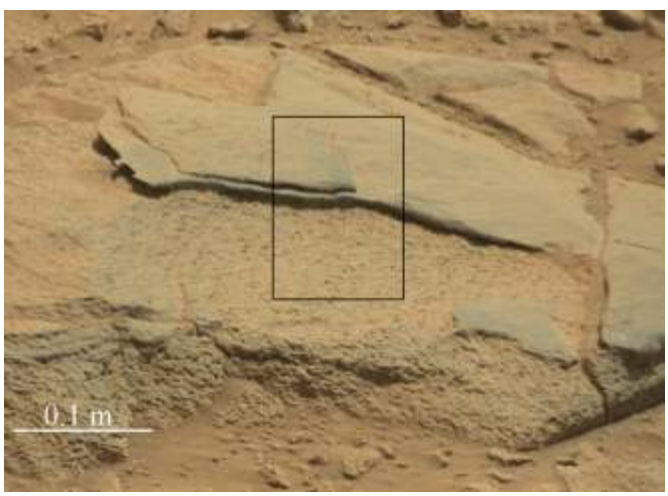

चित्र 21 : इथाका नामक चट्टान का फोटो जहाँ काले रंग के आयत के भीतर लेजर सपन्द दागे गये (नासा से साभार)

आवश्यक है कि मंगल का 1 दिन या सोल पृथ्वी के 1.025 दिन के बराबर होता है। इन दोनों स्पेक्ट्रम के कुछ भाग विश्लेषण के बाद चित्र 20 में प्रदर्शित है जहाँ 'बासाल्ट' का स्पेक्ट्रम भी तुलना के लिए दिखाया गया है जो मंगल के ज्वालामुखी से निकले पदार्थ का सूचक है। इन चट्टानों में सल्फर, कैल्शियम तथा हाइड्रोजन की स्पेक्ट्रमी रेखायें स्पष्ट देखी जा सकती हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि इन चट्टानों में जल मिश्रित कैल्शियम सल्फेट हो सकता है जैसा कि पृथ्वी पर जिप्सम नामक खनिज में पाया जाता है।

क्युरियासिटी ने मंगल के 439वें दिन या सोल (30 अक्टूबर 2013) को गेल क्रेटर के इथाका नामक चट्टान के लिब्स स्पेक्ट्रम रिकार्ड किये। इस चट्टान का ऊपरी भाग चिकना एवं नीचे का हिस्सा खुरदरा दिखता है और लगता है कि यह नीचे तलछटी की चट्टान है जो गेल क्रेटर की स्थानीय मिट्टी से बाहर निकली हुयी है (चित्र 21)। इस क्षेत्र का स्पेक्ट्रम रिकार्ड करने में मंगल ग्रह पर क्युरियासिटी द्वारा दागा गया 1,00,000वाँ लेजर पल्स भी शामिल था (चित्र 22)।

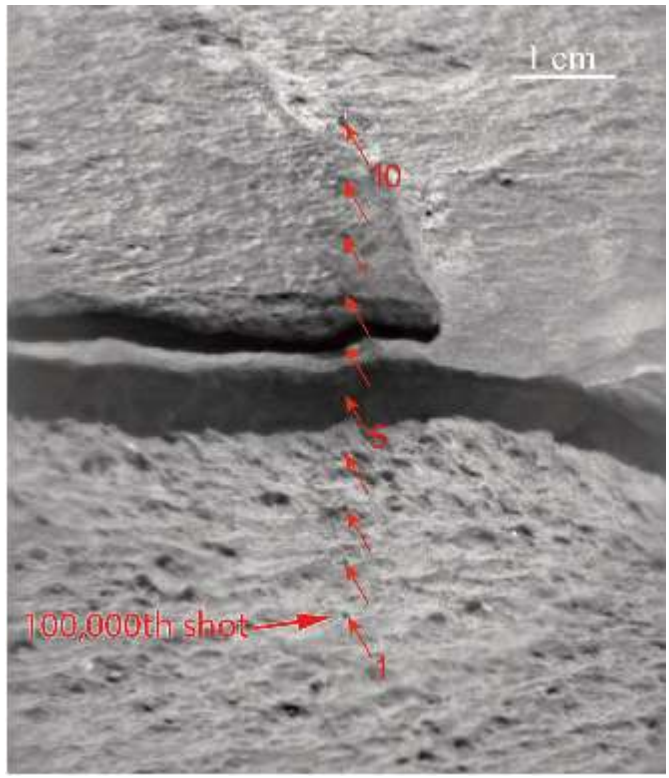

चित्र 22 : इथाका चट्टान पर दागे गये तीर के 10 निशान जहाँ प्रत्येक पर 30 लेजर पल्स दागे गये थे जिसमें एक लाखवां पल्स भी शामिल था (नासा सेसाभार)

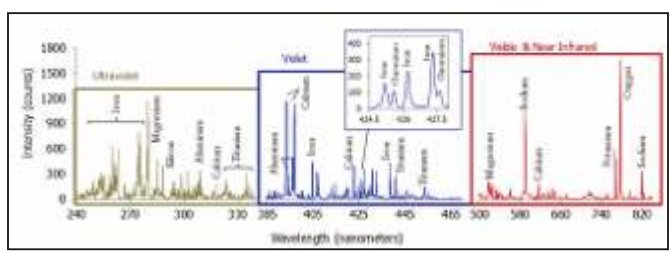

चित्र 23 : इथाका चट्टान का लिब्स स्पेट्रम (नासा से साभार)

यद्यपि इथाका तलछटी का पत्थर है मगर इसकी स्पेक्ट्रमी रेखाओं (चित्र 23) के आधार पर यह अनुमान लगता है कि तलछट के वे कण जिनसे यह पत्थर बना है उनके स्रोत आग्नेय पत्थर रहे होंगे जो पुरातन काल में पानी के साथ बहकर तलछटी के पत्थर बन गये।

उपसंहार

भारतीय स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 2014, क्युरियासिटी के मंगल की धरती पर पहुँचने का 719वाँ सोल (मंगल का एक दिन) था क्योंकि सूर्य की परिक्रमा करने में इसे 687 दिन (704 सोल) लगते हैं। नासा की वेबसाइट पर उपलब्ध क्युरियासिटी के मंगल पर भ्रमण करने का नवीनतम मार्ग 692 सोल से लेकर 714 सोल तक चित्र 24 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह रोवर कितनी धीमी गति से भ्रमण कर रहा है इसका अहसास कराने के लिए सोल 702, सोल 709 तथा सोल 713 तक के मार्गों के विस्तारित किये हुए फोटो चित्र 25 में दिखाये गये हैं।

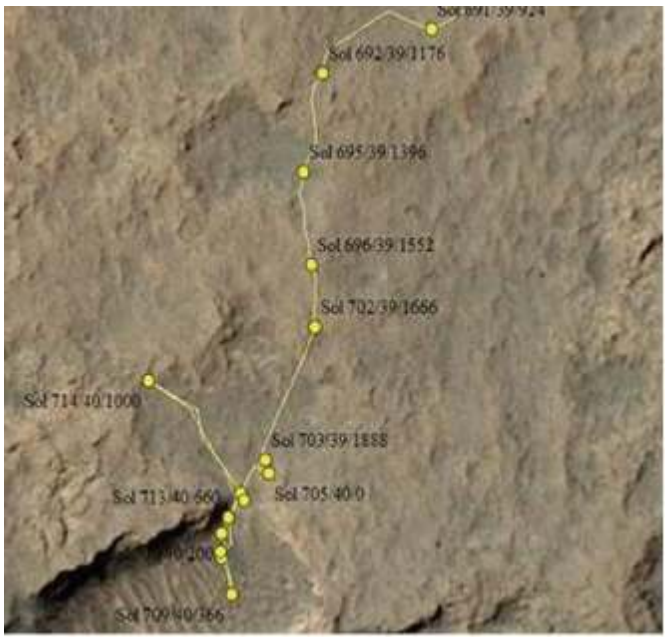

चित्र 24 : अगस्त 2014 में क्युरियासिटी का मार्ग जहाँ पीले रंग की बिन्दी उसकी स्थिति दर्शाती है तथा साथ का पहला नम्बर उस दिन का सोल प्रदर्शित करता है (नासा से साभार)

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्युरियासिटी रोवर 2 वर्षों से अपने गंतव्य माउन्ट शार्प की ढ़ाल की ओर धीमी गति से लगातार अग्रसर है जहाँ विभिन्न ऊँचाइयों पर स्थित चट्टान एवं मिट्टी के बारे में वैसी ही जानकारी एकत्र करेगा जैसा अब तक गेल क्रेटर में करता रहा है। इस यान के अन्य उपकरण भी लिब्स की तरह धरती के नीचे तथा वायुमंडल की संरचना के बारे में विभिन्न प्रकार की जानकारी एकत्र कर रहे हैं। पृथ्वी पर स्थित अनेक प्रयोगशालाओं में विभिन्न प्रकार की विशेषज्ञता वाले सैकड़ों वैज्ञानिक और इंजीनियर क्युरियासिटी से प्रतिदिन उपलब्ध होने वाले आंकड़ों का लगातार विश्लेषण करने में जुटे हैं। इस प्रकार के अध्ययन एवं चिन्तन का मुख्य उद्देश्य दो महत्वपूर्ण सवालों का जवाब ढूँढ़ना है कि क्या गेल क्रेटर के किसी क्षेत्र में कभी जीवन संभव था और क्या पृथ्वी से जाकर मनुष्य वहाँ पर जीवित रह सकता है। क्युरियासिटी न्यूक्लियर बैटरी से लैस है जिससे मंगल के भीषण जाड़ों में सूर्य का प्रकाश न होने पर भी इसके कुछ उपकरणों के लिए बिजली उपलब्ध रहेगी जबकि पहले के छोड़े गये दोनों प्रकार के रोवर पूर्ण रूप से सोलर बिजली पर निर्भर थे। इस लेख को पूरा करने के दौरान खुशखबरी मिली कि 2004 में छोड़ा गया अपार्चुनिटी रोवर 10 वर्ष के बाद भी मंगल की धरती पर क्रियाशील है।

चित्र 25 : सोल 702, तथा सोल 713 को क्युरियासिटी की स्थिति एवं कुछ दिनों पहले तय किये गये मार्ग के इनलार्ज किये फोटो जहाँ प्रत्येक के नीचे सफेद क्षैतिज रेखा 10 दर्शाते हुए (नासा से साभार)

आभार

इस लेख की अधिकतर जानकारियाँ नासा एवं इसरो की वेबसाइट पर अंग्रेजी में उपलब्ध हैं तथा तकनीकी शब्दों का हिन्दी अनुवाद शब्दकोष डाट काम से किया गया जिसके लिए मैं इन संस्थानों से जुड़े सृजनशील विद्वानों का आभारी हूँ। पूनम, विनीता, सुधीर एवं संगीता के सहयोग के बिना यह लेख वर्तमान स्वरूप में संभव नहीं था जिनके स्नेह का यह प्रतीक है।

परिवार में किसी को कैंसर हो तो रहें सावधान

यदि आपके परिवार में किसी को खासकर आपके जुड़वा भाई या बहन को कैंसर है, तो आपको नियमित जाँच कराते रहना चाहिए। एक अध्ययन के अनुसार, अगर भाई या बहन को कैंसर है, तो व्यक्ति को कैंसर होने का खतरा 33 फीसदी बढ़ जाता है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं के अनुसार, ऐसे 22 कैंसर की पहचान हुई है, जिनका कारण वंशानुगत हो सकता है। शोधकर्ताओं ने डेनमार्क और फिनलैंड के शोधकर्ताओं के साथ मिलकर वंशानुगत तौर पर कैंसर के खतरे की स्थिति का पता लगाया। यह अध्ययन ऑनलाइन कैंसर जर्नल जेएएमए में प्रकाशित हुआ है। अध्ययन के प्रमुख डॉक्टर लोरेली मुक्की के अनुसार, दोनों तरह से जुड़वा (एक जैसे दिखने वाले और अलग दिखने वाले) लोगों को सहोदर के कैंसर होने पर बीमारी होने का खतरा बढ़ जाता है। हालाँकि अलग दिखने वाले जुड़वा में यह खतरा कम होता है।

त्वरित डी.एन.ए. संपादन की नई तकनीक है
क्रिस्पर (सीआरआईएसपीआर)

मंजुलिका लक्ष्मी एवं प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव*

आनुवंशिक विज्ञान के क्षेत्र में जो अनुसंधान कार्य चल रहे हैं उनके स्वरूप की विचित्रता निरन्तर मानव को विस्मित करती रहती है। पिछली शती में जब प्रथम बार इस धरती पर एक परखनली शिशु का अवतरण हुआ तो वह घटना 'प्रकृति और ईश्वरीय विधान' में एक बहुत बड़ा विस्फोट पैदा करने वाली अत्यन्त अनोखी-युगान्तरकारी घटना मानी गई। पहली बार मानव 'ईश्वरीय इच्छा' को धता बता कर सामान्य प्राकृतिक तरीके से अलग लगभग चार दशकों बाद परखनली शिशु का जन्म कराने के योग्य बन गया था। लगभग चार दशकों बाद परखनली शिशु का निर्माण जीव वैज्ञानिकों के लिए एक बड़ी सामान्य और पुरानी बात हो चुकी है। जब डी.एन.ए. और जीनों की खोज और जीन के कूटों का विकोडन हुआ तब वह भी अपने समय की एक बड़ी क्रान्तिकारी खोज थी, किन्तु आज विज्ञान के चरण उस मार्ग पर बहुत आगे बढ़ चुके हैं। हाल ही में जीन एडिटिंग (जीनों का संपादन) संबंधी एक तकनीक विकसित किए जाने के समाचार वैज्ञानिक जगत में चर्चित हुए हैं। जैव चिकित्सीय शोध के क्षेत्र में जीन का संपादन करने वाली इस तकनीक को क्रिस्पर-कैस 9 (Crispr-Cas 9) का नाम दिया गया है। इस नामकरण का प्रथम भाग Crispr अंग्रेजी शब्दों clustered regularly inter-spersed short palindromic repeats के प्रथमाक्षरों का समूह है। इन शब्दों का अर्थ है गुच्छ रूप में नियमितता से प्रकीर्णित होते लघु विलोमाक्षरों का दुहराया जाना। यह शब्द समूह उपरोक्त तकनीक की विधि के आनुवांशिक आधार को व्याख्यायित करता है। इसके पश्चात् आने वाला 'Cas 9' एक प्रोटीन नाम है जो उक्त प्रक्रिया के संपादन का कारण बनती है। 'वायर्ड' (Wired) नामक शोध पत्रिका में प्रकाशित अपने एक लेख में एमी मैक्समेन नामक वैज्ञानिक ने इस संबंध में कहा है कि यदि तकनीकी सूक्ष्मताओं की बात न की जाए तो यह कहा जा सकता है कि 'क्रिस्पर-कैस 9' की सहायता से जीनों को 'इधर-उधर स्थानान्तरित करना' अब सरल तथा सस्ती विधि से और तीव्र गति से होना संभव हो जाएगा। यह संभावना किसी भी जीवधारी के लिए सत्य है जीवाणुओं से लेकर मानवों तक।

1978 में जन्मी प्रथम परखनली शिशु 'लुईस'

जीन संपादन

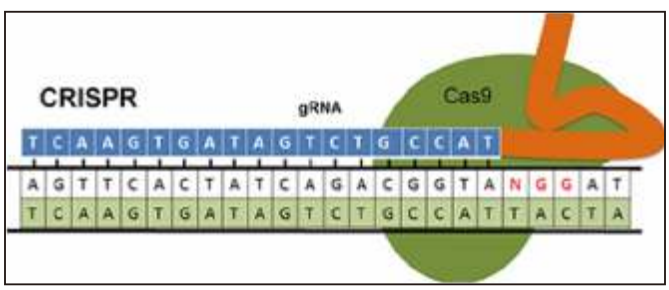

सरल भाषा में कहें तो कुछ वर्षों पूर्व जिस सिद्धान्त के काल्पनिक आधार पर जुरासिक पार्क नामक फिल्म का निर्माण हुआ था आज उस सिद्धान्त के ही लगभग सच होने की संभावना सामने आ गई है। मोटे तौर पर उस फिल्म के निर्माण के पीछे इसी वैज्ञानिक संभावना को काल्पनिक फंतासी के रूप में चित्रित किया गया था कि किसी भी अतिसीमित स्रोत से डीएनए को प्राप्त करके और उन्हें कुछ दूसरी प्रकार के डीएनए के साथ मिलाकर किसी विलुप्त हो गई प्रजाति को पुनः जीवित किया जा सकता है।

विज्ञान की इस नई युगान्तरकारी उपलब्धि के क्षेत्र में जैव चिकित्सकीय प्रयोगशालाओं में पिछले तीन वर्षों से कार्य किया जा रहा है। इस अवधि में शोधार्थियों ने अंधत्व का कारण बनने वाले उत्परिवर्तनों को निष्क्रिय कर देने में; कैंसरजनक कोशिकाओं के बहुगुणन को बाधित करने

*'अनुकम्पा', वाई-2 सी, 115/6, त्रिवेणीपुरम्, झूँसी, इलाहाबाद-211 019.

में, और एड्स का कारण बनने वाले विषाणुओं के प्रति कोशिकाओं को अभेद्य बनाने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। इस दिशा में कार्य करने वाले कृषि वैज्ञानिकों को भी गेहूँ की फसल को कृषि के लिए संघातक चूर्ण मिल्ड्यू नामक कवक के प्रति प्रतिरोधी बना देने में सफलता मिल गई है। यह सफलता इस दिशा की ओर भी इंगित कर रही है कि इस प्रकार की 'अनियन्त्रित फसलें' विश्व की 9 बिलियन की जनसंख्या और उसके निरंतर वृद्धिशील समूह का भी पेट भरने में सहायक हो सकती हैं।

जैव अभियांत्रिकी के इस कदम ने क्रिस्पर-कैस 9 का उपयोग यीस्ट या खमीर के डीएनए के रूपांतरण के लिए भी किया जिससे वह पौधों के

क्रिस्पर तकनीक द्वारा तैयार जीन संपादित पौधे

पदार्थ तत्व को नष्ट करके इथेनॉल को विसर्जित करने में सक्षम हो जाता है। इस चरण से एक सबसे बड़ी आशा यह जगती है कि वर्तमान समय की भाँति पेट्रोरसायन पर मानव समाज की पूर्ण निर्भरता समाप्त हो सकती है। इस क्षेत्र में कार्यरत मैक्समेन महोदय का भी कुछ ऐसा ही विचार है। संप्रति संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दो सर्वाधिक प्रख्यात विश्वविद्यालय - यू सी बर्कले तथा इंस्टीट्यूट ऑफ एम आई टी और हार्वर्ड, इस तकनीक के मूल स्वत्वाधिकार के लिए आपस में संघर्षरत हैं। भविष्य का एक सुखद इन्द्रधनुषी चित्र खींचते हुए मैक्समेन महोदय कहते हैं कि यह विज्ञान की एक इतनी बड़ी उपलब्धि है कि इससे संलग्न लोग अपनी प्रवृत्ति के अनुसार, धरती के एक अति उज्ज्वल भविष्य या संभावित नोबेल पदक अथवा प्रभूत धनवर्षा - इनमें से किसी की भी मनचाही कल्पना कर सकते हैं। क्रिस्पर के आगमन ने अब आनुवंशिकी के शोध अध्येताओं के लिए अपने अधिकाधिक पागलपन भरे स्वप्नों को भी सत्य करने का मार्ग खोल दिया है- भले ही वह 'शिशुओं के निर्माण' का स्वप्न हो या आक्रामक उत्परिवर्तकों का स्वप्न हो या जैव शस्त्रास्त्रों का स्वप्न हो! 'हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ' में शोधकर्ताओं द्वारा क्रिस्पर का उपयोग करके एनॉफिलीज गैम्बी (Anopheles gambiae) नामक मच्छर प्रजाति के लार्वा के जीनोम में मलेरिया प्रतिरोधी जीनों को निवेशित कराने का प्रयास चल रहा है। यदि वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से देखें तो इस प्रकार के प्रयास तो बहुत वर्षों से विज्ञान जगत में चल रहे थे, परन्तु क्रिस्पर तकनीक इसकी एक अति तीव्र गति वाली पद्धति है। इस नवीनतम तकनीक के समक्ष पूर्व की तकनीकें लेसर कटर के समक्ष जंग लगी कैंचियों जैसी निष्प्रभावी सिद्ध हो रही हैं। पूर्व तकनीकों का उपयोग करके तो एक सामान्य मकड़ी विज्ञानी (aracheologist) भी मकड़ी के भ्रूण से पंख वाले जीनों को निष्कासित करके फिर उस मकड़ी के वयस्क होने तक परिणाम के लिए प्रतीक्षा करता बैठा रह सकता है। परन्तु, अब इन नई विकसित तकनीक के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक अनुसंधान को समर्पित प्रयोगशालाएँ और औषधि उत्पादक कंपनियों की प्रयोगशालाएँ क्रिस्पर तकनीक आधारित कुछ ऐसे शोध-सहायक-साधनों जैसे कैंसरकारी चूहों को विकसित कर रही हैं जो नई

क्रिस्पर-कैस 9 द्वारा निर्मित लेट्यूस के पौधे

केमोथिरैपी (रसायन चिकित्सा) को प्रभावशीलता के परीक्षण के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें।

एम आई टी स्थित एक शोध दल ने वैज्ञानिक फेंग जैंग महोदय के साथ मिलकर क्रिस्पर-कैस 9 की तकनीक के उपयोग से कुछ ही सप्ताहों में ऐसे चूहों को विकसित करने में सफलता पा ली है जिनका कैंसरग्रस्त हो जाना अवश्यभावी है। पूर्व में ऐसे चूहों के लिए कम से कम एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी।

फेंग जैंग

कुछ समय पूर्व चीन ने यह दावा किया था कि उनके वैज्ञानिकों ने मानव भ्रूणों में जीन स्तर पर संशोधन करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। यह समाचार संपूर्ण विश्व के वैज्ञानिक समाज में हलचल पैदा करने के लिए पर्याप्त थी। यह मात्र हलचल ही नहीं थी। इस समाचार ने अनेक उन्नत देशों को इस दिशा में तीव्रता से शोधकार्यों को बढ़ाने के लिए प्रेरित भी किया।

इस संबंध में सबसे पहला कदम उठाया यूनाइटेड किंगडम की सरकार ने जहाँ कैथी नाइकेन नामक स्टेमकोशिका वैज्ञानिक को मानव भ्रूणों के जीन संशोधन या संपादन की अनुमति प्रदान कर दी गई। वस्तुतः यह विषय इतना संवेदनशील है कि सभी देशों की सरकारें और मानवाधिकार आयोग जैसी विश्व की अनेक संस्थाएँ इस प्रकार के शोधों पर निरन्तर प्रश्न उठाती रहती हैं। अतः ब्रिटेन द्वारा अपने वैज्ञानिकों को दी जाने वाली यह अनुमति इस दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण थी कि इन प्रथम प्रयासों से प्रभावित होकर अब इस दिशा में शोध कार्य को गति मिल जाएगी।

लंदन के फ्रांसिस क्रिक इंस्टीट्यूट में कार्यरत स्टेमकोशिका वैज्ञानिक कैथी नाइकेन द्वारा प्रसारित एक विज्ञप्ति में यह कहा गया है कि उन्हें मानव निषेचन और भ्रूण विज्ञान प्राधिकरण HFEA (ह्यूमन फर्टिलाइजेशन एण्ड

एम्ब्रिऑलॉजी अथॉरिटी) से मानव भ्रूणों पर उक्त नई तकनीक से जीन संपादन की अनुमति मिल गई है। वर्तमान समय में तो यह अनुमति केवल शोध के उद्देश्य से ही प्रदान की गई है और शोधरत वैज्ञानिकों को यह अधिकार नहीं है कि वे नैदानिक उद्देश्यों के लिए या महिलाओं के गर्भाशय में रोपण के लक्ष्य से इन संपादित भ्रूणों का उपयोग कर सकें। इस विषय में शोध के लिए कैथी नाइकेन महोदया जीन संपादन की उपरोक्त नवीनतम तकनीक क्रिस्पर-कैस 9 का ही उपयोग करने की इच्छा रखती हैं। जैसा कि बताया जा चुका है क्रिस्पर-कैस 9 एक ऐसी तकनीक है जिससे जीनों को सरलता से और तीव्र गति से स्थानान्तरित करना संभव हो जाता है। वैज्ञानिक जान चुके हैं कि यह एक ऐसी युगान्तरकारी तकनीक है जिससे इच्छानुसार 'शिशुओं का निर्माण' या 'घातक जैव शस्त्रास्त्रों का निर्माण' भी सरलता से संभव हो सकता है। इस तकनीक की यही सक्षमता ही वर्तमान समय में वैज्ञानिकों के मध्य विवाद का विषय बनी हुई है क्योंकि मानव भ्रूणों के साथ अधिक हेरफेर की संभावनाएँ अभी अनेक नैतिक प्रश्नों और आशंकाओं को जन्म दे रही हैं।

इसका सार्थक पक्ष यह है कि क्रिस्पर-कैस 9 विधि मानव भ्रूणों में विद्यमान जीनी त्रुटियों के संशोधन में भी सक्षम है। इस संभावना को देखते हुए अनेक वैज्ञानिक इसे भ्रूण विज्ञान की संपूर्ण नियमावली को परिवर्तित कर सकने वाली तकनीक मान रहे हैं। ब्रिटेन स्थित 'ह्यूमन जेनेटिक्स एलर्ट' (मानव जीन सचेतक) नामक एक समूह के निदेशक डेविड किंग महोदय ने आशंका जताई है कि कैथी नाइकेन के शोधकार्य अन्ततः सुजनन विज्ञान (Eugenics) की एक उपभोक्तावादी संस्कृति को विकसित करने का कारण बन जायेंगे। आशंका यही है कि विश्वभर को अपने चंगुल में फँसा लेने वाला बाजारवाद इस क्षेत्र में भी अपना दुष्प्रभाव दिखाने में पीछे नहीं रहेगा और नवीन जीन तकनीक की यह क्षमता पेड़ पौधों की ही भाँति जी एम (GM) शिशु बनाने की ओर अग्रसर हो सकती है।

यही कारण है कि वैज्ञानिकों का एक वर्ग इस मान्यता के विरोध में खड़ा है। प्रोग्रेस एजूकेशनल ट्रस्ट की निदेशिका सारा नॉरक्रास अपनी संस्था के माध्यम से जीन संबंधी शोधकार्यों की विवेकपूर्ण और नैतिक अनुप्रयोज्यता के पक्ष में कार्यरत हैं। उनका मत है कि HFEA (ह्यूमन फर्टिलाइजेशन एण्ड एम्ब्रिऑलॉजी अथॉरिटी) द्वारा इस शोध कार्य को हरी झंडी देना नैतिकता के निरर्थक नारों और अनावश्यक भय पर एक विवेकपूर्ण विजय है।

इस दिशा में गंभीर शोधकार्यों में रत वैज्ञानिकों का आशय निश्चित ही इस जीन संपादन द्वारा 'आज्ञानुसार और इच्छानुसार शिशु निर्माण' नहीं है। स्वयं कैथी नाइकेन महोदया कहती हैं कि उनका उद्देश्य जीनी संशोधन द्वारा मानव प्रजनन हेतु भ्रूणों में संशोधन करना नहीं है। वास्तव में वे विज्ञान के क्षेत्र को उस ज्ञान से समृद्ध करना चाहती हैं जिसमें यह पता लग सके कि कैसे एक पूर्णतः स्वस्थ भ्रूण विकसित होता है। यह ज्ञान वन्ध्यता के उपचार की दिशा में तथा परखनली शिशु को प्रजनन में भी अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकता है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि यह सारे शोध कार्य उन भ्रूणों पर ही किए जायेंगे जो ''अनावश्यक'' माने गये हों।

अपने शोधकार्य का श्रीगणेश उन्होंने जिस प्रथम जीन से किया है उसे उन्होंने नाम दिया है 'अक्टू 4'। संभवतः कार्य प्रारंभ की तिथि पर यह नामकरण किया गया हो। इस जीन पर शोध द्वारा वह मानव भ्रूण के बिल्कुल प्रारंभिक चरणों के विकास का गहन अध्ययन करने की इच्छुक हैं। एडिनबरा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत रोजलिन इंस्टीट्यूट के ब्रूस व्हाइटलॉ महोदय भी इस प्रकार के शोध के पक्ष में हैं और HFEA के निर्णय का पूरी तरह समर्थन करते हैं।

इस शोध से संबंधित सभी वैज्ञानिकों का यही मत है कि इस परियोजना द्वारा भ्रूण वैज्ञानिकों की मानव भ्रूणों के विकास और वृद्धि संबंधी ज्ञान की प्रगति के साथ-साथ उन चिकित्सीय नीतियों की समझ भी बढ़ेगी जिससे वे वन्ध्यता के अभिशाप और गर्भपातों के कष्ट को कम करने में समर्थ हो जायेंगे। मानव भ्रूणों में जीन संपादन संबंधी यह शोध जीन संशोधन की क्रिस्पर-कैस 9 तकनीकजन्य एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि बनने के मार्ग पर अग्रसर है।

कुछ शब्दों में कहें तो इस नई तकनीकी क्रिस्पर-कैस 9 द्वारा जीव जगत के सभी पूर्व स्थापित नियमों का रूपांतरण कर डालना बड़ा सरल हो गया है। इच्छानुसार जीवविज्ञानी जब चाहें किसी नई प्रजाति का निर्माण भी कर सकते हैं और किसी पूर्व स्थित प्रजाति को धरती तल से समाप्त भी कर सकते हैं। तथापि चेतावनी के रूप में एक तथ्य के प्रति सजग रहना बहुत आवश्यक है कि ऐसी छेड़छाड़ के जैव तंत्र पर बहुत दूरगामी प्रभाव आवश्यंभावी हैं। यदि मलेरिया का समूल विनाश करने के लिए नए जीन संपूर्ण मच्छर प्रजातियों को ही विनष्ट कर देंगे तो चमगादड़ अपना भोजन कहाँ से पाएँगे? इस एक बात पर तो सभी प्रबुद्ध जन एकमत हैं कि जैवतंत्र में एक भी जीव का विनाश संपूर्ण तंत्र के संतुलन को विस्थापित कर देता है। सत्य तो यह है कि अभी कोई नहीं जानता कि अनुसरण किए जाने वाले नियम क्या होंगे या क्या होने चाहिए? यह भी तय करना कठिन है कि इन नियमों में सेंध लगाकर उसे भंग करने वाला प्रथम कौन होगा?

हृदयाघात रोकने वाले दो प्रोटीनों की पहचान

वैज्ञानिकों ने दो ऐसे प्रोटीनों की पहचान की है जो दिल के दौरे और हृदयाघात को नियंत्रित करने में मददगार हो सकते हैं। ये प्रोटीन दिल की वृद्धि को नियंत्रित करते हैं और उसे उच्च रक्तचाप को सहन करने की अनुकूलता प्रदान करते हैं। शोधकर्ताओं के अनुसार, दिल की असामान्य वृद्धि के कारण दौरा पड़ने का खतरा बढ़ जाता है। ऐसे में ये दोनों प्रोटीन दिल की अत्यधिक वृद्धि के कारण हृदय-गति रुकने की समस्या के समाधान के लिए नई रणनीति बनाने में मददगार हो सकते हैं। यह शोध स्पेन के नेशनल सेंटर फॉर कार्डियोवस्कुलर रिसर्च (सीएनआईसी) ने किया है। मुख्य शोधकर्ता ग्वाडैलूप सेबियो ने पहली बार दिखाया कि पी38 गामा और पी38 डेल्टा नामक दो प्रोटीन दिल की वृद्धि को नियंत्रित करते हैं। उम्र के प्रत्येक चरण में दिल अपनी जरूरतों के अनुसार अपना आकार बदलता है। शारीरिक श्रम में कमी, उच्च रक्तचाप और मोटापा जैसी समस्याएँ भी दिल की वृद्धि के लिए जिम्मेदार होती हैं।

मानव शरीर में वसा अम्लों के प्रभाव तथा आवश्यकता

संजय गोस्वामी*

आवश्यक वसीय अम्ल (अंग्रेजी : एसेन्शियल फैटी एसिड, ई.एफ.ए.) जिसे प्रायः विटामिन-एफ भी कह देते हैं, वसीय अम्ल (फैटी एसिड) से बना होता है। इसीलिए इसका नाम विटामिन-एफ पड़ा है। ये दो प्रकार के होते हैं- ओमेगा-3 तथा ओमेगा-6। वसीय अम्ल सीधी कड़ी हाइड्रोकार्बन होते हैं जिनमें एक कार्बाक्जिल (COOH) समूह एक सिरे पर जुड़ा होता है। इस समूह से अगला कार्बन α (अल्फा) कहलाता है और उससे अगला कार्बन β (बीटा) और इसी प्रकार अन्य कार्बन अणुओं का नामकरण होता है। क्योंकि जैव वसीय अम्ल विभिन्न लंबाइयों के हो सकते हैं, इनकी अंतिम पोजीशन "Ω" (ओमेगा) कहलाती है, जो यूनानी भाषा की वर्णमाला का अंतिम अक्षर है। असंतृप्त वसीय अम्लों के संरचनात्मक गुण प्रथम असंतृप्ति बन्ध पर निर्भर करते हैं, न कि कार्बाक्जेलेट पर; अतः ये पोजीशन (Ω घटा n) द्वारा दिखायी जाती है। इस विटामिन का मुख्य कार्य शरीर के ऊत्तकों का निर्माण और उनकी मरम्मत करना होता है। फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन (एफ.डी.ए.) विटामिन-एफ को अपने दिन के पूरे कैलोरी भुक्तक्रिया (इन्टेक) में से एक से दो प्रतिशत ग्रहण करने का सुझाव देता है। इसके अलावा, शरीर के चयापचय, बालों तथा त्वचा के लिए भी विटामिन-एफ काफी लाभदायक होते हैं। मानव शरीर में अधिकतर वसा अम्लों में 14 से 24 कार्बन की लड़ या शृंखला होती है, जिसका एक सिरा कार्बोक्सिल COOH से बँधा रहता है। अतः इसे कार्बोक्सिल सिरा कहते हैं और दूसरा सिरा मिथाइल CH_3 से बँधा रहता है जिसे मिथाइल या ओमेगा सिरा कहते हैं। फैटी एसिड की लड़ में कार्बोक्लिेट के बाद वाले कार्बन को α (अल्फा) उससे अगले को β (बीटा) और इस तरह गिनते हुए आखिरी कार्बन को ओमेगा (ग्रीक वर्णमाला का आखिरी अक्षर) कहते हैं। फैटी एसिड की लड़ में सामान्यतः कार्बन के परमाणुओं की संख्या सम होती है क्योंकि इनकी उत्पत्ति दो कार्बन वाले एंजाइम एसीटाइल कोए से होती है। फैटी एसिड का निर्माण ट्राइग्लीसराइड के निर्जलीकरण और ग्लीसरोल अलग होने से होता है। फैटी एसिड तीन प्रकार के होते हैं–

1. संतृप्त वसा अम्ल (Saturated Fatty Acid)
2. एकल असंतृप्त वसा अम्ल (Mono Unsaturated Fatty Acid)
3. बहु असंतृप्त वसाअम्ल (Poly Unsaturated Fatty Acids)

सामान्यतः कार्बन के परमाणु से 4 अन्य परमाणु जुड़ सकते हैं जैसे मीथेन गैस CH_4 में कार्बन से 4 हाइड्रोजन के परमाणु जुड़े हुए हैं। संतृप्त वसा अम्ल (Saturated Fatty Acid) में सारे कार्बन दोनों तरफ एक एक हाइड्रोजन परमाणु से एकल बंधन द्वारा बँधे रहते हैं। ये सामान्य तापमान पर ठोस रहते हैं।

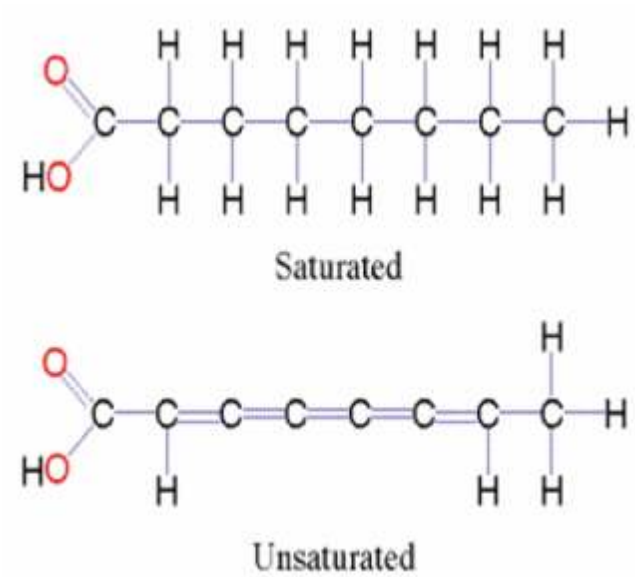

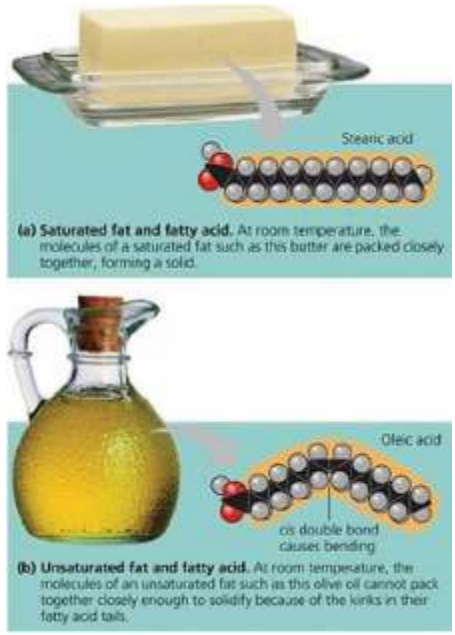

*यमुना जी/13, अणुशक्तिनगर, मुंबई- 400 094.

एकल असंतृप्त वसाअम्ल (Mono Unsaturated Fatty Acid) में सिर्फ दो कार्बन ऐसे होते हैं जो दो के स्थान पर एक ही हाइड्रोजन से बँधे होते हैं और संतुलन बनाये रखने के लिए ये आपस में द्विबंध द्वारा जुड़ते हैं, यानी इनमें सिर्फ एक द्विबंध होता है। ये सामान्य तापमान पर तरल रहते हैं। यदि कार्बन की लड़ में एक से ज्यादा द्विबंध हों तो उसे बहु असंतृप्त वसा अम्ल (Poly Unsaturated Fatty Acids) कहते हैं। लगभग सारे तेल असंतृप्त या अन-सेचुरेटेड फैट होते हैं। ये भी सामान्य तापमान पर तरल रहते हैं।

आवश्यक फैटी एसिड

आवश्यक फैटी एसिड जिसे प्रायः विटामिन-एफ भी कह देते हैं, फैटी एसिड से बना होता है। इसीलिए इसका नाम विटामिन-एफ पड़ा है। ये दो प्रकार के होते हैं- ओमेगा-3 तथा ओमेगा-6। इस विटामिन का मुख्य कार्य शरीर के ऊतकों का निर्माण और उनकी मरम्मत करना होता है। फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन (एफ.डी.ए.) विटामिन-एफ को अपने दिन के पूरे कैलोरी भुक्तक्रिया (इन्टेक) में से एक से दो प्रतिशत ग्रहण करने का सुझाव देता है। इसके अलावा, शरीर के चयापचय, बालों तथा त्वचा के लिए भी विटामिन-एफ काफी लाभदायक होते हैं। शरीर में जब भी कहीं चोट लगती है तो उससे त्वचा के ऊत्तकों को काफी हानि पहुँचती है। विटामिन-एफ इन ऊत्तकों की मरम्मत कर उन्हें ठीक करते हैं।

आवश्यक वसा अम्लों की कमी के लक्षण

- शरीर की ग्रन्थियों का पर्याप्त हॉरमोन व स्राव व बनाना।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होना व घाव देर से भरना।
- शुक्राणु कम होना, बार-बार बच्चा गिरना।
- जोड़ों में गठिया (Arthritis) की शिकायत होना।
- रक्त में कोलेस्ट्रोल का बढ़ना व हृदय की गति बढ़ना।
- अपच होना, फूड एलर्जी होना।
- रूखी त्वचा, बालों का झड़ना, दाद, कुरूप नाखून।
- आँखों में रूखापन, फैटी लिवर, गुर्दों का ठीक से काम न करना।
- कमजोर दृष्टि, अवसाद, बुद्धि कमजोर होना।
- सीखने की क्षमता कमजोर होना व मूड खराब रहना।

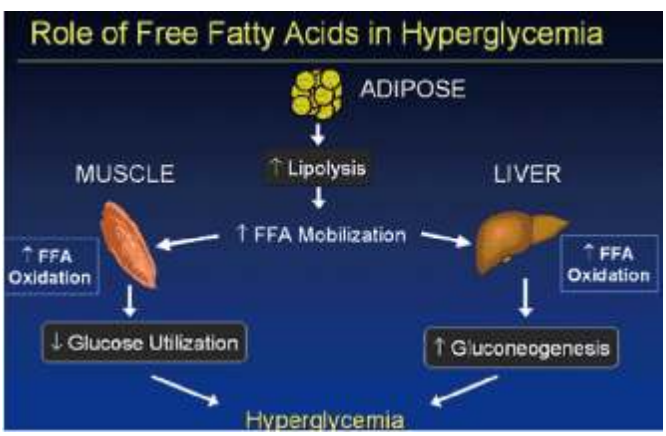

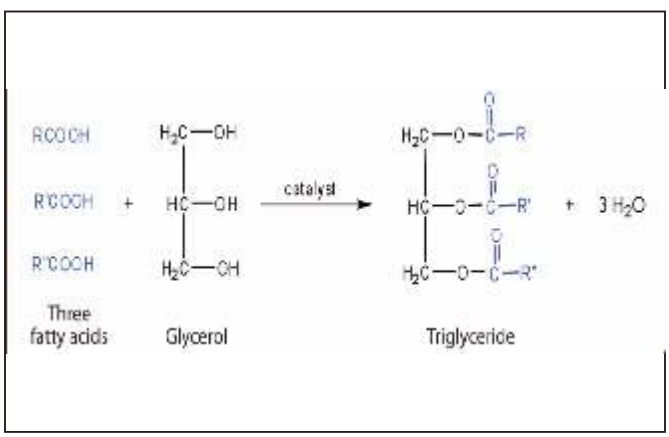

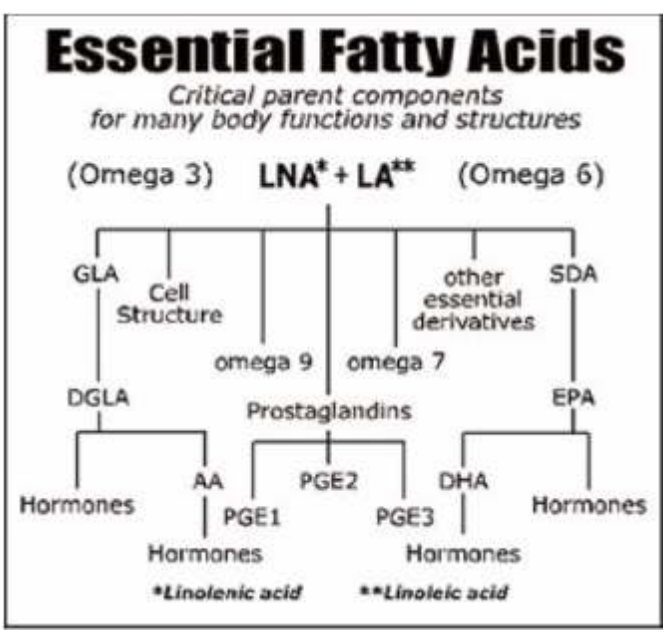

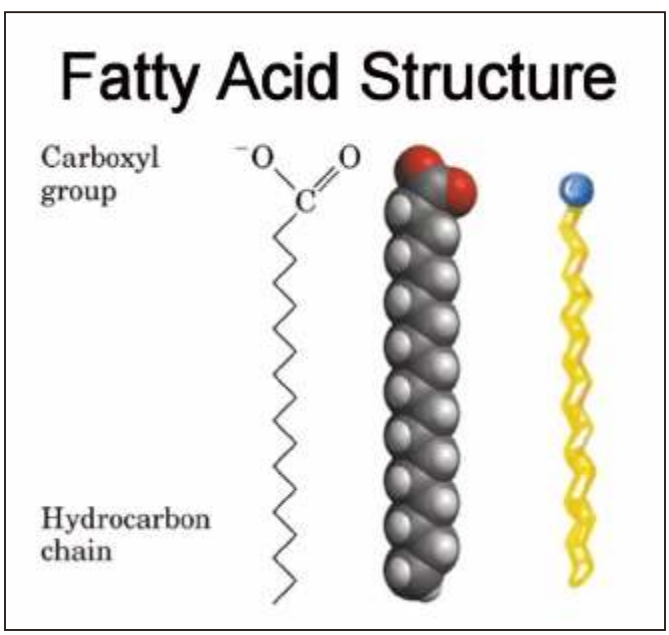

हमारे लिए अल्फा-लिनोलेनिक अम्ल (Omega-3 Fatty Acid) और लिनोनिक अम्ल (Omega-6 Fatty Acid) आवश्यक फैटी एसिड है, जिसका साफ-साफ मतलब यह है कि यह शरीर में नहीं बन सकते हैं क्योंकि स्तनधारी जीव मिथाइल या ओमेगा सिरे से नवें कार्बन के पहले द्विबंध वाले वसाअम्ल बनाने में सक्षम नहीं होते हैं। इसलिए इन्हें भोजन द्वारा लेना अत्यंत आवश्यक है। जब 1923 में इनकी खोज हुई तो इन्हें विटामिन एफ कहा जाता था। लेकिन 1930 में बर्र और मिलर ने इन्हें फैट की श्रेणी में रखना ठीक समझा।

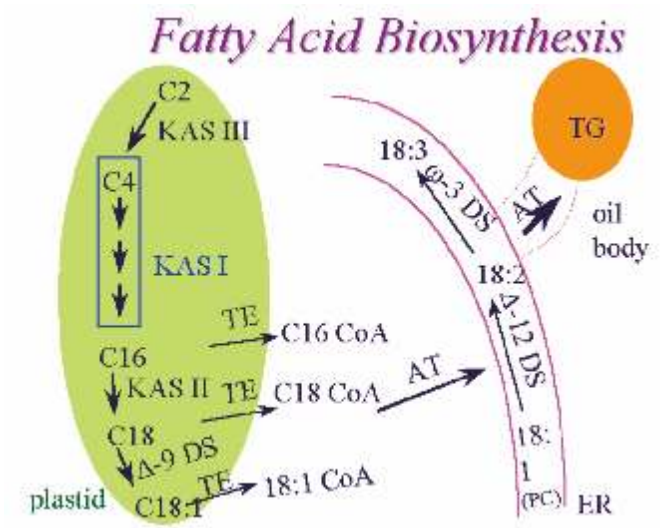

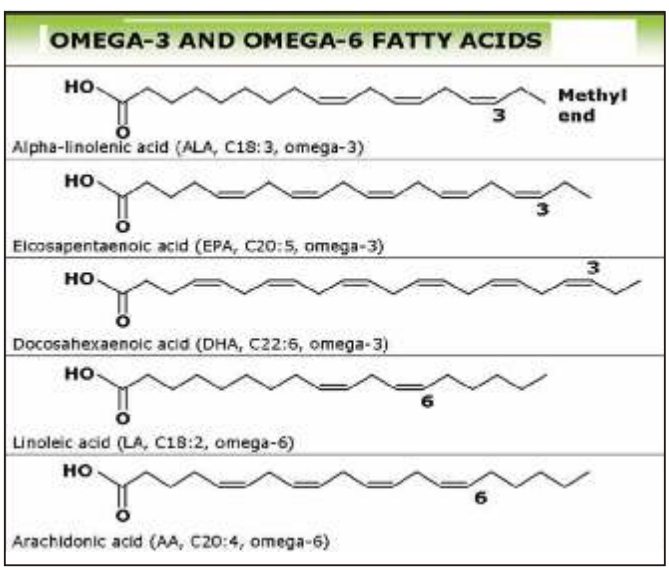

आवश्यक वसा अम्ल

1. अल्फा-लिनोलेनिक अम्ल
2. स्टियरिडोनिक एसिड
3. आइकोसाटेट्रानोइक एसिड (ETA)

1. अल्फा-लिनोलेनिक अम्ल : अल्फा-लिनोलेनिक अम्ल या ALA को संक्षेप में 18:3 n-3 लिखते हैं, जो दर्शाता है कि इस वसा अम्ल में 18 कार्बन की लड़ हैं और तीन द्विबंध हैं और पहला द्विबंध मिथाइल सिरे से तीसरे कार्बन के बाद है। इसी तरह लिनोलिक अम्ल LA को 18:2 n-6 लिखेंगे क्योंकि इस वसा अम्ल में 18 कार्बन की लड़ है और दो द्विबंध हैं और पहला द्विबंध मिथाइल सिरे से छठे कार्बन के बाद है। बीजों में कई प्राकृतिक तत्व जैसे फोस्फेटाइड्स, लेसीथिन, क्लोरोफिल, बीटा-केरोटीन आदि होते हैं जो अल्फा-लिनोलेनिक अम्ल होते हैं। α-लिनोलेनिक अम्ल एक कार्बनिक यौगिक होता है, जो कई सामान्य वनस्पति तेलों में पाया जाता है, जो कॉलेस्ट्रोल कम करते, रक्तचाप नियंत्रित रखते हैं, कैंसररोधी होते हैं, और पाचन क्रिया में सहायक होते है। और यकृत व पित्त की थैली के ठीक से कार्य करने में सहायक होते हैं। इसके अलावा दृष्टि ठीक रखते हैं, बुद्धिमत्ता बढ़ाते हैं और प्रदाह-रोधी होते हैं। फिजियोलॉजिकल विज्ञान में इसे 18:3 (n-3) लिखते हैं। α-लिनोलेनिक अम्ल एक कार्बाक्जिलिक अम्ल होता है, जिसमें 18 कार्बन परमाणु कड़ियाँ और तीन सिस दोहरे बंध होते हैं। अल्फा-लिनोलेनिक अम्ल विटामिन बी-6, मैग्नीशियम और जिंक की उपस्थिति में 6-डिसेचुरेज एंजाइम की मदद से असंतृप्त होकर स्टियरिडोनिक एसिड बनाता है। इनके सबसे अच्छे स्त्रोत अखरोट, अलसी, सूर्यमुखी, चिया, सोयाबीन, कद्दू के बीज, गाँजे के बीज और हरी सब्जियाँ हैं।

2. ओमेगा-6 या ओम-6 वसा अम्ल : ओमेगा-3 या ओम-3 वसा अम्ल बहु असंतृप्त वसा अम्लों को कहते हैं। ओमेगा-3 फैटी एसिड कोई विटामिन नहीं है लेकिन यह शरीर के लिए बहुत जरूरी है। जिनमें पहला द्विबंध मिथाइल सिरे से तीसरे कार्बन के बाद होता है। ओमेगा-6 या ओम-6 वसा अम्ल उन बहुत असंतृप्त वसा अम्लों को कहते हैं जिनमें पहला द्विबंध मिथाइल सिरे से छठे कार्बन के बाद होता है। लिनोलेलिक एसिड LA ओम-6 या ओमेगा-6 श्रेणी की वसा अम्ल है जो सभी खाद्य तेलों में बहुतायात में पाया जाता है। इसके मुख्य स्त्रोत करड़ी (सफोला) का तेल, बिनोले का तेल, सूर्यमुखी का तेल, मूँगफली का तेल, मकई का तेल, अलसी का तेल आदि है। ये गामा लिनोलेलिक एसिड बनाते हैं। इस क्रिया में मैग्नीशियम इंसुलिन, विटामिन सी, विटामिन बी3, विटामिन बी6, फोलिक एसिड और व्यायाम मदद करते हैं। हालाँकि हाइड्रोजिनेटेड फैट, ट्राँस फैट, बढ़ा हुआ कोलेस्ट्रोल, संतृप्त वसा, मार्जरिन, वायरस संक्रमण, कार्सिनोजन, रेडियेशन, ग्लुकागोन और जीर्णता इस परिवर्तन को बाधित करते हैं। इन सबमें हाइड्रोजिनेटेड फैट सबसे खतरनाक है। ये प्रदाहरोधी (anti-inflammatory) हैं, भूख कम करते हैं, कैंसर-रोधी हैं, रक्षा प्रणाली को उत्कृष्ट बनाते हैं, बिंबाणुओं (platelets) का चिपचिपापन कम करते हैं, कोलेस्ट्रोल कम करते हैं, रक्त-वाहिकाओं और श्वाँस नली का विस्तारण करते हैं, साइक्लिक AMP को बढ़ाते हैं, कैल्शियम की गतिविधि को नियंत्रित करते हैं, थाइमस को उत्तेजित करते हैं, हृदय को ऊर्जा देते हैं और नाड़ी संदेश वाहकों का स्राव करते हैं। ओमेगा-3 फैटी एसिड के स्त्रोत ठंडे पानी की मछलियाँ जैसे सरडीन, सालमोन, कोड, हेलीबुट, हेरिंग, ट्रॉट, टुना आदि हैं। यह अवश्य याद रखें कि DHA और EPA आवश्यक फैटी एसिड नहीं हैं, यानी ये शरीर में विटामिन बी-6 और मैग्नीशियम की मदद से ALA से EPA में और EPA से DHA में परिवर्तित हो जाते हैं। जो शक्तिशाली थक्का-रोधी है।

3. आइकोसाटेटूनोइक एसिड (ETA) : लोन्गेज एंजाइम की मदद से स्टियरिडोनिक एसिड लंबा होकर आइकोसाटेट्रानोइक एसिड बनता है जो

ISSN 2231 - 2455

विटामिन सी, नायसिन और जिंक की उपस्थिति में 5-डी-सेचुरेज एंजाइम की मदद से आइकोसापेन्टानोइक एसिड (EPA) बनाता है। फिजियोलॉजिकल विज्ञान में इसे 18:4 (ω-3) लिखते हैं। आइकोसापेन्टानोइक एसिड (EPA) असंतृप्त और लंबा होकर डोकोसेहेग्जानोइक एसिड बनता है। आइकोसापेन्टानोइक एसिड (EPA) ही तृतीय शृंखला के प्रोस्टाग्लेन्डिन (PG-3), थ्रोम्बोक्सेन (TXA-3) और ल्युकोट्राइन (TLB-5) बनाता है, जो प्रदाह-रोधी, रक्त-वाहिका विस्तारक हैं और बिम्बाणुओं का चिपचिपापन कम करते हैं। अल्फा-

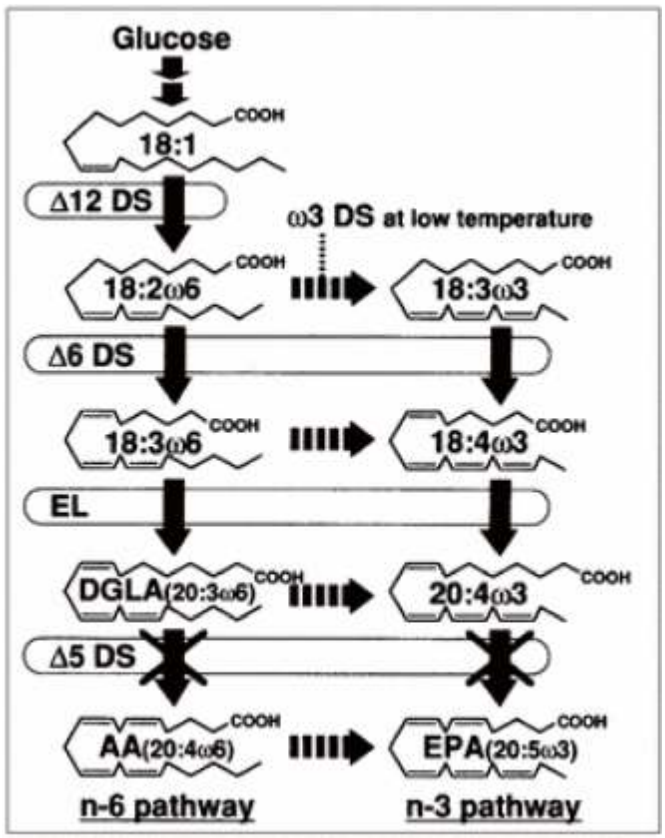

लिनोलेनिक अम्ल रक्त-वाहिका के लिए आवश्यक है। इनके सबसे महान स्रोत अलसी, अखरोट, सूर्यमुखी, चिया, सोयाबीन, कद्दू के बीज, गाँजे के बीज और हरी सब्जियाँ हैं। यह दिल संबंधी रोग, हाइपरटेंशन, गठिया, अल्जाइमर, मधुमेह आदि के जोखिम से बचाता है। इसमें ऐसे एंटी-इंफ्लेमेट्री गुण होते हैं जो मेनोपॉज के बाद महिलाओं के लिए उपयोगी होते हैं। 40 साल से अधिक के लोगों को दिल संबंधी रोगों का खतरा अधिक रहता है। ऐसे में यह दिल को सेहतमंद रखने में लाभकारी होते हैं। ये धड़कनों को कम कर देते हैं जिससे अचानक दिल का दौरा पड़ने का जोखिम कम हो जाता है।

ओमेगा-3 की पर्याप्त खुराक लेने से तनाव, गुस्से और चिड़चिड़ेपन में कमी आती है। बालों को घना व मजबूत बनाने के लिए भी ओमेगा-3 महत्वपूर्ण है। इसे खाने से जोड़ों के दर्द की समस्या भी नहीं होती। इसका निर्माण शरीर खुद नहीं कर पाता इसलिए इसकी पूर्ति खाद्य पदार्थों से की जाती है। प्रमुख स्रोत शाकाहारी लोग हरी पत्तेदार सब्जियों, सरसों, राई, अलसी के बीज, सोयाबीन, मूँग दाल, काली दाल, अखरोट, कद्दू के बीज व इनका तेल और तिल के तेल से इसे प्राप्त कर सकते हैं। यह तेलों का परिष्करण या रिफाइनिंग का एक आधुनिक तकनीक है जिसमें बीजों को उच्च तापमान 200°C से 500°C के बीच कई बार गर्म किया जाता है, घातक पेट्रोलियम उत्पाद हेग्जेन का प्रयोग किया जाता है और तेल को रिफाइन, गंधहीन और रंगहीन बनाने के लिए कई घातक रसायन जैसे कास्टिक सोडा, फोसफोरिक एसिड, ब्लीचिंग क्लेज आदि मिलाये जाते हैं, ताकि यदि निर्माता सस्ते, हानिकारक और खराब बीजों से भी तेल निकाले तब भी उपभोक्ता को पता नहीं चले। आधुनिक समाज के लिए बहुत ही दुर्भाग्य की बात है कि खाद्य तेल निर्माताओं ने अपने स्वार्थ के लिए हमारे भोजन से आवश्यक वसा अम्ल (ओम-3 वसा अम्ल) अल्फा-लिनोलेनिक अम्ल को पूरी तरह हटा दिया है। खाना बनाने के लिए रिफाइन्ड तेल काम में नहीं लेना हैं। बल्कि कच्ची घाणी का निकला नारियल, तिल या सरसों का तेल काम में लेना है। जहाँ तक हो सके खाना उबालकर या प्रेशर कुकर में या भाप में पकाना है। खाना बनाने के बाद उसमें अच्छे कारक वसा, (अखरोट, सूर्यमूखी, चिया, सोयाबीन) का प्रयोग करें।

भारत ने 'जीका' वायरस का पहला टीका बनाया

दुनियाभर में 'जीका' वायरस के बढ़ते गंभीर खतरे के बीच भारत ने इसका टीका तैयार किया है। हैदराबाद की कंपनी भारत बायोटेक ने यह दावा किया। जीका वायरस मच्छरों से पैदा होता है और यह नवजात बच्चों को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। कंपनी के अध्यक्ष सह प्रबंध निदेशक कृष्णा एले ने कहा कि कंपनी ने एक साल पहले जीका वायरस पर काम करना शुरू किया था। उन्होंने विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट का जिक्र करते हुए कहा, जीका अब 23 देशों में मौजूद है।

अगर सब ठीक रहा तो कंपनी चार महीने में टीके के 10 लाख डोज बना सकती है। कंपनी का कहना है कि भारत को इसका इस्तेमाल उन देशों की मदद में करना चाहिए, जिन्हें इसकी जरूरत है। इसके लिए कंपनी पीएम मोदी का दखल चाहती है। भारत बायोटेक के चेयरमैन कृष्णा का कहना है कि हमने जीका का टीका 'जीकावैक' विकसित करने की दिशा में शुरुआती प्रगति की है। जीका के उपचार के लिए वैश्विक पेटेंट के लिए आवेदन करने वालों में हम संभवतः सबसे पहले हैं।

न्यूरोट्रांसमीटर : हमारे मन और मिजाज के निर्धारक

प्रो० कृष्ण कुमार मिश्र*

न्यूरोट्रांसमीटर, अलग-अलग न्यूरॉनों के बीच संचार के लिए जिम्मेदार रासायनिक संदेशवाहक हैं। ये रासायनिक यौगिक न्यूरोवैज्ञानिकों के लिए हमेशा विशेष रुचि के विषय रहे हैं। न्यूरोट्रांसमीटर मनुष्य का मन, मिजाज, उसकी मनोदशा, प्रेरणा, यहाँ तक कि दिन प्रतिदिन के व्यवहार जैसी सम्पूर्ण जैविक गतिविधियों को संचालित करते हैं। प्रस्तुत आलेख में कुछ प्रमुख न्यूरोट्रांसमीटरों का रसायन विज्ञान के दृष्टिकोण से वर्णन करने का एक प्रयास किया गया है। मनुष्य के सोचने, कार्य करने अथवा महज जीवित रहने के लिए भी शरीर की कोशिकाओं का एक-दूसरे के साथ परस्पर संचार करना आवश्यक है। कोशिकाएँ ऐसा दो प्रणालियों के माध्यम से करती हैं। पहला हॉर्मोनी प्रणाली, जिसमें कुछ रसायन परिसंचरण में सीधे अन्तःस्रावी ग्रन्थियों द्वारा स्रावित होते हैं तथा वे क्रमिक लक्ष्य कोशिकाओं तक संदेश पहुँचाते हैं। दूसरी संचार प्रणाली है तंत्रिका-तंत्र, जिसमें विद्युत संकेत तंत्रिका आवेग के रूप में उत्पन्न होते हैं जो साधारणतया बाह्य उद्दीपनों के लिए त्वरित प्रतिक्रिया के साथ जुड़े होते हैं। ये दोनों संचार प्रणालियाँ शरीर के अन्दर पृथक्कृत नहीं होती हैं, बल्कि ये बहुत एकीकृत और अपने कार्यों में अन्योन्याश्रित होती हैं। तंत्रिका-तंत्र को मस्तिष्क और मेरु-रज्जु को मिलाकर केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र (सी.एन.एस.) तथा अन्य सभी तंत्रिकीय ऊत्तकों को मिलाकर परिधीय तंत्रिका-तंत्र (पी.एन.एस.) के रूप में विभाजित किया गया है। केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र को तंत्रि कोशिका (न्यूरॉन) के आरोही (मस्तिष्क की ओर) तथा अवरोही (मस्तिष्क से परे) पथों में विभाजित किया गया है। उसी तरह परिधीय तंत्रिका-तंत्र को भी दो भागों में विभाजित किया गया है। पहला अभिवाही (संवेदी) न्यूरॉन जो अपनी सूचना को केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र तक पहुँचाते हैं तथा दूसरा अपवाही (प्रेरक) न्यूरॉन जो अपनी सूचना को केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र से दूर ले जाते हैं। तंत्रिका तंत्र की प्राथमिकता संरचनात्मक इकाई न्यूरॉन, एक तंत्रिका कोशिका है। दिये गये चित्र में एक विशेष न्यूरॉन की आकारिकीय विशेषताओं को प्रदर्शित किया गया है। न्यूरॉन के पास बहुत शाखाओं वाली एक कोशिका-काय होती है। इन शाखाओं को द्रुमाश्म, तंत्रिकाक्ष तथा अंतस्थ तंतु कहते हैं। तंत्रिका आवेग के संचरण से झिल्ली की पारगम्यता में परिवर्तन आता है, जिसके परिणामस्वरूप Na^+ - K^+ आयन का मुक्त प्रसार होता है। आवेग द्रुमाश्म से कोशिकाकाय में और उसके बाद तंत्रिकाक्ष से होते हुए नीचे अंतस्थ तंतु को चला जाता है। यह आवेग सिनेप्स से होकर प्रसारित होता है, जो कि एक न्यूरॉन से दूसरे न्यूरॉन तक सूचना पहुँचाने का विशेष सम्पर्क क्षेत्र होता है।

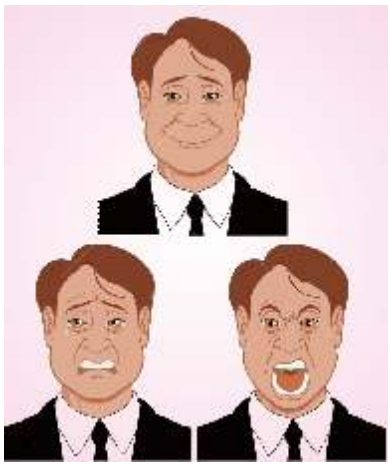

अलग-अलग मिजाज

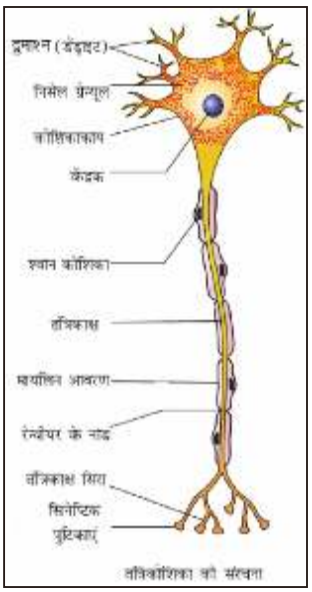

तंत्रिकाकोशिका की संरचना

तंत्रिका तंत्र को कार्यात्मक रूप से गतिशील बनाने वाले अणुओं को न्यूरोट्रांसमीटर (तंत्रिका संचारी) कहते हैं। परिभाषा के अनुसार, न्यूरोट्रांसमीटर एक रासायनिक पदार्थ है जो न्यूरॉन से सिनेप्टिक (अन्तर्ग्रन्थीय) रूप में उत्पन्न होता है और उसके बाद दूसरी कोशिका को विशिष्ट तरीके से प्रभावित करता है।

फ्लोरे ने 1962 में सिनोप्टिक संचरण करने वाले रसायन के लिए 'न्यूरोट्रांसमीटर' शब्द की खोज की थी। केंडल और शूलार्ज (1981) के

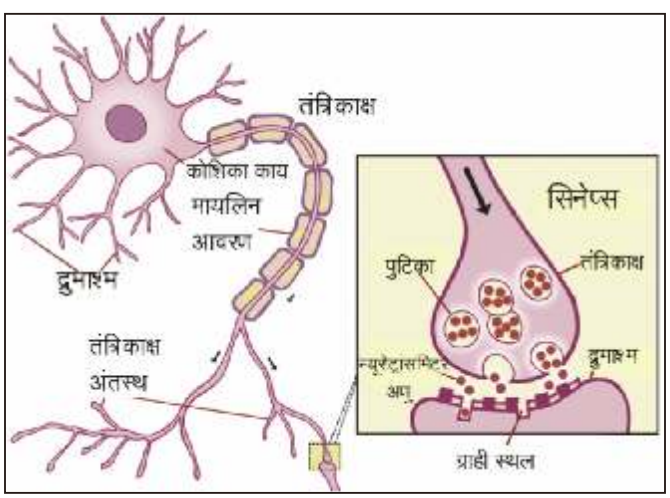

*होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान (डीम्ड यूनिवर्सिटी), वी.एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द, मुंबई - 400 088.

ISSN 2231 - 2455

अनुसार, किसी पदार्थ के शुद्ध न्यूरोट्रांसमीटर के रूप में वर्गीकृत होने के लिए चार शर्तें पूरी होनी चाहिए। रासायनिक पदार्थ का उत्पादन न्यूरॉन द्वारा होना चाहिए, यह पड़ोसी न्यूरॉन पर प्रभाव डालने के लिए न्यूरॉन से निर्धारित मात्रा में उत्पन्न होना चाहिए, उचित मात्रा में बहिर्जात अनुप्रयोग को अंतर्जात उत्पन्न यौगिक के कार्य की नकल करके कार्य करना चाहिए तथा लक्ष्य उत्तक से न्यूरोट्रांसमीटर को पृथक करने की एक निश्चित क्रियाविधि होनी चाहिए।

मोनोएमीन ट्रांसमिटर

ऐसीटिलकोलीन, हिस्टामीन, सिरोटोनिन, डोपामीन तथा नॉर-एपिनेफ्रीन को मोनोएमीन न्यूरोट्रांसमीटर कहते हैं, क्योंकि इनकी संरचनाओं में इन सभी के पास एक एमीनो- समूह उपस्थित रहता है।

एसीटिलकोलीन

एसीटिलकोलीन पहला पदार्थ था, जिसकी पहचान न्यूरोट्रांसमीटर के रूप में जर्मनी के ओटो लोएवि द्वारा सन् 1921 में की गयी थी। उन्होंने एक सुसज्जित प्रयोग के द्वारा मेंढक की वेगस तंत्रिका से एसीटिलकोलीन के उत्पादन का वर्णन किया था। तंत्रिका के उद्दीपन ने मेढ़क के हृदय की धड़कन को रोक दिया। लोएवि ने उस क्षेत्र को शरीर क्रियात्मक विलयन से भर दिया, उन्होंने विलयन को हटाया और इसका उपयोग दूसरे मेढ़क के हृदय पर किया, दूसरे हृदय ने भी धड़कना बन्द कर दिया। इसके पश्चात् विलयन से एसीटिलकोलीन को निकाला गया और इसे रासायनिक मध्यस्थ के रूप में पहचाना गया। एसीटिलकोलीन का संश्लेषण न्यूरॉन की कोशिका-काय में होता है। कोलीन एसीटिलट्रांसफेरेज नामक एन्जाइम, एसीटिल Co A तथा कोलीन के बीच अभिक्रिया को उत्प्रेरित करता है।

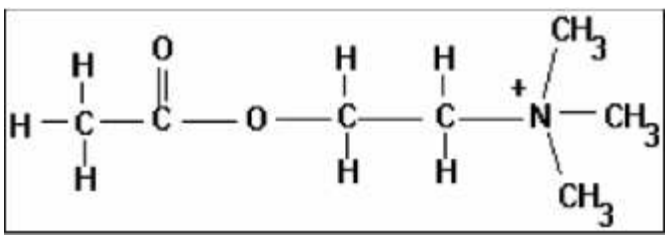

एसीटिलकोलीन

एसीटिलकोलीन मेरु-रज्जु में प्रेरक न्यूरॉन का प्रेषक है तथा यह कशेरुकियों की सभी तंत्रिका कंकाली पेशीय संधि को भी प्रेरक न्यूरॉन भेजता है। जो प्रणालियाँ एसीटिलकोलीन को न्यूरोट्रांसमीटर के रूप में उपयोग करते हैं, कोलीनर्जिक प्रणाली कहलाते हैं। प्री-सिनेप्टिक झिल्ली से उत्पन्न एसीटिलकोलीन सिनेप्टिक दरार में डाला जाता है। यह ग्राही प्रोटीन के साथ बन्ध बनाते हुए, पोस्ट-सिनेप्टिक झिल्ली पर कार्य करता है और झिल्ली की पारगम्यता में परिवर्तन हो जाता है। बहुत से अनुसंधानकर्ताओं ने बताया है कि अल्जाइमर (एक तरह का मानसिक रोग) के मरीजों के मस्तिष्क में कोलीन एसीटिलट्रांसफेरेज एन्जाइम की सान्द्रता काफी कम पायी जाती है। आज तक उनसे संबन्धित एगोनिस्ट के बाद, दो प्रकार के एसीटिलकोलीन ग्राही की पहचान की जा चुकी है- निकोटीनिक ग्राही तथा मस्करीनिक ग्राही। इन दोनों ग्राहियों के लिए (की ओर) जैव रासायनिक प्रतिक्रियायें बिल्कुल भिन्न हैं। ग्वानिलिल साइक्लेज में होने वाली वृद्धि के परिणाम के रूप में साइक्लिक ग्वानोसीन ट्राई फॉस्फेट (cGTP) का बढ़ना पहली जैव-रासायनिक प्रतिक्रिया है। पोस्ट-सिनेप्टिक न्यूरॉन्स से एसीटिलकोलीन का निष्कासन, एसीटिल कोलीन ट्रांसफेरेज एन्जाइम द्वारा कोलीन तथा एसिटेट में हाइड्रोलिसिस से होता है।

हिस्टामीन

हिस्टामीन का संश्लेषण अनिवार्य ऐमीनो अम्ल एल-हिस्टिडीन से विकार्बोक्सिलकरण अभिक्रिया द्वारा होता है। हिस्टामीन ग्राही दो प्रकार के होते हैं, जिन्हें H_1 तथा H_2 ग्राहियों के रूप में नामित किया गया है। इनके द्वारा इन ग्राहियों से बन्ध बनाने से एडेनिलिल साइक्लेज सक्रिय हो जाते हैं तथा एडीनोसिन 3',5'-साइक्लिक मोनो फॉस्फेट (cAMP) की सान्द्रता बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप अंतराकोशिक प्रवाह होने लगता है। हिस्टामीन का H_1 के साथ बन्ध, साइक्लिक ग्वानोसीन ट्राई फॉस्फेट (cGTP) का स्तर बढ़ने का भी कारण है। प्यास, प्रतिमूत्रल तथा अल्पताप जैसी तंत्रिका प्रतिक्रियाओं में हिस्टामीन केन्द्रीय भूमिका निभाता है।

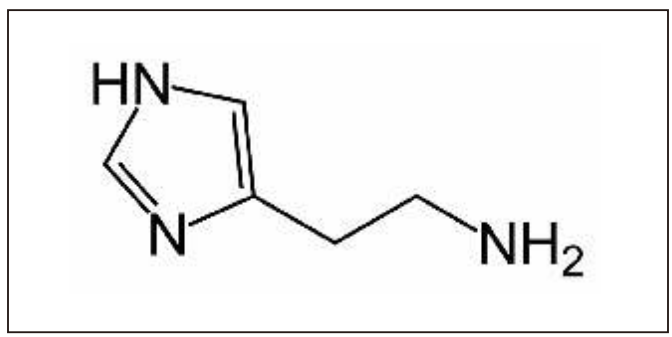

हिस्टामीन

सिरोटोनिन

सिरोटोनिन रासायनिकतौर पर 5-हाइड्रोक्सी ट्रिप्टामीन है। यह एक चिरसम्मत न्यूरोट्रांसमीटर है, जो ट्रिप्टोफेन कहे जाने वाले एमीनो अम्ल से संश्लेषित किया जाता है। अनिद्रा, अवसाद, मनोविकृति सिरोटोनिन के कार्य तथा उससे सम्बन्धित व्यवधानों के परिणाम हैं। मस्तिष्क के विभिन्न भागों में वितरित, यह पूर्णरूप से मेरु-रज्जु के माध्यम से दर्द की अनुभूति कराने में मध्यस्थ का कार्य करता है। सिरोटोनिन हम सभी को रात और दिन के प्रति जागरूक बनाता है तथा सोने-जागने की क्रिया को संचालित करता है।

यह वास्तव में बड़े आश्चर्य का विषय है कि *क्लैवीसेप्स परप्यूरिया* नामक कवक से उत्पन्न विभ्रान्तकारी लिसर्जिक एसिड डाईएथिलामाइड (LSD) की सिरोटोनिन अणु के साथ अत्यधिक संरचनात्मक समानता होती है। अब तक तीन प्रकार के सिरोटोनिन ग्राही की पहचान की जा चुकी है। पहला ग्राही अवरोधी है, जब सिरोटोनिन इन ग्राहियों से बँधता है तो तंत्रिका आवेग के प्रतिसारण अथवा उपापचयी परिवर्तन में अवरोध उत्पन्न करता है। दूसरे प्रकार के ग्राही स्वतः ग्राही कहलाते हैं। ये तंत्रिका ग्राहियों

तक न्यूरॉन की प्रतिक्रिया को पहुँचाने के लिए जिम्मेदार होते हैं। तीसरा एक उत्तेजक प्रकार का ग्राही है जो आवेग के प्रसार का कारण बनता है। सिरोटोनिन सिनेप्टिक दरार से मोनोऐमीन एन्जाइम की उपस्थिति में 5-हाइड्रॉक्सीइन्डोल एसीटिक अम्ल के अपचयन अभिक्रिया द्वारा निकाला जाता है।

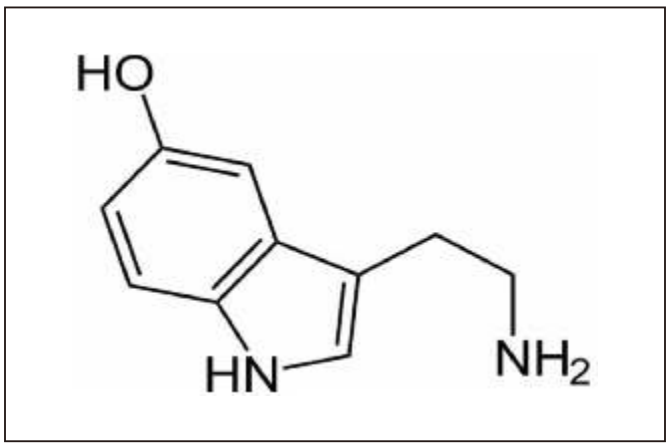

सिरोटोनिन

कैटीकोलामाइन्स

कैटीकोलामाइन्स यौगिकों का एक समूह है जिनके पास एक समान कैटिकोल संरचना होती है। डोपामीन तथा नॉर-एपिनेफ्रीन को कैटीकोलामाइन्स के रूप में उल्लिखित किया जाता है। कैटीकोलामाइन्स के लिए तंत्रिका-रासायनिक संचरण का पहला परिभाषित साक्ष्य ओट्टो लोएवि द्वारा देखा गया था। 1946 में, उल्फ वॉन यूलर ने अनुकम्पी तंत्रिका-तंत्र में नॉर-एपिनेफ्रीन को न्यूरोट्रांसमीटर के रूप में पहचाना और उसे पृथक्कृत किया। डोपामीन तथा नॉर-एपिनेफ्रीन समान तरीके से संश्लेषित किये जाते हैं। टाइरोसिन, टाइरोसिन हाइड्राक्सीलेज द्वारा L 3',4' हाईहाइड्रॉक्सी फेनिलएलेनिन (L-DOPA) में परिवर्तित किया जाता है। यह चरण (स्टेप) कैटीकोलामाइन्स के संश्लेषण में अभिक्रिया की दर बताता है। डोपामीन चलन-प्रक्रिया, भूख तथा तापमान के साथ-साथ संतृप्तता जैसे कुछ व्यवहार को बाहर निकालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। डोपामिनर्जिक-तंत्र को पार्किन्सन-रोग तथा मानसिक-असंतुलन से जोड़ा गया है। परिधीय तंत्रिका-तंत्र के वे क्षेत्र जो इन रोगों से प्रभावित होते हैं, उनमें डोपामीन न्यूरॉन उच्च सान्द्रता में होते हैं। ये प्रायः मस्तिष्क-स्तम्भ, मध्य-मस्तिष्क तथा अधश्चेतक में पाये जाते हैं। नॉर-एपिनेफ्रीन के लिए दो प्रमुख ग्राही हैं जो कि एल्फा तथा बीटा अधिवृक्कीय ग्राही हैं। एल्फा अधिवृक्कीय ग्राही के माध्यम से उत्पन्न प्रतिक्रियाएँ निर्बाध पेशी संकुचन में पायी जाती हैं तथा बीटा अधिवृक्कीय ग्राही हृदयी ऊत्तकों में आयनोट्रॉपिज्म जैसी प्रतिक्रियाओं में भूमिका निभाते हैं। नॉर-एपिनेफ्रीन की ग्राही के साथ बने बन्ध का पोस्ट-सिनेप्टिक कोशिका में 3',5'-साइक्लिक एडीनोसिन मोनो फॉस्फेट (cAMP) के उपापचय पर प्रभाव देखा गया है। मोनोएमीन आक्सीडेज एन्जाइम की उपस्थिति में उपापचय के द्वारा कैटीकोलामाइन्स पृथक्कृत होते हैं।

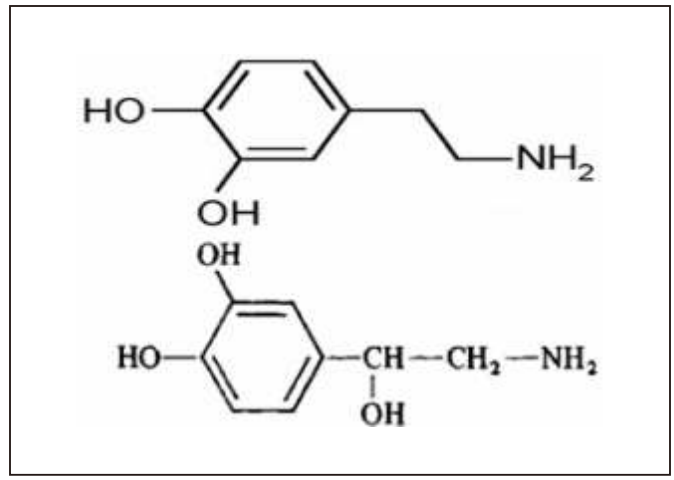

नॉर-एपिनेफ्रीन

ऐमीनो अम्ल संचारक

ग्लाइसिन, L-ग्लूटामिक अम्ल तथा गामा एमीनो ब्यूटिरिक अम्ल (GABA) चिरसम्मत न्यूरोट्रांसमीटरों के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। ग्लाइसिन, रासायनिक तौर पर एमीनो एसीटिक अम्ल, सबसे साधारण आवश्यक एमीनो अम्ल है। ये मेरु-रज्जु के अंतः न्यूरॉनों का एक अवरोधी संचारक है। तुलनात्मक दृष्टि से ग्लाइसिन माध्यमों के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। ग्लाइसिन, सेरीन से टेट्राहाइड्रोफोलेट के साथ मिथाइलेशन द्वारा बनाया जा सकता है। L-ग्लूटामिक अम्ल तथा गामा एमीनो ब्यूटिरिक (GABA) मस्तिष्क के प्रमुख न्यूरोट्रांसमीटर हैं। ये उत्तेजक न्यूरोट्रांसमीटर के रूप में जाने जाते हैं। ग्लूटामिक अम्ल 20-22 प्रोटीनोजनिक एमीनो में से एक है तथा GAA और GAG इसके कोडॉन (प्रकूट) हैं। यह एकपक्षीय कार्बोक्सिलिक अम्ल शृंखला के क्रियात्मक समूह वाला गैर-जरूरी एमीनो अम्ल है। कार्बोक्सिलेट ऋणायनों तथा ग्लूटामिक अम्ल के लवणों को ग्लूटामेट्स के रूप में जाना जाता है। यह केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र में सबसे साधारण न्यूरोट्रांसमीटर तथा मस्तिष्क के सभी न्यूरॉनों का आधा जितना है और यह स्मृति के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दिलचस्प बात यह है कि ग्लूटामेट वास्तव में न्यूरॉनों के लिए विषैला है तथा इसकी अधिकता घातक साबित होगी।

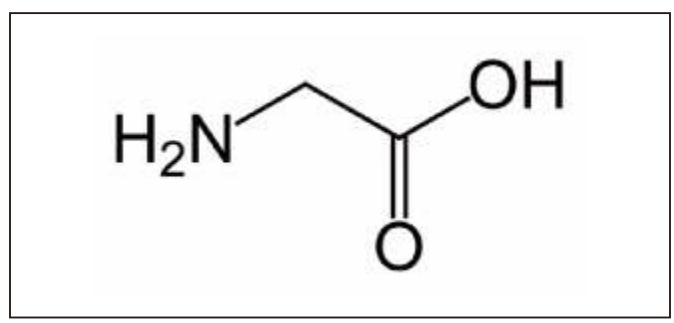

ग्लाइसिन

ग्लूटामेट की खोज एक सदी से भी अधिक पहले 1907 ई में टोक्यो के इम्पीरियल यूनिवर्सिटी के किकुने इकेदा द्वारा की गई थी। तब वह पनीर, माँस तथा मशरूम जैसी वस्तुओं में एकसमान स्वाद की खोज

कर रहे थे जिससे ग्लूटामेट की खोज हुई। उन्होंने समुद्री शैवाल से एक अम्ल प्राप्त किया, ग्लूटामेट। वे आगे मोनोसोडियम ग्लूटामेट (MSG) के आविष्कार पर पहुँचे जो कि मसालेदार पदार्थ अथवा स्वादवर्धक के रूप में खाद्य तथा पेय पदार्थों में उपयोग में लाया जाता है। लेकिन कई दशकों बाद 1994 ई में पीटर यूशर्वुड ने यह पहचाना कि ग्लूटामेट एक न्यूरोट्रांसमीटर है।

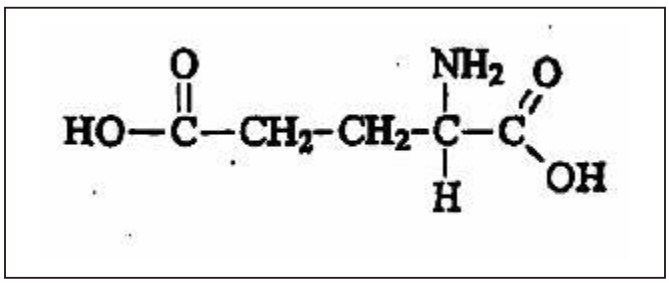

एल-ग्लूटामिक अम्ल

एमीनो अम्ल के संचारकों में गामा ऐमीनो ब्यूटिरिक अम्ल (GABA) सबसे अधिक अध्ययन किया गया तथा आकर्षक न्यूरोट्रांसमीटर है। यद्यपि इसकी मस्तिष्क में उपस्थिति की जानकारी 1950 ई में हो गयी थी, लेकिन गामा एमीनो ब्यूटिरिक अम्ल (GABA) के एक वैध न्यूरोट्रांसमीटर होने की अन्तिम पुष्टि 1970 ई में हुई। यह ग्लूटामिक अम्ल से विकार्बोक्सिलकरण अभिक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। दुश्चिन्तात्मक विक्षिप्तता तथा अवसाद के रोगियों में गामा एमीनो ब्यूटिरिक अम्ल (GABA) का स्तर तथा केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र में इसकी कार्यात्मक प्रभावकारिता कम हो जाती है। माना जाता है कि अधिक व्यापक स्तर पर प्रयोग की जाने वाली दुश्चिन्ता की दवा डाएजेपैम गाबार्जिक प्रणाली की क्रियाशीलता बढ़ाने का कार्य करती है।

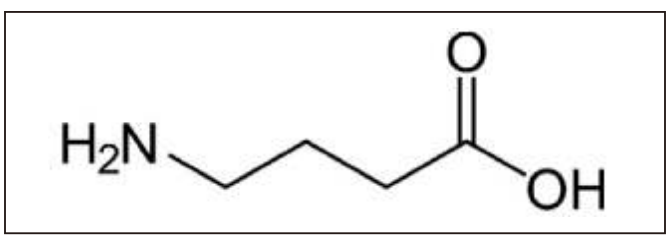

गामा एमीनो ब्यूटिरिक अम्ल

तंत्रिका रसायन विज्ञान में आधुनिक शोध

पिछले कुछ दशकों में तंत्रिका-रसायन के ज्ञान में उत्साहजनक वृद्धि हुई है। कोशिकीय ऊर्जा एटीपी (ATP) की एक प्रकार महत्वपूर्ण न्यूरोट्रांसमीटर के रूप में पहचान तथा नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) के तंत्रिकीय कार्य की खोज ने इस क्षेत्र में व्यापक शोध के नये रास्तों को खोल दिया है। 1980 ई में जेफ्री बर्नस्टोक द्वारा एटीपी (ATP) के न्यूरोट्रांसमीटर होने की खोज को न केवल नजरअंदाज किया गया था, बल्कि इसका मजाक भी उड़ाया गया था। लेकिन हाल के अध्ययनों द्वारा अन्ततः उपयुक्त प्रमाण मिले हैं, जिससे यह सिद्ध हुआ है कि एटीपी (ATP) निःसंदेह एक प्रमुख न्यूरोट्रांसमीटर है। एक दशक पहले कोई मुश्किल से कल्पना कर सकता था कि नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) उच्च जीवों में प्रयुक्त उच्चस्तरीय मुख्य नियंत्रक है। सन् 1980 ई में इस कहानी की शुरुआत जैव-रासायनिक अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों में हुई। नाइट्रिक ऑक्साइड का सबसे चौंकाने वाला तथा अपेक्षाकृत नया पहलू, इसका मस्तिष्क के कार्यों में शामिल होना है। अनुसंधानकर्ता नाइट्रिक ऑक्साइड के आसाधारण कार्यों से आश्चर्यचकित हैं। दूसरे ट्रांसमीटरों से भिन्न, यह विषाक्त है और पुटिकाओं में संग्रहीत नहीं है बल्कि माँग के अनुसार इसका उत्पादन होता है। नाइट्रिक ऑक्साइड अर्द्ध-आवश्यक एमीनो अम्ल, L-आर्जिनिन से नाइट्रिक ऑक्साइड सिंथेज के द्वारा संश्लेषित होता है। परिशुद्ध जैव संश्लेषी पथ प्रायः बहुत अधिक स्पष्ट नहीं है, लेकिन हाइड्रॉक्सी आर्जिनिन एक मध्यवर्ती की भूमिका निभाता है। नाइट्रिक ऑक्साइड एक केन्द्रीय तथा परिधीय तंत्रिका संदेशवाहक है। यह चिरसम्मत अग्रगामी तंत्रिका संकेतन प्रणाली में शामिल है तथा इसके पास प्रतिगामी ट्रांसमीटर के रूप में अद्वितीय गुण भी है। केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र में नाइट्रिक ऑक्साइड अन्तःकोशिकीय Ca^{2+} बढ़ने के प्रतिक्रिया के रूप में छोड़ा जाता है जिसके बाद ग्लूटामेट ग्राहियों का उद्दीपन होता है। प्रतिरक्षा ऊत्तक-रसायन के अध्ययनों में यह देखा गया है कि Ca^{2+} कैल्मॉड्युलिन आश्रित नाइट्रिक ऑक्साइड सिन्थेज अनुमस्तिष्क, हिप्पोकैम्पस् तथा घ्राण पालि (खण्ड) में उच्च सान्द्रता के साथ पूरे मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों में वितरित किया जाता है।

हाल ही में वैज्ञानिकों के एक दल ने एक नये न्यूरोट्रांसमीटर डी-ऐस्पार्टिक अम्ल (D-Asp) की खोज की है, जिसका उपयोग संभवतः पार्किन्सन तथा स्किजोफ्रीनिया जैसी मानसिक बीमारियों से लड़ने में किया जा सकता है। डी-ऐस्पार्टिक अम्ल में न्यूरोट्रांसमीटर गतिविधियों को प्रदर्शित करने वाले जैविक अणुओं में उपस्थित सारे मापदण्ड मिलते हैं। ये तंत्रिकाक्ष शिराओं की सिनेप्टिक पुटिकाओं में उच्च सान्द्रता में उपस्थित होते हैं। न्यूरॉन्स में इस एमीनो अम्ल का संश्लेषण एल-ऐस्पार्टिक अम्ल के डी-ऐस्पार्टिक अम्ल में रूपांतरण डी-ऐस्पार्टेट रेसिमेज के माध्यम से होता है। तंत्रिका अंतों का पोटैशियम आयनों के साथ विध्रुवण, तत्काल Ca^{2+} आश्रित तरीके से डी-एस्पार्टिक अम्ल के उत्पादन को प्रोत्साहित करता है। डी-एस्पार्टिक अम्ल के लिए विशिष्ट ग्राही पोस्ट-सिनेप्टिक झिल्ली में होते हैं तथा डी-एस्पार्टिक अम्ल के साथ तंत्रिका छोरों का उद्दीपन, द्वितीय संदेशवाहक ऐडीनोसिन $3^{|}, 5^{|}$-साइक्लिक मोनो फॉस्फेट (cAMP) को बढ़ाकर संकेत पारगमन प्रारम्भ करता है। डी-एस्पार्टिक

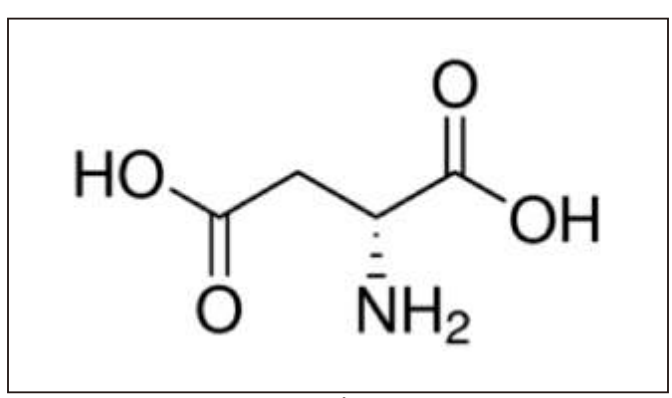

डी-एस्पार्टिक अम्ल

अम्ल कशेरुकी तथा अकशेरुकी में केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मनुष्यों, चूहों तथा मुर्गों में इस अणु की अधिकांश मात्रा भ्रूणीय विकास के समय मस्तिष्क में उत्पन्न होती है।

जन्म के बाद डी-एस्पार्टिक अम्ल सूक्ष्म स्तर पर स्रावित होता है तथा पूरे वयस्क जीवन में एकसमान बना रहता है। साक्ष्यों से पता चलता है कि इसके अणु चूहों में सीखने की क्रिया तथा स्मृति की क्रिया में शामिल होते हैं तथा विभिन्न प्रकार के प्रयोगों में जानवरों की बोधात्मक क्षमताओं को बढ़ाते हैं। प्रो. जार्डी गार्सिया फर्नांडीज के अनुसार, ''बुनियादी अनुसंधान नये कार्यात्मक तंत्र के वर्णन द्वारा प्रायोगिक कार्यों में प्रगति की ओर ले जाता है जो तंत्रिका-तंत्र की जटिल जैव प्रणाली का वर्णन करता है''। यह अध्ययन पागलपन (मनोभ्रंश) के क्षेत्र में विशेष महत्व रखता है जैसा कि यह पार्किन्सन-रोग तथा स्किजोफ्रीनिया जैसी कुछ मस्तिष्क संबन्धित बीमारियों के इलाज में संभावित उपयोग के साथ एक नये न्यूरोट्रांसमीटर की व्याख्या करता है।

इन्डॉर्फिन

जॉन्स हॉप्किन्स यूनिवर्सिटी के सोलोमन स्नाइडर तथा कैन्डर्स पर्ट ने सन् 1973 में इन्डॉर्फिन की खोज की थी। 'इन्डोजेनस मॉर्फीन' को संक्षेप में इन्डॉर्फिन कहा जाता है। इनकी संरचनात्मक रूप से, अच्छा महसूस कराने की क्षमता रखने वाले नशीले पदार्थों (ओपियम, मॉर्फीन, हिरोइन आदि) से अत्यधिक समानता होती है तथा उन्हीं के समान कार्य होता है। यह दर्द घटाने तथा आनन्द प्रदान करने में शामिल होते हैं तथा नशीली दवाइयाँ इन्डॉर्फिन ग्राही के साथ जुड़कर कार्य करते हैं। ये मस्तिष्क के द्वारा कसरत, उत्तेजना, कुछ भोज्य पदार्थों के सेवन, प्यार तथा उन्माद के दौरान उत्पन्न होते हैं।

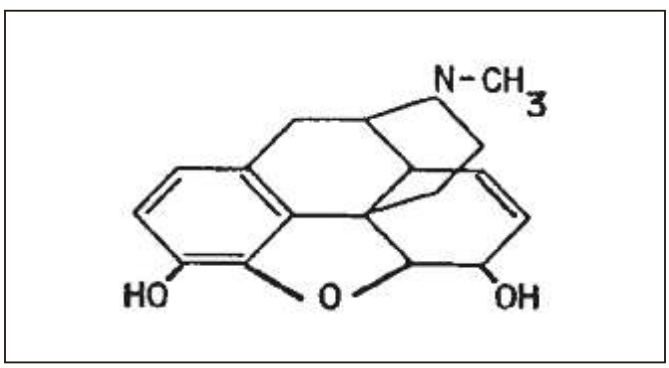

मॉर्फीन

बीटा-इन्डॉर्फिन केन्द्रीय तथा परिधीय दोनों तंत्रिका तंत्र के न्यूरॉन में पाया जाने वाला एक अन्तर्जात नशीला न्यूरोपेप्टाइड है। बीटा-इन्डॉर्फिन 31-एमीनो अम्लों से बना एक पेप्टाइड है। यह हाइपोथैलेमस के न्यूरॉन के साथ ही साथ पीयूष ग्रंथि में भी पाया जाता है। बीटा-इन्डॉर्फिन की खोज सन् 1976 में हुई थी। यह मनुष्य में पाये जाने वाले पाँच इन्डॉर्फिन में से एक है। अन्य इन्डॉर्फिन एल्फा इन्डॉर्फिन, गामा इन्डॉर्फिन, एल्फा नियोइन्डॉर्फिन, बीटा नियोइन्डॉफिन हैं। यह शरीर में दर्द को कम करने के लिए दर्दनाशक के रूप में उपयोग किया जाता है। यही वह कारण है जिससे कि तीव्र शारीरिक चोट के बाद भी मनुष्य अच्छा महसूस करने लगता जबकि चोट के लक्षण उपस्थित रहते हैं। यह शरीर द्वारा चोट के दर्द की अनुभूति को नियंत्रित करने की स्वयं की प्रतिक्रिया की वजह से है। दर्द कम होने का कारण यह है कि यह इसे रोकता है तथा नशीले ग्राहियों को सक्रिय करता है। बीटा-इन्डॉर्फिन एक प्रमुख दर्दनिवारक है तथा मॉर्फीन जैसे प्राकृतिक दर्दनिवारक से लगभग 18-33 गुना अधिक शक्तिशाली होता है।

नये न्यूरोट्रांसमीटरों की अभी खोज समाप्त नहीं हुई है। यह निरन्तर जारी है। बहुत से संभावित उम्मीदवार प्रतिस्पर्धा और अर्हता प्राप्त करने के लिए कतार में इंतजार कर रहे हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने इस बात की काफी संभावना जताई है कि ऐसे बहुत से विचित्र रसायन हैं जो भविष्य में न्यूरोट्रांसमीटर बनने की योग्यता रखते हैं। आने वाले दिनों में इस यौगिकों की सूची में इजाफा ही होने वाला है।

पृथ्वी जैसा था मंगल ग्रह

नासा के क्यूरोसिटी रोवर द्वारा भेजी गई मंगल के पत्थरों की तस्वीरों से लाल ग्रह पर बड़ी मात्रा में मैग्नीज ऑक्साइड होने की पुष्टि हुई है। इससे मंगल पर जीवन की संभावनाओं को नया आधार मिला है। इससे सिद्ध होता है कि मंगल ग्रह पर कभी भारी मात्रा में ऑक्सीजन मौजूद थी। इस आधार पर नासा के वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि मंगल ग्रह भी पृथ्वी के जैसा ही था।

नासा के क्यूरोसिटी रोवर पर लगे 'केम कैम' ने चार साल से भी कम समय में मंगल पर लगभग 1500 पत्थरों और मिट्टी के नमूनों की तस्वीरें खींची। इन तस्वीरों का लॉस आल्मोस स्थित नेशनल लेबोरेटरी में अध्ययन किया गया। वैज्ञानिक नीना लांजा के अनुसार पृथ्वी पर मैग्नीज ऑक्साइड की संरचना की हर ज्ञात विधि में ऑक्सीजन या जीवाणु की मौजूदगी बेहद जरूरी है। लाल ग्रह पर जीवाणु की संभावना न के बराबर है। ऐसे में मैग्नीज ऑक्साइड का मिलना इस बात को बल देता है कि यहाँ ऑक्सीजन मौजूद थी। यह सचमुच में एक बड़ी सफलता है। ज्ञातव्य है कि मैग्नीज ऑक्साइड के लिए पानी और ऑक्सीजन की मौजूदगी जरूरी है।

लांजा के अनुसार शुरुआती संरचना में पृथ्वी पर पानी भारी मात्रा में मौजूद था। लेकिन ऑक्सीजन पर्याप्त नहीं थी। तब प्रकाशसंश्लेषण की मदद से ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ी जिसके बाद पानी और ऑक्सीजन की मौजूदगी में मैग्नीज ऑक्साइड की संरचना संभव हुई। नासा के क्यूरोसिटी रोवर ने लाल ग्रह पर मैग्नीज ऑक्साइड के अलावा एक प्राचीन तालाब भी खोजा है। यह सभी चीजें लाल ग्रह और पृथ्वी के बीच सामानताओं को मजबूती प्रदान करती हैं।

अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री स्काट केली और उनका अन्तरिक्ष रिकार्ड

काली शंकर*

स्काट केली

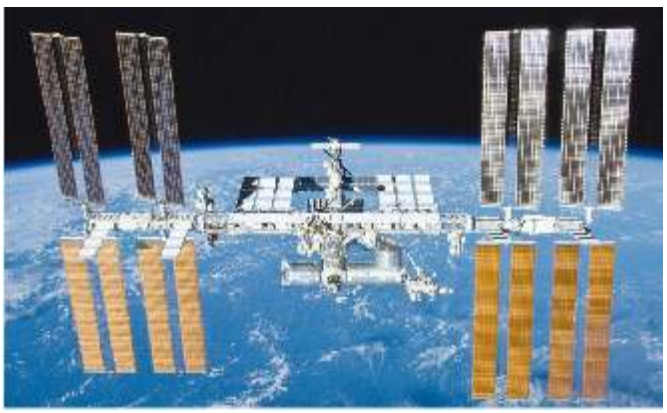

केली का गन्तव्य स्थल अन्तर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन 'अल्फा'

अन्तरिक्ष अन्वेषण मानव का एक कौतूहलपूर्ण महान सपना रहा है और इस कार्य में वह अत्यधिक तत्लीन रहा है। अन्तरिक्ष में मानव दूर-दूर तक जाना चाहता है तथा इसीलिए उसने अनेक क्षुद्र ग्रहों, चन्द्रमा तक जाने की योजनाएँ बनाई हैं। परन्तु, उसका आखिरी लक्ष्य है मंगल की सतह पर मानव को उतारना जो निःसन्देह एक अति साहसी कार्य है। इन साहसी कार्यों में (मानवयुक्त अन्तरिक्ष मिशनों में) मानव की प्रमुख भूमिका होती है तथा उससे भी महत्वपूर्ण कार्य होता है मानव रूपी मशीन को जीवित रखना। इसी बात को ध्यान में रखते हुए अमरीकी अन्तरिक्ष संस्था 'नासा' ने दीर्घकालीन अन्तरिक्ष उड़ानों के मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन का बीड़ा उठाया। इन प्रभावों में शामिल कुछ अहम मुद्दे हैं- कार्यशीलता में क्षीणन, लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण में कमी,

स्काट केली और उनके सहयोगी रूसी अन्तरिक्ष यात्री मिखेल कोर्निएंको का 27 मार्च, 2015 को अन्तरिक्ष में प्रमोचन

संतुलन व्यवधान (बैलेन्स डिसआर्डर), दृष्टि पर प्रभाव, शरीर के द्रवों के वितरण पर प्रभाव, निद्रा प्रभाव, शरीर के भार में कमी, इत्यादि। इन प्रभावों के अध्ययन के लिए नासा ने एक महत्वपूर्ण एक वर्षीय अन्तरिक्ष मिशन की योजना बनाई जिसका गन्तव्य स्थल था अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन 'अल्फा'। इस मिशन के लिए नासा ने अन्तरिक्ष यात्री स्काट केली का तथा रूसी अन्तरिक्ष संस्था रोस्कास्मोस के कास्मोनट मिखेल कोमिएंको का चयन किया। यह मिशन पृथ्वी से 27 मार्च, 2015 को रवाना हुआ तथा 2 मार्च, 2016 को वापस पृथ्वी पर आया। इस मिशन में अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री स्काट केली ने दो अमरीकी अन्तरिक्ष रिकार्ड बनाये तथा उनके ऊपर अनेक दीर्घकालीन अन्तरिक्ष परीक्षण किये गये। उनके ऊपर किये गये परीक्षणों के परिणामों की तुलना उनके जुड़वा भाई अन्तरिक्ष यात्री मार्क केली पर पृथ्वी पर किये गये परीक्षणों से की जा रही है। इस लेख में अंतरिक्ष यात्री स्काट केली, उनकी अन्तरिक्ष यात्रा एवं अंतरिक्ष प्रवास, उनके ऊपर किये गये परीक्षणों, उनके द्वारा बनाये गये रिकार्डों तथा उनकी पृथ्वी पर वापसी का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

स्काट केली - एक परिचय

21 फरवरी, 1964 को जन्मे स्काट केली एक अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री, इंजीनियर और अमरीकी नेवी के सेवा निवृत्त कैप्टन हैं। अपनी वर्तमान अन्तरिक्ष उड़ान के पहले स्काट केली तीन बार अन्तरिक्ष यात्रा कर चुके हैं। वर्तमान अन्तरिक्ष मिशन के लिए स्काट केली का चयन रूसी कास्मोनट मिखेल कोर्निएंको के साथ नवम्बर 2012 में किया गया था। अन्तरिक्ष यात्री दल 26 के दौरान स्काट अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन के

*वरिष्ठ वैज्ञानिक (अ.प्रा.), इसरो; आवासः के-1058, आशियाना कालोनी, कानपुर रोड, लखनऊ-226 012.

स्काट केली स्पेस वाक करते हुए

कमान्डर रह चुके हैं। स्काट केली का एक जुड़वा भाई मार्क केली है जो नासा के भूतपूर्व अन्तरिक्ष यात्री हैं। विश्व में केली बंधु ही एक ऐसे जुड़वा भाई हैं जो अन्तरिक्ष की यात्रा कर चुके हैं।

स्काट केली की प्रथम उड़ान दिसम्बर 1999 में स्पेस शटल डिस्कवरी की उड़ान एसटीएस-103 से हुई जो हब्बल अन्तरिक्ष दूरबीन का तीसरा सर्विसिंग मिशन था। उनकी दूसरी अन्तरिक्ष उड़ान थी स्पेस शटल की उड़ान एसटीएस-118 जिसके वे मिशन कमान्डर थे। तीसरी उड़ान में वे अन्तरिक्ष यात्री दल-26 के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष यात्री दल के कमान्डर बने। अपनी आखिरी (वर्तमान) उड़ान-एक वर्षीय अन्तरिक्ष मिशन अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन के कमान्डर थे। एक वर्षीय मिशन की समाप्ति के बाद स्काट ने अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन की कमान्ड नासा अन्तरिक्ष यात्री टिमोथी कोप्रा को सौंपी।

अपने जुड़वा भाई मार्क केली (बायें) के साथ स्काट केली

केली ने 1982 में वेस्ट आरेंज के न्यू जर्सी के माउन्टेन हाई स्कूल से ग्रेजुएशन प्राप्त किया, 1987 में न्यूयार्क मैरीटाइम कालेज से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में बैचलर ऑफ साइंस की डिग्री प्राप्त की तथा 1996 में टेनेसी विश्वविद्यालय से वैमानिकी तंत्रों में मास्टर ऑफ साइंस से संबद्ध रहे तथा वे प्रायोगिक टेस्ट पायलट संस्था के असोसियेट फेलो तथा अन्तरिक्ष अन्वेषक असोसियेशन संस्थान सदस्य हैं।

मिशन में केली के शरीर पर प्रभाव

केली का नेवल कैरियर

मई 1987 में न्यूयार्क विश्वविद्यालय के मैरीटाइम कालेज से ग्रेजुएशन प्राप्त करने के बाद केली ने नेवी में प्रवेश पाया। जुलाई 1989 में उन्हें नेवल एवियेटर का पद मिला तथा उन्हें टेक्सास के बीविले के नेवल सेना बेस में नियुक्त किया गया। उन्होंने नेवी के फाइटर स्क्वाड्रन में काम किया तथा बाद में उन्हें नेवल टेस्ट पायलट स्कूल के लिए चुना गया (1993 जनवरी में) जहाँ पर उन्होंने जून 1994 में प्रशिक्षण पूरा किया। ग्रेजुएशन प्राप्त करने के बाद उन्होंने कई वायुयानों में टेस्ट पायलट के रूप में काम किया। स्काट केली के पास 40 विभिन्न प्रकार के वायुयानों के उड़ाने का 8000 घंटे से अधिक का अनुभव है। अमरीकी नेवी में कैप्टन का पद पाने के बाद उन्होंने 1 जून, 2012 को नेवी से सेवानिवृत्ति ले ली।

केली का नासा कैरियर

अप्रैल 1996 में स्काट केली का नासा के द्वारा चयन किया गया तथा अगस्त 1996 में उन्होंने जान्सन अन्तरिक्ष केन्द्र में रिपोर्ट किया। प्रशिक्षण पूरा करने के बाद उनकी ड्यूटी अन्तरिक्ष यात्री कार्यालय में लगाई गई। केली अन्तरिक्ष में 4 बार जा चुके हैं तथा अन्तरिक्ष प्रवास के दौरान वे विभिन्न पदों पर कार्य कर चुके हैं। उनकी विभिन्न अन्तरिक्ष यात्राओं का विवरण सारणी-1 में दिया गया है।

पृथ्वी पर वापसी के बाद स्काट केली

ISSN 2231 - 2455

सारणी-1: स्काट केली की विभिन्न अन्तरिक्ष यात्राओं का विवरण									
क्र.सं.	यात्रा में प्रयुक्त अंतरिक्ष यान	प्रमोचन तिथि एवं समय (सार्वत्रिक)	मिशन में उनका पद	वापसी का अंतरिक्ष यान	वापसी की तिथि एवं समय (सार्वत्रिक)	अंतरिक्ष प्रवास		कुल यात्राओं का अंतरिक्ष प्रवास	
						दि0	घं0	दि0	घं0
1.	स्पेस शटल डिस्कवरी एस टी एस - 103	20.12.1999 00:50 घं0	पायलट	एस टी एस-103	28.12.1999 00:01 घं0	7	23	7	23
2.	स्पेस शटल एन्डयौर एसटीएस-118	08.08.2007 22:36 घं0	कमान्डर	एस टी एस-118	21.08.2007 16:33 घं0	12	17	20	17
3.	सोयुज-टीएमए 01 एम	07.10.2010 23:10 घं0	फ्लाइट इंजीनियर, कमान्डर	सोयुज-टीएमए 01 एम	16.03.2011 07:54 घं0	159	8	180	01
4.	सोयुज-टीएमए 16 एम	27.03.2015 19:42 घं0	फ्लाइट इंजीनियर, कमान्डर	सोयुज-टीएमए 18 एम	02.03.2016	340	8	520	10

स्काट केली के द्वारा बनाये गये अन्तरिक्ष रिकार्ड

अपने एक वर्षीय अन्तरिक्ष मिशन तथा अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन में लगातार मानव उपस्थिति की 15वीं वर्षगांठ के अवसर पर केली ने कई अमरीकी अन्तरिक्ष रिकार्ड बनाये। अपने अन्तरिक्ष मिशन के दौरान स्काट केली ने 27 मार्च, 2015 से 2 मार्च, 2016 के दौरान अन्तरिक्ष में लगातार रहने का 340 दिन 8 घं0 का अमरीकी रिकार्ड बनाया। पहले इस अन्तरिक्ष रिकार्ड का प्रतिनिधित्व अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री लोपेज अलेग्रिया के पास था जिन्होंने अन्तरिक्ष यात्री दल 14 के कमान्डर के रूप में अन्तरिक्ष में 215 दिन लगातार गुजारे। विश्वस्तर पर इस रिकार्ड का प्रतिनिधित्व रूसी कास्मोनट वैलेरी पलिकोव करते हैं जिन्होंने 8 जनवरी, 1994 से 22 मार्च, 1995 के बीच अन्तरिक्ष में (मीर अन्तरिक्ष स्टेशन के अन्दर) 437 दिन 17 घंटे का समय गुजारा।

अपनी सभी अन्तरिक्ष उड़ानों के द्वारा अन्तरिक्ष में कुल (कम्युलेटिव) 520 दिन 10 घं0 का समय गुजारने वाले स्काट केली प्रथम अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री बने। इस अन्तरिक्ष रिकार्ड से उन्होंने अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री माइक फिंके का रिकार्ड तोड़ा जिन्होंने अन्तरिक्ष में कुल 381 दिन 15 घं0 का समय गुजारा। विश्वस्तर पर इस अंतरिक्ष रिकार्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं रूसी कास्मोनट गैनेडी पडाल्का जिन्होंने अपनी 5 उड़ानों के द्वारा अन्तरिक्ष में कुल 878 दिन 11 घं0 का समय गुजारा। पडाल्का ने अपने रिकार्ड को बनाने के लिए रूसी कास्मोनट सरगेई क्रिकालेव के रिकार्ड को तोड़ा जिन्होंने अपनी 6 अन्तरिक्ष उड़ानों के द्वारा अन्तरिक्ष में 803 दिन 9 घं0 का समय गुजारा।

अमरीकी अंतरिक्ष रिकार्ड तोड़ने के बाद अमरीकी सीनेट के द्वारा केली का सम्मान

अमरीकी अन्तरिक्ष रिकार्ड तोड़ने के सम्मान में अमरीकी सीनेट ने एक प्रस्ताव पारित कर स्काट केली को सम्मानित करने का आयोजन किया है। अमरीकी सीनेटर कोरी ब्रूकर जो कामर्स, विज्ञान और परिवहन समितियों में बैठते हैं इस प्रस्ताव को तब पारित कराया जब स्काट केली ने पृथ्वी पर वापसी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष मिशन में 340 दिन का समय गुजारा। न्यू जर्सी के सीनेटरों ने स्काट केली के अन्तरिक्ष अन्वेषण में दिये गये महत्वपूर्ण योगदानों के लिए तथा मानवता की सेवा के लिए उनकी सराहना की। बूकर ने कहा, ''केली की अन्तरिक्ष से कुशल वापसी इस महान न्यू जर्सी वासी तथा सम्पूर्ण देश के लिए विज्ञान एवं अन्तरिक्ष अन्वेषण के क्षेत्र में एक महान कदम है।'' अन्य सीनेटर बॉब मेन्डीज ने कहा, ''यह बहुत महत्वपूर्ण है कि एक राष्ट्र के रूप में हम खड़े होकर केली की महानता को स्वीकार करते हैं जिससे हमारे युवा नागरिक और आने वाली पीढ़ी प्रेरणा लेगी जिन्हें हम अपने को महान कार्यों को करने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। स्काट केली के ऊपर न्यू जर्सी वासियों को महान गर्व है।

अमरीकी राष्ट्रपति ओबामा के साथ स्काट केली

अन्तरिक्ष से वापसी के बाद स्काट केली के उत्तर पूर्वी हिमालय को विजिट करने की इच्छा

अपने एक वर्षीय अन्तरिक्ष मिशन के दौरान केली ने पृथ्वी के अनेक विहंगम दृश्य देखे तथा चित्रांकित किये। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन से पृथ्वी के 5440 चक्कर लगाये तथा इससे उन्हें पृथ्वी के अनेक विहंगम चित्र लेने में काफी आसानी मिली। अब केली पृथ्वी पर वापस आ

गये हैं तथा वे पृथ्वी के एक स्थल को विजिट करना चाहते हैं। 4 मार्च, 2016 को अपनी एक प्रेस कान्फ्रेन्स के दौरान उन्होंने कहा, ''अगर पृथ्वी में कोई ऐसा स्थल है जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा है तो वह स्थल हिमालय का उत्तर पूर्वी हिस्सा है जहाँ पर विभिन्न आकार और रंगों की झीलें मौजूद हैं।'' केली ने कहा कि उन्हें ठीक से नहीं मालूम है कि उन झीलों के क्या नाम हैं तथा वे किस देश में हैं। ट्विटर प्रयोग करने वालों ने उन फोटों की पहचान की है जिनकी फोटो केली ने ली है। केली ने अन्तरिक्ष से कई फोटो खींची हैं।

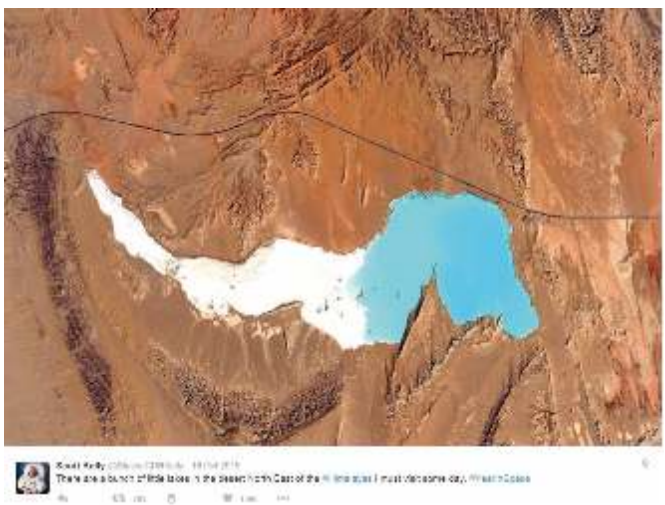

केली द्वारा उत्तर पूर्वी हिमालय की गुफाओं का लिया गया चित्र

केली पृथ्वी पर लैंड करते हुए

स्काट केली के 1 वर्षीय अन्तरिक्ष मिशन से संबन्धित कुछ मुख्य बातें

1. यह वास्तव में तीन वर्षीय मिशन के समान है। यद्यपि स्काट केली और कोर्निएंको अन्तरिक्ष में केवल एक वर्ष रहे लेकिन उनके मिशन से संबन्धित विज्ञान की चर्चा 3 वर्ष से भी अधिक समय तक चलती रहेगी। उनके अन्तरिक्ष यात्रा में जाने के एक वर्ष पहले से ही उनके ऊपर अनेक प्रकार के परीक्षण प्रारंभ किये गये।
2. इस मिशन के द्वारा हमने मंगल ग्रह (मानवयुक्त मिशन) जाने के विभिन्न पहलुओं के विषय में काफी जानकारियाँ प्राप्त की है। मंगल ग्रह में मनुष्य को भेजने में सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या वहाँ पर मानव शरीर रूपी मशीन को वहाँ के सूक्ष्म गुरुत्व और विकिरणमय वातावरण में चलायमान (जीवित) रखना है। इसीलिए अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन की यात्रा से प्राप्त अनुभव हमें मंगल ग्रह की आगामी यात्राओं में सहायक होंगे।
3. केली और उनके सहयोगी कोर्नियेको की वापसी के बाद उनके मिशन से प्राप्त विभिन्न वैज्ञानिक आँकड़ों का विश्लेषण प्रारंभ हो चुका है। इन अंतरिक्ष यात्रियों के खून और मूत्र के नमूने अभी भी अंतरिक्ष स्टेशन में रखे हैं जिन्हें स्पेस एक्स ड्रैगन के द्वारा वापस लाया जायेगा। आँकड़ों के विश्लेषण में 6 महीने से 6 वर्ष का समय लग सकता है।

केली के एक वर्षीय मिशन का लोगो (चिन्ह)

4. यह पहला मौका नहीं है जब कि किसी ने अन्तरिक्ष में एक वर्ष गुजारा है, लेकिन यह पहला मौका है जब कि एक वर्षीय अंतरिक्ष मिशन के ऊपर नवीनतम अनुसंधान तकनीकों के द्वारा अनेक जेनेटिक अध्ययन किये गये हैं।
5. इस एक वर्षीय अन्तरिक्ष मिशन के अध्ययन के लिए अनेक देशों के साथ समन्वय किया गया है।
6. केली के एक वर्षीय मिशन में केली की वैज्ञानिक भागीदारी केवल एक वर्षीय मिशन की जाँचों तक ही सीमित नहीं थी बल्कि उन्होंने 400 अन्य वैज्ञानिक अध्ययनों पर भी कार्य किया जो उस वर्ष (उनकी मिशन अवधि में) किये गये।
7. पृथ्वी पर वापसी के बाद शरीर की वास्तविक स्थिति में कन्डीशनिंग। अंतरिक्ष की भीषण परिस्थिति में माँशपेशियाँ और हड्डियाँ काफी प्रभावित होती हैं। पृथ्वी पर लैन्ड करने के बाद उनके शरीर के ऊपर अनेक फील्ड टेस्ट तथा कार्यकारी फील्ड टेस्ट किये गये। इन जाँचों का उद्देश्य था कि अंतरिक्ष के सूक्ष्म गुरुत्व में मानव शरीर कैसे रेसपान्ड करता है।
8. अनुसंधानकर्ताओं की उत्सुकता का प्रमुख आकर्षण ट्विन अध्ययन, जैसा सबको पता है कि स्काट केली का जुड़वा भाई

मार्क केली उनके एक वर्षीय अन्तरिक्ष मिशन के दौरान पृथ्वी पर था। मार्क केली भी एक विख्यात अंतरिक्ष यात्री रह चुके हैं। इसीलिए इस अध्ययन में मार्क केली को ग्राउन्ड नियंत्रण सन्दर्भ के तौर पर लिया गया। ट्विन अध्ययन में 10 विभिन्न जाँचें शामिल हैं।

9. इस मिशन के द्वारा भावी दीर्घकालीन अंतरिक्ष मिशनों की प्लानिंग में मदद मिलेगी।

पृथ्वी पर वापस आ जाने के बाद (एक वर्षीय अंतरिक्ष मिशन से) स्काट केली का एक साक्षात्कार

2 मार्च, 2016 को स्काट केली पृथ्वी पर वापस आ गये तथा अपने पैरों के नीचे ठोस मिट्टी का अनुभव करते हुए बड़ी प्रसन्नता जाहिर की। सीएनएन के प्रमुख मेडिकल संवाददाता डॉ0 संजय गुप्ता को उन्होंने बताया, ''अन्तरिक्ष यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण भाग गुरुत्व का कम हो जाना है जिसे मैं अभी तक भूल नहीं पाया हूँ।'' यहाँ पर डॉ0 गुप्ता के द्वारा स्काट केली के लिए गये एक साक्षात्कार के कुछ अंश प्रस्तुत हैं। केली का यह साक्षात्कार लगभग एक घंटे तक चला।

प्रश्न : आप अब कैसा महसूस कर रहे हैं?

केली: वापस आने के बाद मैं अपने को काफी अलग महसूस कर रहा हूँ। सोयूज अन्तरिक्ष से निकलने के बाद मुझे काफी अच्छा लग रहा था तथा इसका कारण शायद यह है कि गुरुत्व के प्रति एक ऋणात्मक प्रतिक्रिया थी तथा एक प्रकार से आश्चर्यजनक बात थी कि अन्तरिक्ष में जाने के कुछ सप्ताह तक मेरी टाँगों में सूजन आ गई थी। जब मैं रात में खड़ा हुआ तो मैंने पाया कि मेरा सम्पूर्ण हृदय प्रणाली तंत्र पैरों के बाहर रक्त प्रवाह के लिए तैयार नहीं था। लेकिन वापस आने के बाद मैं धीरे-धीरे बेहतर होता जा रहा हूँ।

प्रश्न: मंगल ग्रह के विषय में आपके क्या विचार हैं। अगर आप को आज पता चल जाय कि आप वह व्यक्ति हैं जो मंगल ग्रह जायेंगे तो आप की क्या प्रतिक्रिया होगी?

केली: कुछ सप्ताह पहले तक मैं कहा करता था कि मंगल जाने में मेरी दिलचस्पी नहीं है लेकिन अब शायद मेरी दिलचस्पी बहुत अधिक बढ़ गई है। अगर हम मंगल में जाएँ, वहाँ लैन्ड करें तथा प्रवास करें तो वहाँ हम मंगल ग्रह के सूक्ष्म गुरुत्व का अनुभव करेंगे तथा इसे समझने में बहुत अधिक समय नहीं लगेगा।

प्रश्न: आपको अन्तरिक्ष में सबसे अधिक किस चीज से डर लगता था तथा उससे मुक्ति पाने के लिए आपने क्या किया?

केली: अन्तरिक्ष में मैं जिस चीज से सबसे अधिक डरता था वह मेरी व्यक्तिगत सुरक्षा नहीं थी बल्कि अपने बच्चे और अपने प्रियजनों की सुरक्षा थी। अगर उनके साथ कुछ बुरा घटित होता है तो आप अन्तरिक्ष में अपना काम ठीक से नहीं कर पाते हैं।

प्रश्न: अन्तरिक्ष स्टेशन छोड़कर वापस पृथ्वी पर आना आपको कैसा लगता है?

केली: यह आपका घर है तथा एक उपलब्धि के रूप में मैं अन्तर्राष्ट्रीय स्टेशन का आदर करता हूँ। जब मैं उसे छोड़ रहा था कि शायद मैं इसे दुबारा न देख सकूँ तो इस तरह की भावना बन जाती है। सोयुज अन्तरिक्ष यान से वापस आते समय मैं सोच रहा था कि मैं वहाँ इतने लम्बे समय तक कैसे रहा।

प्रश्न: अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन में परीक्षण करने के क्या फायदे हैं?

केली: सबसे बड़ा फायदा है इसका सूक्ष्म गुरुत्व। पृथ्वी में सूक्ष्म गुरुत्व परिस्थिति पैदा करने के लिए आपको काफी जुगाड़ करना पड़ता है?

प्रश्न: क्या अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन में जुकाम और फ्लू होता है अथवा क्या आप अन्तरिक्ष स्टेशन के द्वारा जनित आइसोलेशन के कारण इन चीजों से बचे रहते हैं?

केली: अनेक लोग इस तरह की परेशानियों के चंगुल में आ जाते हैं लेकिन इसका कारण वायरस या बैक्टीरिया नहीं है। इसका आंशिक कारण है शरीर के अन्दर होने वाले द्रव स्थानान्तरण की प्रक्रिया। वहाँ आपकी त्वचा सेल तैर रहे होते हैं- अन्य लोगों की त्वचा के सेलों के इर्द-गिर्द। यह एक अच्छा वेंन्टीलेशन तंत्र बन जाता है। लेकिन पृथ्वी में ऐसी स्थिति कभी नहीं आती है कि आप किसी अन्य के त्वचा सेलों से साँस ले रहे हो।

नासा में 20 वर्ष की सेवा के बाद सेवानिवृत्ति

एक वर्षीय मिशन से वापस आने के बाद तथा अमरीकी अन्तरिक्ष संस्था नासा में 20 वर्ष की सेवा के बाद स्काट केली ने नासा से सेवा निवृत्ति ले ली। महान अन्तरिक्ष यात्री ने अपने महान कैरियर को अलविदा कहा। लेकिन वे अपने एक वर्षीय अन्तरिक्ष मिशन से संबन्धित सभी आन गोइंग अनुसंधानों में हिस्सा लेते रहेंगे। इसके लिए वे अपने पीरियाडिक मेडिकल सैम्पुल समयानुसार देते रहेंगे। केली ने कहा, ''यह एक वर्षीय मिशन सभी लोगों के लिए (जो इसमें शामिल थे) एक चुनौतीपूर्ण मिशन था तथा इसने मुझे विशिष्ट अवसर प्रदान किया कि मेरा अगला कदम क्या होना चाहिए।'' स्काट केली के अनुसार इन्द्रधनुष-आच्छादित हिमालय की झीलों का दृश्य बहुत आत्मीयता पूर्ण लगा। केली ने कहा कि वे नए-नए अवसरों से, जो नासा दे रहा है, अत्यधिक अभिभूत हैं जिनके द्वारा मानव सौर तंत्र के बाहर जा सकेगा।

केली ने अन्तरिक्ष यात्री कार्प्स को 1996 में ज्वाईन किया तथा अन्तरिक्ष में चार बार गये। नासा जान्सन अन्तरिक्ष केन्द्र के फ्लाइट प्रचालन के निदेशक ब्रियन केली के अनुसार, ''स्काट के नासा के लिए योगदान अनेक है।'' ब्रियन के ही अनुसार, ''अपने एक वर्षीय मिशन के दौरान उन्होंने ऐसे ऐसे परीक्षणों में हिस्सा लिया जिनके बहुत दूरगामी उपयोगी प्रभाव होंगे तथा उनके द्वारा हम मानव को मंगल ग्रह तक भेज सकेंगे जिससे विश्व समुदाय लाभान्वित होगा।'' स्काट केली ने कहा, ''जब हम कुछ करते हैं तो हम महान उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं तथा इसी धारणा ने मुझे बहुत उत्साहित किया है।'' अनुसंधानकर्ता वर्तमान मिशन से दोनों जुड़वा भाइयों के जेनेटिक व्यवहार परिवर्तन की तुलना कर रहे हैं जो अन्तरिक्ष-समय प्रक्रिया ने स्काट के ऊपर छोड़ा है।

वाराणसी में बढ़ता शहरीकरण बन रहा है गंगा प्रदूषण का कारण

[1]शिखा शर्मा एवं [2]प्रो0 मधुलिका अग्रवाल*

गंगा भारत की जलाधार ही नहीं अपितु धार्मिक अवधारणाओं में इस नदी को देवी का स्वरूप दिया गया है। कहा जाता है की गंगा का उद्गम धरातल में महान संत भागीरथ की तपस्या से उनके पूर्वजों को पापमुक्त करने के लिए हुआ था। भारतीय संस्कृति में गंगा का जन्म कैसे भी हुआ हो पर मनुष्य की पहली बस्ती उसके तट पर आबाद हुई थी। उत्तर भारत के बड़े भाग को सिंचित करने वाली गंगा यदि न होती तो यह प्रदेश एक मरुस्थल हो जाता। परन्तु आज माँ गंगा की दयनीय स्थिति को देखकर यह कहना कतई अनुचित नहीं होगा कि ''निश्चय ही माँ गंगा का अपना, धरातल पर अवतरण एक अपराध बोध की तरह प्रतीत होता होगा''। आज गंगा इस कदर प्रदूषित हो गयी है की उसके प्रदूषण की चर्चा वैज्ञानिकों से लेकर जनसाधारण में विश्वस्तर पर हो रही है।

गंगा के पर्यावरण स्वास्थ्य में गिरावट की शुरुआत सन् 1970 से हो गयी थी। सन् 1971 में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने गंगा पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए गंगा में बढ़ते प्रदूषण के लिए व्यापक सर्वेक्षण का निर्देश दिया। प्रधानमंत्री के निर्देश को प्रतिग्रहीत करते हुए केंद्रीय प्रदूषण बोर्ड ने 1984 में, नदी का सर्वेक्षण करने के उपरान्त दो व्यापक रिपोर्ट का प्रकाशन किया, जो की गंगा एक्शन प्लान की मूल आधार बनी। इसके उपरान्त 14 जून, 1986 को वाराणसी में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी द्वारा गंगा एक्शन प्लान का प्रमोचन हुआ। गंगा एक्शन प्लान 1 की अवधि समाप्त होने से पूर्व ही गंगा एक्शन प्लान 1 को गंगा एक्शन प्लान 2 में सन् 1995 में विस्तारित किया गया। अनेक योजनाओं, निदेशालय व प्राधिकरण की स्थापना हुई (चित्र 1)। आज गंगा के लिए वर्तमान केन्द्रीय सरकार ने तो एक पृथक मंत्रालय की संरचना ही कर दी है- जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय।

गंगा एक्शन प्लान का मुख्य उद्देश्य नदी के पानी की गुणवत्ता में सुधार लाना था, जिसके लिए 'स्नान क्लास' नामक मानक का गठन किया गया। जिसके अंतर्गत नदी के पानी में जैविक ऑक्सीजन डिमांड (Biological Oxygen Demand) 3 पीपीएम, डिजॉल्वड ऑक्सीजन (Dissolved Oxygen) 5 पी.पी.एम., टोटल कोलिफॉर्म (Total Coliform) एम.पी.एन (MPN) 10000/100 एमएल, फीकल कोलिफॉर्म (Faecal Coliform) एम.पी.एन. 2500/100 एमएल का मानक बनाया बनाया गया। नदी का पानी इन मानकों का अनुसरण कर रहा है की नहीं इसके लिए गंगा के विभिन्न हिस्सों में प्रदूषण जाँच भी की गयी, जिसका परिणाम बहुत निराशाजनक रहा। गंगा एक्शन प्लान की विफलताओं का आंकलन इस तथ्य से करना कदापि अनुचित नहीं होगा कि इस प्लान से पूर्व गंगा के तट पर बसे इलाहाबाद शहर में 13 नाले थे आज जिनकी संख्या 50 हो गयी है।

गंगा एक्शन प्लान की आलोचनात्मक समीक्षा के उपरान्त विफलताओं के कई कारण थे जैसे की नगर-पालिकाओं के योगदान का अभाव, समापन में विलंब, अप्रभावी परिपालन तथा अन्य। गंगा एक्शन प्लान के उपरांत कुछ तथ्य जैसे की नियमित प्रदूषण जाँच, जैव-विविधता का संरक्षण, किफायती परिवर्तनात्मक प्रौद्योगिकियों का विकास, बैक्टीरियल प्रदूषण के नियंत्रण पर सीमित संख्या में विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थानों में अनुसंधान किए गए। परन्तु इन अनुसंधानों में भूमि और भूमि उपयोग परिवर्तन (land use and land use change) की वजह से नदी पर क्या प्रभाव पड़ता है, इन तथ्यों पर कोई विचार विमर्श नहीं हुआ। इसके विपरीत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह एक शोध का गहन विषय है। सिल्वा और विलियम्स (2001) के शोध द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि बढ़ते शहरीकरण से नदी में रासायनिक अपशिष्टों की मात्रा में वृद्धि होती है। एक अन्य शोध में शंघाई शहर की भूमि के उपयोग और हुआंगपु नदी के पानी की गुणवत्ता के विश्लेषण में, अत्यधिक शहरीकृत स्थानों में नदी के पानी की गुणवत्ता में कमी पायी गयी, वहीं जिन क्षेत्रों में कृषि की जाती है वहाँ पानी की गुणवत्ता में सुधार देखा गया (रेन और अन्य, 2003)। इसी तरह का शोध नेपाल के थिम्फू शहर की नदी वांगचु पर किया गया और शोध के परिणाम से यह पाया गया कि नदी के पानी की गुणवत्ता

चित्र 1- गंगा के बढ़ते प्रदूषण को रोकने के लिए विभिन्न योजनाएँ, निदेशालयों व प्राधिकरण की स्थापना

*[1]वरिष्ठ शोध छात्रा एवं [2]आचार्या, वायु प्रदूषण और वैश्विक जलवायु परिवर्तन प्रयोगशाला, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221 005.

ISSN 2231 - 2455

चित्र 2- भूमि और भूमि उपयोग परिवर्तन से बढ़ता गंगा नदी में प्रदूषण

शहरी क्षेत्र की तुलना में अपस्ट्रीम में बेहतर होती है (गिरि और सिंह, 2013)। भारत में इस तरह का शोध केरल की चलाकुडी नदी बेसिन में किया गया तथा इस शोध से यह सिद्ध किया गया की नदी में डिजॉल्वड ऑक्सीजन की मात्रा कृषि क्षेत्र में ज्यादा तथा शहरी क्षेत्रों में कम (चट्टोपाध्याय, 2005) होती है।

विभिन्न शोधों के द्वारा यह भी परिणामित किया गया है कि नदी के पानी की गुणवत्ता उन स्थानों पर बेहतर होती है जहाँ पेड़-पौधे व जंगल है; बल्कि खेती-बाड़ी वाले स्थानों में प्रायः पानी की गुणवत्ता में कमी दिखायी देती है। शहर के आस-पास नदी का पानी पीने के लिए प्रायः अनुपयुक्त होता है।

गंगा की स्थिति यह है कि गंगा के बाढ़ क्षेत्र में शहरीकरण इस कदर संवृद्धित हो रहा है की बाढ़ क्षेत्र का आंकलन करना असंभव प्रतीत हो रहा है। यूँ तो नदी के किनारे बसने की परंपरा 5000 वर्ष पुरानी है (सिंधु घाटी की सभ्यता), किन्तु, आज गंगा के परिपेक्ष्य में स्थिति गंभीर होती प्रतीत हो रही है। गंगा नदी अपनी 2525 किमी. लंबी यात्रा में 17 शहरों में से होकर गुजरती है, जहाँ की आबादी का घनत्व बहुत अधिक है और यहाँ बेशुमार कारखाने हैं, नतीजतन नदी मात्र एक पानी स्रोत ही नहीं अपितु प्रदूषक के निकास स्रोत में परिवर्तित हो रही है।

वाराणसी जहाँ से प्रथम गंगा एक्शन प्लान का आरंभ हुआ, वर्तमान में 2014 के लोकसभा चुनावों के कारण प्रमुखता में आया यह शहर, नदी तट पर शहरीकरण का एक अतुलनीय उदाहरण है (चित्र 2)। शिव की पवित्र नगरी जो 84 घाटों से सुशोभित है, गंगा की अपवित्रता में एक महत्वपूर्ण योगदान कर रही है। यहाँ घाट एक ओर तो पर्यटकों को आकर्षित कर पर्यटन को बढ़ावा दे रहे हैं, फलतः दूसरी ओर यह नदी में बढ़ते हुए प्रदूषण का मुख्य कारण भी है। सरकार जहाँ एक ओर गंगा को प्रदूषण मुक्त करने का वादा कर रही है वहीं दूसरी ओर गंगा के तट पर और घाट बनाने का प्रस्ताव भी पास कर रही है। इसके विपरीत सरकार अगर खाली स्थानों पर पेड़-पौधे लगाये तो गंगा की वर्तमान परिस्थिति में कुछ सुधार लाया जा सकता है। वाराणसी शहर का 7 किमी. अस्सी से वरुणा का भाग मूलतः कंक्रीट है बाकी के भाग में खेती का प्रचलन है।

वैज्ञानिक अवलोकन के पश्चात वाराणसी में दो प्रकार के भूमि प्रयोग विस्तृत हैं- खेती तथा नगरीय। अमूमन गंगा नदी का पानी वाराणसी में खेती करने वाले स्थानों पर बेहतर दिखाई देता है वहीं शहरी स्थानों में गंगा की स्थिति अनुपयुक्त प्रतीत होती है। गंगा के पानी की गुणवत्ता पर अनेक शोध पत्र व शोध प्रबंध प्रकाशित हो चुके हैं; किन्तु, भूगर्भ के परिपेक्ष्य में इस नदी पर शोध की कमी दिखायी देती है।

सरकार एक बार पुनः अपने प्रयासों को नया रूप देने के लिए एक विस्तृत परियोजना 'नमामि गंगे परियोजना' के साथ हमारे सामने प्रस्तुत हुई है। नमामि गंगे परियोजना या नमामि गंगे योजना, केन्द्रीय सरकार की गंगा को व्यापक ढंग से साफ करने के लिए यह एक महत्वाकांक्षी परियोजना है। अपने प्रथम बजट में केन्द्रीय सरकार ने इस योजना के लिए 2037 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं। अधिकारिकतौर पर इस मिशन को संघटित गंगा संरक्षण मिशन के रूप में जाना जाता है। इस परियोजना का उद्देश्य मूलतः गंगा का संरक्षण है जिसके लिए वर्तमान की योजनाओं का संयोजन कर भविष्य की यथार्थपूर्ण योजनाओं का संरचन करना होगा। इस परियोजना के तहत 8 राज्यों में 47 कस्बों और 12 नदियों को कवर किया जाएगा। इस परियोजना के अन्तर्गत सरकार ने 1632 से अधिक ग्राम पंचायतों को सन् 2022 तक खुले में शौच से मुक्त किए जाने का प्रण भी लिया है। ध्यान केंद्रित करने वाली बात यह है कि इस परियोजना का केंद्र-बिंदु तट पर रहने वाले लोगों को भी गंगा के संरक्षण में शामिल करना है। इसके अलावा नदी केन्द्रित शहरी नियोजन प्रक्रिया की स्थापना, गंगा के तट पर 118 शहरी बस्तियों में सीवरेज को ठीक करना, गंगा से संबंधित नदी नियामक क्षेत्र को प्रभावशील बनाना, गंगा ज्ञान केन्द्र, तर्कसंगत कृषि पद्धतियों और कुशल सिंचाई विधियों का विकास जैसी अन्य योजनाएँ भी शामिल हैं।

आज आवश्यकता है प्रसिद्ध वैज्ञानिक एच.एन.बी. हाइंस के विचार ''नदियों को उसकी घाटी से अलग करके नहीं देखा जा सकता'' को पुनः जीवंत करने की। नदी का स्थानिक अवधारणा से दृष्टिगठन ही नदी और भूमि के संयोजित शोध की आधारभूत रूपरेखा है। चूँकि, प्रदूषक भूमि के माध्यम से ही नदी में प्रवेश करते हैं, इसलिए भूमि और भूमि उपयोग परिवर्तन पर शोध को अनदेखा करना कदापि उचित नहीं होगा। इतने वर्षों की गंगा को साफ करने की विफलताओं के बाद जरूरत है अपने दृष्टिकोण को बदलने की, मनुष्यों की नदी से निकटता ही नदी की दयनीय स्थिति का कारण है। इन सबसे ये तात्पर्य कदापि नहीं है की हम नदी के पास की इमारतों को क्षतिग्रस्त करें, परन्तु यह अवश्य है कि हम बढ़ते शहरीकरण को रोकें तथा सतत् शहरीकरण की ओर अग्रसर हों।

पृथ्वी के पर्वतों एवं पठारों का रहस्य

प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह*

हमारी पृथ्वी 4.5 बिलियन वर्ष (Billion Years) पुरानी है जो कि तीन भाग जलीय क्षेत्रों एवं एक भाग स्थलीय क्षेत्रों (Solid Continent) से बनी है जो Plate विवर्तनिक (Tectonic) गतिविधियों से अपना स्वरूप बदलती रहती है। फलस्वरूप, पर्वतों, पहाड़ियों एवं पठारों का निर्माण होता रहता है और स्वरूप भी बदलता रहता है। पृथ्वी के पहाड़ों एवं पठारों का रहस्य जानने हेतु बहुत शोध करना पड़ा तथा कई प्रकार के पहाड़ों एवं पठारों की जानकारी प्राप्त हुई। आज किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था पहाड़ों एवं पठारों में मिलने वाले आर्थिक खनिजों पर आधारित रहती है। प्राकृतिक गैस, सोना, चाँदी, हीरा-लोहा, ताँबा, जस्ता जैसी बहुमूल्य वस्तुयें जिस देश के पहाड़ों एवं पठारों में अधिक मिलते हैं वह देश उतना ही विकसित देश माना जाता है। विभिन्न प्रकार के पहाड़ों एवं पठारों के क्रिया-कलापों से विश्व पर्यावरण अपने आप संतुलित होता रहता है। इस लेख में विभिन्न प्रकार के पहाड़ों एवं पठारों का वर्णन किया गया है जिसका रहस्य उनकी बनावट में छुपा है। जैसे आल्प्स की पहाड़ी ग्रेनाइट एवं लाइमस्टोन से बनी है। जो Arches, trough and S-Shaped fold जैसी होती है।

पर्वत (Mountains) : समस्त भू-पटल के लगभग 26 प्रतिशत भाग पर पर्वत एवं पहाड़ियों का विस्तार है, जो भूपर्पटी के द्वितीय श्रेणी के उच्चावच है। पर्वत अपने समीपवर्ती धरातल से सामान्यतः 100 मीटर से ऊँचे ऐसे भाग हैं जिनका ढलान तीव्र और शिखर पर संकुचित होता है।

पर्वत

पर्वत श्रेणी (Mountain Range) : जब एक ही प्रकार के एवं एक ही आयु के कई पर्वत संकरी और लंबी पट्टी में फैले रहते हैं, तो उसे पर्वत श्रेणी कहा जाता है। जैसे हिमालय पर्वत श्रेणी।

पर्वत श्रेणी

पर्वत श्रृंखला (Mountain Series) : विभिन्न युगों में निर्मित लंबे एवं संकरे पर्वतों का समानान्तर विस्तार पर्वत श्रृंखला कहलाती है। जैसे अल्पेशियन पर्वत माला, रॉकीज पर्वत माला।

पर्वत श्रृंखला

पर्वत तंत्र (Mountain System) : पर्वत तंत्र भी विभिन्न श्रेणियों का समूह होता है किन्तु पर्वत श्रृंखला के विपरीत उसमें एक ही युग में निर्मित पर्वतों को शामिल किया जाता है।

पर्वत तंत्र

*भौमिकी विभाग, विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221 005.

पर्वत वर्ग (Mountain Group) : जब पर्वतों का समूह गोलाकार रूप में स्थित होता है। तथा श्रेणियाँ या कटक असमान रूप से विस्तृत होते हैं तो उसे पर्वत वर्ग कहते हैं।

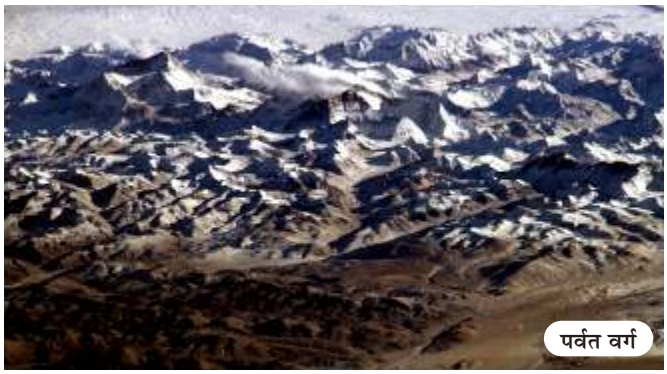
पर्वत वर्ग

पर्वत समूह या कार्डिलेरा (Cordilera) : जब विभिन्न युगों से निर्मित पर्वत श्रेणियाँ, पर्वत शृंखलाएँ तथा पर्वत तंत्र एक साथ ही बिना किसी क्रम के विस्तृत रहते हैं, तब उसे कार्डिलेरा कहा जाता है। जैसे प्रशान्त कार्डिलेरा, ब्रिटिश कोलंबिया या कार्डिलेरा।

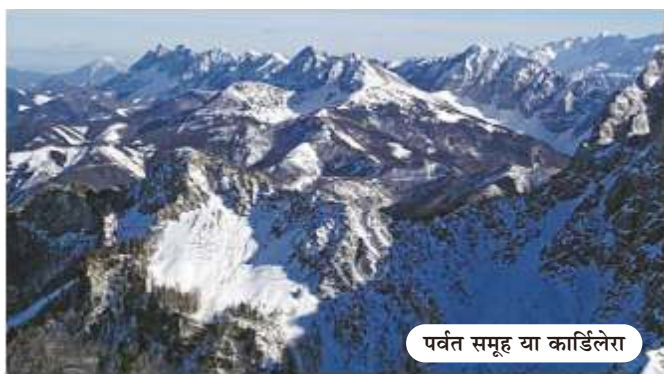
पर्वत समूह या कार्डिलेरा

निर्माण विधि के आधार पर पर्वतों के प्रकार

वलित पर्वत (Folded Mountain)

- जब चट्टानों में पृथ्वी की आंतरिक शक्तियों द्वारा मोड़ या वलन पड़ जाता है तो उसे मोड़दार या वलित पर्वत कहते हैं।
- वलित पर्वतों का निर्माण न केवल उथले, परन्तु लंबे और पतलों सागरों में हुआ है। इस प्रकार के जलीय भाग को भू-सन्नति कहा जाता है।
- वलित पर्वतों का निर्माण अवसादी चट्टानों में दबाव से मोड़ पड़ने के कारण हुआ है।
- वलित पर्वत मुख्य रूप से चाप के आकार में पाए जाते हैं, जिनका एक भाग धरातल और दूसरा उत्तल होता है।
- ये विश्व के सर्वाधिक ऊँचे, विस्तृत और नवीनतम पर्वत हैं।

उदाहरण–

- एशिया - हिमालय, अराकान, सुलेमान, हिन्दुकुश, जाग्रोस, काराकोरम, कयूनलून आदि।
- अफ्रीका - एटलस

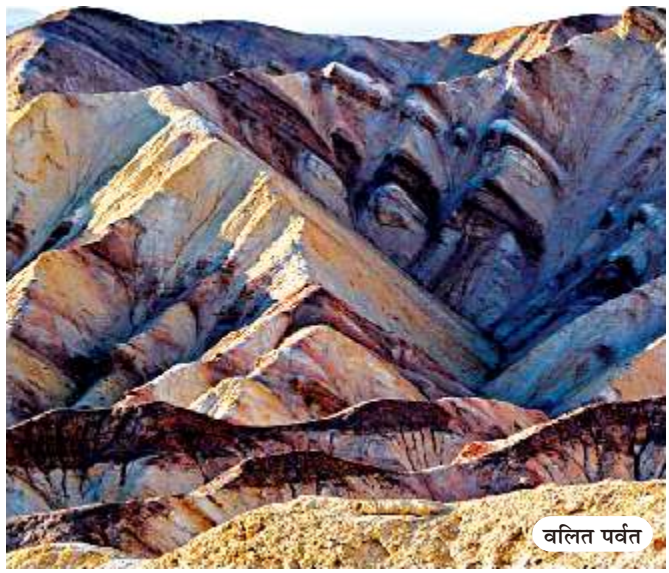
वलित पर्वत

- दक्षिणी अमेरिका - एंडीज
- उत्तरी अमेरिका - रॉकीज
- आस्ट्रेलिया - ग्रेट डिवाडिंग रेंज
- यूरोप - काकेशस, आल्पस, स्पेनाइन, पिरेनीज, केन्ट्रावियन बाल्कन, कॉरपेथियन, दिनारक आल्पस आदि।

ब्लाक पर्वत (Block Mountain)

- जब पृथ्वी में अंतर्जात बलों के द्वारा दो समान्तर दरारें पड़ जाती हैं तो भ्रंशों के मध्य का भाग ऊपर उठ जाता है, या नीचे धरा जाता है।
- यदि बीच का भाग ऊपर उठे ब्लॉक या अवरोधी पर्वतों का निर्माण होता है।
- इन पर्वतों का ऊपरी सतह मेज की भाँति सपाट होता है।
- दरार या भ्रंश के कारण निर्माण होने की वजह से इन्हें भ्रंशोर्त्थ पर्वत भी कहते हैं।
- उदाहरणतया - वासजेज (फ्रांस), ब्लैक फारेस्ट (जर्मनी), हार्ज (जर्मनी), सतपुड़ा एवं विन्ध्य (भारत), सियशरा नेवादा (U.S.A.), साल्टरेंज (पाकिस्तान)।

ब्लाक पर्वत

संग्रहीत पर्वत (Mountain of Accumulation)

- धरातल के ऊपर मिट्टी, मलवा, लावा इत्यादि के निरंतर जमा होने के कारण निर्मित पर्वतों को संग्रहीत पर्वत कहते हैं।
- ज्वालामुखी उद्‌गार से निस्तृत लावा विखण्डित पदार्थ तथा राख चूर्ण आदि के क्रमबद्ध या असम्बद्ध संग्रह के फलस्वरूप संग्रहीत पर्वतों का निर्माण होने के कारण इसे ज्वालामुखी पर्वत भी कहते हैं।
- उदाहरण- शस्ता तथा रेनिडियर (U.S.A.), मेयान (फिलीपींस), कोटोपेक्सी (इटली), फयूजीयामा (जापान), विसुवियस (इटली), एकांकगुआ (चिली), पोपोकेपिटल (मेक्सिको), किलिमंजारो (अफ्रीका) आदि।

गुम्बदाकार पर्वत (Dome Mountain)

- जब पृथ्वी के धरातलीय भाग में चाप (arc) के आकार में उभार होने से धरातलीय भाग ऊपर उठ जाता है, तो उसे गुम्बदनुमा पर्वत कहा जाता है।
  उदाहरण- U.S.A. का ब्लैक हिल्स, बिगहार्न्स, हेनरी पर्वत, सिनसिनाटी उभार आदि।

अवशिष्ट पर्वत (Residual Mountain)

- अपरदन की शक्तियों द्वारा जब प्रारम्भिक पर्वत अपरदित होकर अवशिष्ट के रूप में दृष्टिगोचर होता है तो उसे अवशिष्ट पर्वत कहते हैं।
  उदाहरण- भारत में विन्ध्याचल, सतपुड़ा, अरावली, महादेव, पारसनाथ, पूर्वीघाट, U.S.A. में ऑलेशियन, न्यूयार्क मैसिक, कैस्टिकल आदि।

जटिल पर्वत (Complex Mountain) : जब किसी पर्वत में कई पर्वतों की विशेषता सम्मिलित हो जाती है, तो उसे जटिल पर्वत कहते हैं। उदाहरण- ह्वाइट पर्वत U.S.A., एनाकोण्डा U.S.A., सियारा नेवादा U.S.A. आदि।

पर्वतों के रहस्य

- यूराल एवं फाकेशश यूरोप और एशिया की सीमा बनाते हैं।
- सागर नितल के आधार पर विश्व का सबसे पहले ऊँचा पर्वत मैनाकी (हवाई द्वीप) है।
- सियारा नवादा विश्व का सर्वाधिक विस्तृत ब्लॉक पर्वत है।
- विश्व की सबसे लम्बी पर्वत श्रृंखला एंडीज है।
- उत्तरी अमेरिका का सर्वोच्च पर्वत शिखर माउंट मॉकिन्ले (6194 मी0) अलास्का में है।
- यूरोप का सर्वोच्च पर्वत शिखर माउंट एलबुर्ज (5642 मी0) है।
- अफ्रीका का सर्वोच्च पर्वत शिखर माउंट किलिमंजारों (5895 मी0) है।
- ऑस्ट्रेलिया का सर्वोच्च पर्वत शिखर विन्सन मौसिक (5140 मी0) है।
- माउन्ट एवरेस्ट (8848 मी0) एशिया और विश्व की सर्वोच्च पर्वत शिखर है।
- आल्पस पर्वत की सर्वोच्च चोटी माउंट ब्लैक है।
- अफ्रीका महाद्वीप का एक मात्र अल्पाइन मोड़दार पर्वत एटलस पर्वत है।
- अल्पस पर्वत का विस्तार फ्रांस, स्विट्जरलैंड तथा आस्ट्रीया देशों में है।

पर्वतों के निर्माण से संबंधित प्रमुख सिद्धांत

सिद्धांत	प्रणेता
तपीय संकुचन सिद्धांत	जेफ्रीम
भू-सन्नति का सिद्धांत	कोबर
संवहन तरंग सिद्धांत	होम्स
रेडियो सक्रियता सिद्धांत	जोली
खिसकते महाद्वीपों की परिकल्पना	डेली
प्लेट विक्तंनिकी सिद्धांत	हेरी हेस

पठार (Plateau) : पठार धरातल पर ऊँचे उठे हुए वे भू-भाग हैं, जो ऊपर से समतल होते हैं तथा जिनके एक या अधिक किनारों का ढ़ाल कभी-कभी बिल्कुल खड़ा होता है।

पठार

भगौलिक आधार पर पठारों का वर्गीकरण

अन्तर्पर्वतीय पठार : तिब्बत बोलविया, कोलंबिया एवं मैसिक्को के पठार।

अन्तर्पर्वतीय पठार

गिरिपदीय पठार : सं.रा. अमेरिका का पीडमांट पठार, केलोराडो पठार, द. अमेरिका का पैटागोनिया पठार, भारत में शिलांग पठार।

गिरिपदीय पठार

महाद्वीपीय पठार : भारत का प्रायद्वीपीय पठार, अरब का पठार, दक्षिणी अफ्रीका का पठार, आस्ट्रेलिया का पठार, ब्राजील का पठार, ग्रीनलैंडल लैब्राडोर एवं साइबेरिया का पठार।

महाद्वीपीय पठार

निर्माण प्रक्रिया के आधार पर पठार

ज्वालामुखीय पठार : दक्कन का पठार , कोलंबिया का पठार, ब्राजील का पठार, आइसलैंड एवं न्यूजीलैंड का पठार, साइबेरिया का पठार, पैठागोनिया का पठार।

ज्वालामुखीय पठार

पटल विरूपणी पठार : तिब्बत का पठार, बोलविया का पठार, सियरामाद्रे का पठार।

पटलविरूपणी पठार

आकृति के आधार पर पठार

गुंबदाकार पठार : छोटानागपुर का पठार, अमेरिका में अजॉर्क पठार।

गुम्बदकार पठार

विच्छेदित पठार : असम का पठार।

विच्छेदित पठार

सोपानाकार पठार : भारत का विन्ध्य पठार।

सोपानाकार पठार

चौरस पठार : तिब्बत का पठार।

चौरस पठार

पठारों का रहस्य

- भूतल के लगभग 33 प्रतिशत भाग पर पठारों का विस्तार है।
- विश्व का सर्वाधिक ऊँचाई वाला पठार तिब्बत का पठार है।
- विश्व प्रसिद्ध गहरी 'ग्रैंड कैनियन' कोलोरेडो के पठार का भाग है।
- चेरापूँजी का पठार (भारत) एवं शान का पठार (म्यांमार) जलकृत पठार के उदाहरण हैं।
- सुप्रसिद्ध निकिल का उत्पादन करने वाली सडबरी खान कनाडियन शील्ड में पायी जाती है।
- जैरे-जांबिया स्थित कटंगा पठार कोबाल्ट व ताँबा का विश्व प्रसिद्ध उत्पादक क्षेत्र है।
- यू0एस0ए0 स्थित ओजार्क पठार जस्ता तथा शीशा उत्पादन हेतु प्रसिद्ध है।
- छोटा नागपुर के पठार को 'भारत का रूर' कहा जाता है।
- पोतवार (पाकिस्तान) तथा लोयस (चीन) वायु के परिवहन और निक्षेपण से निर्मित पठार हैं।
- मृत घाटी ग्रेट बेसिन पठार में स्थित है।
- जम्मू-काश्मीर राज्य के हिमानी निक्षेप सं0 निर्मित पठारी भागों से मर्ग से संबंधित है।
- पिसौरी का पठार (यू0एस0ए0) पाट पठार पुनर्युवनित पठार के उदाहरण हैं।

- अल्पेशियन का पठार प्रौढ़ पठार का उदाहरण है।
- कोलोरेडो तथा इदाहो का पठार (यू0एस0ए0) तरुण पठार का उदाहरण है।
- छोटा नागपुर पठार विश्व का सर्वाधिक लाख उत्पादक क्षेत्र है।
- अंटार्कटिका पठार एवं ग्रीनलैंड का पठार हिमानी निर्मित पठार है।
- पठार भूपटल के द्वितीय श्रेणी के उच्चावच हैं।
- मैक्सिको का पठार सियरा माद्र पर्वतों से घिरा है।
- बोलिविया का पठार एंडीज पर्वत के बीच है।
- रामगढ़ का पठार गुंबदाकार पठार का उदाहरण है।
- किसी पठार के वृद्ध या जीर्ण होने का प्रथम लक्षण मंसा का निर्माण है।
- राँची का पठार जीर्ण पठार का उदाहरण है।
- अगहर एवं तिबेस्टी के पठार सहारा मरुस्थल में है।
- पैटागोनिया का पठार शीत जलवायु में स्थित पठार है।

वातावरण संतुलन में पहाड़ों एवं पठारों का महत्व

पर्वतों एवं पठारों का महत्व वायुमंडल को शुद्ध रखना है। पर्वतों, पठारों से घाटियों, नदियों एवं हिम नदियों का निर्माण होता है जो जल स्रोत के प्रमुख कारण हैं क्योंकि सारी घाटियाँ एवं नदियाँ उच्चतम स्तर से नीचले स्तर तक जल पहुँचा कर वायुमंडल को संतुलित करती हैं। इसके अलावा सभी पर्वतों एवं पठारों पर वन्य एवं घने जंगल के कारण कार्बन डाईआक्साइड एवं आक्सीजन की मात्रा से वायुमंडल को संतुलित रखता है तथा वन्य जीवन अपने-आप अपना जीवनोपार्जन स्वयं करते हैं। पहाड़ों एवं पठारों में विश्व के 90 प्रतिशत खनिज तत्व मिलते हैं। जो विश्व विकास में प्रमुख उपयोगी होते हैं। आज विश्व में पहाड़ों, पठारों की भूमिका बड़े जलाशयों एवं बिजली निर्माण, रोड निर्माण एवं विभिन्न पिकनिक स्थान जैसे झरना, डैम, जलप्रपात आदि द्वारा पृथ्वी का विहंगम दृश्य रोमांचक दिखता है। जिनकी उत्पत्ति अपने-आप होती है, इसी को नेचर कहते हैं।

पर्वत का वर्गीकरण

भूर्गाभिक इतिहास (काल) के आधार पर पर्वतों का वर्गीकरण

युग	पर्वत
प्री-कैम्ब्रियन युग के पर्वत - लोशियन पर्वत, अलगोमन पर्वत (400 मिलियन वर्ष पूर्व)	लोशियन पर्वत, अलगोमन पर्वत कैलिडोनियन पर्वत (उत्तर अमेरिका)
कैलिडोनियन युग के पर्वत -(320 मिलियन वर्ष पूर्व)	स्कैण्डिवियन, ब्राजीलाइड्समहादेव विन्ध्यन सतपुड़ा (भारत)
हार्सीनियन पर्वत (270 मिलियन वर्ष पूर्व)	वास्जेज, ब्लैक फारेस्टअल्टाई, यूराल, टिएनशन, नानशान, सेंट्रल मैसिफ, दक्षिण वेल्स आदि।
अल्पाइन पर्वत	पिरेनीज एटलस, हिमालय, जैग्रोव, एलबुर्ज, अराकानयोम आदि।

बच्चों में मोटापा : हृदय रोग और रक्तचाप का खतरा

दो साल के बच्चे तीन गुना तक ज्यादा खाते हैं खाना : आजकल छोटे बच्चों में मोटापे की समस्या आम होती जा रही है। विशेषज्ञों ने चेतावनी दी है कि बच्चों में बढ़ता यह मोटापा भविष्य में उनके लिए घातक साबित हो सकता है। बच्चों के मोटापे के पीछे माता-पिता का उनके खाने को लेकर ज्यादा चिंतित होना कारण है, जिससे वे अपने बच्चे को हर समय कुछ न कुछ खिलाते-पिलाते रहते हैं। यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लंदन, ऑक्सफोर्ड और ब्रिस्टल विश्वविद्यालयों के शोधकर्ताओं ने बच्चों के खाने की मात्रा को लेकर अध्ययन में पाया कि औसतन दो साल तक के बच्चे जरूरत से तीन गुना ज्यादा खाना खाते हैं। शोधकर्ताओं ने अध्ययन के दौरान देखा कि 21 महीने के दो तिहाई बच्चे जरूरत से ज्यादा कैलोरी का सेवन करते हैं। उन्होंने चेतावनी दी है कि जरूरत से ज्यादा कैलोरी लेने से बच्चों को वयस्क होने पर उच्च रक्तचाप, हृदय रोग और टाइप-2 डाइबिटीज जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं। शोधकर्ताओं ने 2336 बच्चों की खान-पान की आदतों के नतीजों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला। इस अध्ययन को ब्रिटिश जर्नल ऑफ न्यूट्रीशन में प्रकाशित किया गया है।

ज्यादा कैलोरी और प्रोटीन ले रहे बच्चे : अध्ययन के दौरान देखा गया कि दो साल के बच्चे के लिए जरूरी 968 कैलोरी से ज्यादा कैलोरी ले रहे हैं। अध्ययन के अनुसार, 63 फीसदी बच्चे रोज करीब 1035 कैलोरी लेते हैं, वहीं वह जरूरत से करीब तीन गुना ज्यादा प्रोटीन भी लेते हैं। दो साल तक के बच्चों को रोज 15 ग्राम प्रोटीन की जरूरत होती है, लेकिन इस उम्र के बच्चे 40 ग्राम प्रोटीन रोज लेते हैं।

खान-पान पर दें ध्यान : पब्लिक हेल्थ इंग्लैण्ड में न्यूट्रीशन साइंस के प्रमुख डाक्टर लुईस लेवी के अनुसार, बच्चे के खान-पान पर ध्यान देते की जरूरत है। माता-पिता को चाहिए कि वह उनके खाने में पाँच हिस्से फल और सब्जियाँ शामिल करें। जबकि तीखा, मीठा और जंक फूड को कम करें। ''शुरुआती दो साल में खाने की आदतों का हमारे स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। शुरुआती जीवन में अगर अस्वास्थ्यकर भोजन की मात्रा ज्यादा रहे, तो भविष्य में गंभीर बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है।

क्षोभमंडलीय ओजोन द्वारा फसलों की उत्पादकता पर पड़ता प्रभाव

प्रो० शशि भूषण अग्रवाल एवं डॉ० निवेदिता चौधरी*

ओजोन वातावरण में उपस्थित एक सर्वव्यापी गैस है, जो अपनी स्थिति के अनुरूप लाभप्रद या हानिकारक साबित होती है। समतापमंडल में पायी जाने वाली ओजोन, हानिकारक पराबैंगनी विकिरण को सुरक्षात्मक परत से अवरुद्ध करके पृथ्वी पर जीवन की रक्षा करती है। वहीं, निचले वायुमंडल (क्षोभमंडल) में ओजोन एक प्रदूषक की भाँति रहती है, जो प्रकाशरासायनिक धुंध का एक प्रमुख घटक और एक शक्तिशाली ऑक्सीडेंट भी है। वातावरण में ओजोन का गठन मुख्यतः वाहनों एवं कारखानों से निकलने वाले धुँए जिसमें अधिकांशतः नाइट्रोजन ऑक्साइड (NOx), वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों (VOCs) और कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) जैसे प्राथमिक प्रदूषक पाये जाते हैं जो सूर्य की रोशनी में अभिक्रिया कर ओजोन का निर्माण करते हैं (चित्र 1)। अतः निचले वातावरण में ओजोन हानिकारक द्वितीयक प्रदूषक तथा एक महत्वपूर्ण ग्रीन हाउस गैस है। बढ़ती ओजोन सान्द्रता एक बड़े संकट की तरह उभरी है जोकि आज के परिवेश में बढ़ते औद्योगिक और आर्थिक विकास के कारण जनसाधारण के लिए गंभीर समस्या हो गयी है। ओजोन की उच्च सांद्रता प्रायः उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की अनुकूल परिस्थितियों जैसे उच्च तापमान, पर्याप्त सूर्य का प्रकाश, तथा कम आर्द्रता के कारण अधिक पायी जाती है।

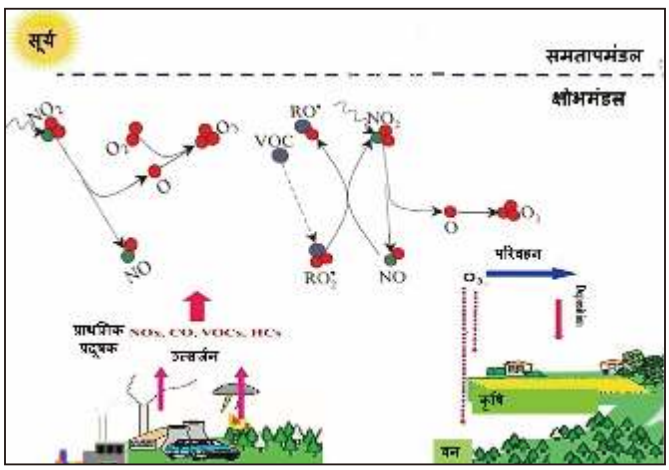

चित्र 1. वातावरण में ओजोन का प्राथमिक प्रदूषकों द्वारा गठन एवं परिवहन

ओजोन प्राकृतिक वनस्पतियों और कृषि की उत्पादकता को गंभीर क्षति पहुँचने के साथ ही मानव स्वास्थ्य के लिए भी अहितकर है जो मुख्य रूप से श्वसन समस्याओं को बढ़ाती है। विभिन्न शोधों द्वारा ओजोन से अस्थमा, निमोनिया और ब्रोंकाइटिस जैसे श्वसन संबंधी बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि पायी गयी है।

पौधों में ओजोन उद्ग्रहण तथा प्रतिक्रियाएँ

ओजोन मुख्यतः पौधों की पत्तियों में उपस्थित रंध्रों (Stomata) के माध्यम से प्रवेश करती है, एक प्रभावशाली ऑक्सीडेंट होने के कारण एपोप्लास्ट में स्थित पानी और विलेय द्वारा प्रतिक्रिया करके प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियाँ (Reactive oxygen species; ROS) जैसे- $O._2$, OH. और .OOH का निर्माण करती है (चित्र 2)। पौधों पर प्रभाव के लिए ओजोन की सटीक सान्द्रता, कोशिका दीवार और कोशिका झिल्ली घटक के साथ प्रतिक्रिया विशेष रूप से जिम्मेदार होती हैं जिससे ओजोन जनित ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस उजागर होता है।

प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) द्वारा विभिन्न जैव-रासायनिक, फिजियोलॉजिकल और कोशिकीय कार्यों में परिवर्तन होता है जिसके परिणामस्वरूप, विकास, उपज, बायोमास और समग्र विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ओजोन का पौधों पर हानिकारक प्रभाव एक्सपोजर और पत्तियों में ओजोन की मात्रा तथा कोशिकाओं में परिवर्तन पर निर्भर करता है। पौधों में ओजोन उद्ग्रहण प्राथमिकी मार्ग रंध्रों द्वारा गैसीय विनिमय (Gaseous exchange) के द्वारा नियंत्रित होती है। ओजोन कोशिका दीवार के भीतर और प्लाज्मा मेम्ब्रन पर ओजोन द्वारा जनित ROS से विपरीत प्रभाव डाल कर मेम्ब्रन बाध्य अंगों जैसे क्लोरोप्लास्ट में परिवर्तन करती है, जिससे संश्लेषण पिग्मेन्ट (photosynthetic pigments) की हानि होती है और प्रकाश संश्लेषण की दर (photosynthetic rate) में गिरावट भी होती है। प्रकाश संश्लेषण में कमी, रंध्र प्रवाहकत्त्व (stomatal conductance) में कमी, जल उपयोग दक्षता (water use efficiency) में परिवर्तन भी देखा गया है। ओजोन के प्रति संवेदनशील पौधों में प्रत्यक्ष पर्ण क्षति (जैसे स्टिपल और क्लोरोसिस) दिखायी देती है। अतः फसल प्रजातियों में संश्लेषण दर में कमी एवं पत्ती वार्धक्य (leaf senescence) में तेजी से वृद्धि देखी गयी है जो फसल की उत्पादकता को प्रभावित करती है।

फसली पौधों की उपज पर ओजोन का प्रतिकूल प्रभाव

विभिन्न कृषि प्रजातियों पर ओजोन के प्रभाव का मूल्यांकन विभिन्न प्रयोगों के आधार पर किया गया है। वर्तमान और प्रत्याशित वायुमंडलीय ओजोन सांद्रता से विश्व के कई क्षेत्रों में कृषि और बागवानी फसलों की

*वायु प्रदूषण एवं वैश्विक जलवायु परिवर्तन प्रयोगशाला, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

उत्पादकता प्रभावित होने के अध्ययन किये गये हैं। वनस्पतियों पर ओजोन प्रभाव को ओजोन अनावरण सूचकांक (Ozone exposure index) द्वारा भी प्रतिपादित किया गया है। ओजोन सांद्रता की 40 पी.पी.बी. की संचित सीमा के ऊपर ओजोन (accumulated oxone over a threshold of 40 ppb; AOT 40) यूरोपीय देशों में ओजोन सांद्रता आधारित सूचकांक को संदर्भित करता है। खुले शीर्ष कक्षों (Open Top Chambers; OTC) और फ्री-एयर कार्बन डाइऑक्साइड संवर्धन (Free Air CO_2 Enrichment, FACE) में किये गये विभिन्न प्रयोगों के आधार पर फसली पौधों की उत्पादकता में कमी देखी गयी है। अलग-अलग क्षेत्रों में किये गये विभिन्न प्रयोगों में उपज को ओजोन सूचकांक के साथ सहसंबद्ध कर यह पाया गया की ओजोन संवेदनशील फसलों में गेहूँ, तरबूज, दाल, कपास, शलजम, टमाटर, प्याज और सोयाबीन, मध्यवर्ती संवेदनशील फसलों (चुकंदर, आलू, तिलहन, तंबाकू, चावल, मक्का, अंगूर और ब्रोकोली) और ओजोन प्रतिरोधी (बेर, स्ट्रॉबेरी और जौ) के रूप में सम्मिलित है।

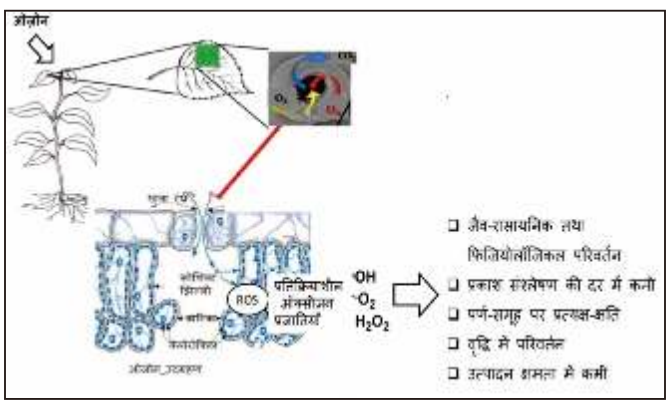

चित्र 2. पौधों पर ओजोन का प्रभाव

उत्तर भारत में स्थित गंगा के मैदानी क्षेत्रों (Indo-Gangetic plains) में उच्च ओजोन सान्द्रता अन्य भागों की तुलना में अधिक मापी गयी है जिससे कृषि उत्पादकता पर सार्थक नकारात्मक प्रभाव पाये गये हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में प्रो0 मधूलिका अग्रवाल एवं प्रो0 एस.बी. अग्रवाल के निर्देशन में हुए विभिन्न शोधों में प्रयोगात्मक रूप से सत्यापित किया गया की ओजोन गेहूँ, धान, सरसों, मूँग बीन, सोयाबीन, मक्का जैसे महत्वपूर्ण फसली पौधों के साथ-साथ चारा फसल (क्लोवर) की उत्पादकता पर अपना विपरीत प्रभाव डालती है। खुले शीर्ष कक्ष OTCs में किये गये अध्ययन जिसमें सोयाबीन की दो प्रजातियों पर 70 और 100 पी.पी.बी. एक्स्पोजर दिया गया जिससे 33.5 तथा 25 प्रतिशत की कमी पायी गयी। परिवेशी ओजोन सांद्रता 40.6 पी.पी.बी. गेहूँ की पैदावार में 20.7 प्रतिशत तथा धान की उपज में 10-14 प्रतिशत की कमी 35.5 पी.पी.बी. परिवेशी ओजोन में पायी गयी। OTCs में परिवेश से 10 एवं 20 पी.पी.बी. अधिक ओजोन देने पर गेहूँ की दो किस्मों; सोनालिका में 16.7 और 22 प्रतिशत तथा HUW 510 में 18.5 और 25 प्रतिशत क्रमशः की कटौती फिल्टर्ड चैम्बर की तुलना में पायी गयी। सरसों की दो प्रजातियों (संजुक्ता और वरदान) पर हुए शोध कार्य से ज्ञात हुआ की परिवेशी ओजोन से 10 पी.पी.बी. अधिक ओजोन देने पर 52.5 तथा 45.7 प्रतिशत कमी हो गयी। परिवेशी ओजोन से 15 और 30 पी.पी.बी. अधिक ओजोन देने पर मक्के की उत्पादकता में 7.2 और 10.1 प्रतिशत क्रमशः गिरावट दर्ज हुई।

ओजोन सांद्रता परिदृश्य

विगत कुछ वर्षों में वाराणसी के उपनगरीय स्थल पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग द्वारा की गयी निगरानी से ओजोन सांद्रता में परिवर्तन का पता चलता है। ओजोन की सांद्रता विभिन्न प्रयोगात्मक अवधि के दौरान दर्ज की गयी और शोध के उद्देश्य से उसे कृषि फसलों की उपज के साथ सहसंबद्ध (Correlate) कर ओजोन के प्रभाव को मापा गया। इसी स्थान पर ओजोन सांद्रता में प्रमुख मौसमी बदलाव भी दर्ज किये गये जिसमें ग्रीष्म ऋतु में सबसे अधिक 45.18-62.35 पी.पी.बी., वही शरद ऋतु में 28.55-44.25 पी.पी.बी. और निम्न ओजोन सांद्रता वर्षाकाल में 24-43.85 पी.पी.बी. निगरानी के दौरान दर्ज की गयी। हाल के वर्षों में ओजोन सांद्रता की बढ़ती प्रवृत्ति को चित्र 3 में वर्ष 2010-2012 की विभिन्न प्रयोगात्मक अवधि की निगरानी से दर्शाया गया है। सभी प्रयोगात्मक अवधियों में ओजोन सांद्रता की बढ़ती प्रवृत्ति परीक्षण पौधों (मूँग बीन और क्लोवर) में वेजिटेटिव चरण (Vegetative-stage) से प्रजनन चरण (Reproductive-stage) के दौरान देखी गयी।

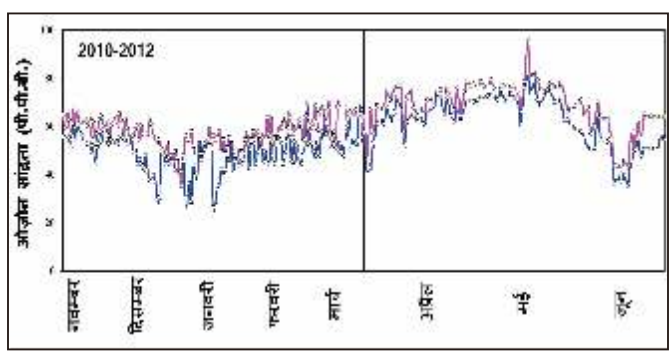

चित्र 3. प्रयोगात्मक अवधि के दौरान मासिक औसत ओजोन सांद्रता में बदलाव

ओजोन के जैविक संकेतक

संवेदनशील पौधे ओजोन क्षति के विशिष्ट लक्षण का प्रदर्शन परिवेश ओजोन के संपर्क में करते हैं। पत्तियों पर प्रत्यक्ष क्षति (Visible injury) के लक्षण संवेदनशील पौधों में ओजोन एक्स्पोजर के कुछ घंटे या दिनों के बाद दिखायी देने लगते हैं तथा इन पौधों को आसानी से जैव-संकेतक

तालिका 1 - विभिन्न क्लोवर प्रजातियों पर बढ़े परिवेशी ओजोन द्वारा पर्ण क्षति

प्रजातियाँ	पर्ण क्षति (प्रतिशत)	क्षति सूचकांक	संयुक्त संवेदनशील सूचकांक	
बुंदेल	40	3	-76.8	संवेदनशील
वरदान	60	4	-111.4	
जे.एच.बी. -146	35	3	-16.1	
फहली	13	1	-43.4	मध्यवर्ती-संवेदनशील
सयदी	17	2	-22.4	सहिष्णु
मस्कावि	14	1	-22.6	

चित्र 4. क्लोवर की प्रजातियों पर ओजोन संवेदनशीलता के आधार पर पर्ण क्षति के लक्षण

(Bioindicator) के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में हुए अध्ययन के तहत प्रयोगात्मक रूप में मूँगबीन और क्लोवर पौधों की विभिन्न प्रजातियों पर ओजोन एक्सपोजर कर उन्हें जैव-संकेतक के रूप में सत्यापित किया गया।

क्लोवर की छः किस्मों (वरदान, बुंदेल, जे.एच.बी.-146, फहली, सयदी और मस्कावि) पर ओजोन का प्रभाव देखा गया और उन पर प्रदर्शित पर्ण क्षति की गणना की गई। पौधों में ओजोन के एक्स्पोजर से पत्तियों की ऊपरी सतह पर अंतरशिराओं (Interveinal) क्षेत्रों में छोटे हल्के पीले और भूरे रंग के फ्लेक्स (Flecks) दिखायी देते हैं जो बाद में नेक्रोसिस में बदल जाते हैं। वरदान में सबसे अधिक पर्ण क्षति दिखाई जो समय के साथ बढ़ गयी, अन्य प्रजातियाँ जैसे बुंदेल और जे.एच.बी.-146 में भी क्षति वरदान के अपेक्षा कम प्रतिशत था। इसके विपरीत, फहली, सयदी और मस्कावि में निम्न क्षति प्रतिशत देखा गया (तालिका-1; चित्र 4)।

संयुक्त संवेदनशील सूचकांक (Cumulative sensitivity index) द्वारा भी यह पाया गया कि वरदान तथा बुंदेल ओजोन के प्रति काफी संवेदनशील है जबकि तीन अन्य फहली, सयदी तथा मस्कावि ने प्रतिरोध प्रदर्शित किया तथा एक कलटिवर जे.एच.बी.-146 ने मध्य संवेदनशीलता दिखायी (तालिका-1)। अतः इस अध्ययन से यह बात सामने आयी कि क्लोवर की संवेदनशील प्रजातियों को 'जैविक संकेतक' (Bioindicator) के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

इसी प्रकार मूँगबीन की छः प्रजातियों (HUM-1, HUM-2, HUM-6, HUM-23, HUM-24 और HUM-26) पर ओजोन का उनकी वृद्धि, पर्ण क्षति व उपज पर पड़ने वाले प्रभाव तथा संवेदनशीलता का पता लगाने के लिए किए गए शोध कार्य में पाया गया की उत्पादन में सबसे ज्यादा गिरावट HUM-1 (21.4 प्रतिशत) एवं HUM-2 (18.6 प्रतिशत) में पायी इससे इन प्रजातियों के सबसे अधिक संवेदनशील होने का पता चलता है। प्रयोग में लायी गयी मूँगबीन की अन्य प्रजातियों में HUM-6 (13.8 प्रतिशत), HUM-24 (12.0 प्रतिशत), HUM-26 (10.2 प्रतिशत) तथा HUM-23 में न्यूनतम (7.8 प्रतिशत) गिरावट दर्ज की गयी, अतः यह अपेक्षाकृत प्रतिरोधी या ओजोन के प्रति सहिष्णु प्रवृत्ति को दर्शाता है। हालाँकि, HUM-6 में मध्यवर्ती-सेवेदनशीलता देखी गयी।

अतः जैविक-अनुश्रवण (Biomonitoring) द्वारा ओजोन सांद्रता का विस्तृत कवरेज अपेक्षाकृत बहुत कम लागत से किया जा सकता है क्योंकि उसके लिए न तो विशिष्ट महंगे उपकरणों की आवश्यकता होती है और न ही विद्युत की, जैव संकेतक के इस्तेमाल से सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में भी आसानी से इस्तेमाल किया जा सकता है जहाँ विद्युत आपूर्ति निरंतर नहीं है। ओजोन का प्रभाव मुख्य फसलों की उत्पादकता के साथ उसकी गुणवत्ता पर भी कुछ परीक्षण स्थलों पर पाया गया। विभिन्न मॉडलों के अध्ययन द्वारा विश्व के कई हिस्सों में सन् 2050 तक ओजोन की सांद्रता में बड़ी वृद्धि की आशंका जाहिर की गयी है, जिससे फसलों की उत्पादकता और ज्यादा प्रभावित होगी। इससे खाद्य सुरक्षा का संकट केवल स्थानीय या राष्ट्रीय स्तर पर सीमित न होकर एक वैश्विक समस्या के रूप में सामने आयेगा।

यह संभव है कि ओजोन से खाद्य सुरक्षा को होने वाली हानि को स्थानीय स्तर पर फसलों की प्रतिरोधी किस्मों को उगाकर बचाया जा सकता है। इसमें उन प्रजातियों को चुनना होगा जिनमें ओजोन के प्रति प्रतिरोधी जीन्स उपस्थित हों और वह ओजोन के प्रति कम संवेदनशीलता प्रदर्शित करें।

जीसैट-15 का सफल प्रक्षेपण, फिर भी यक्ष प्रश्न

आखिर क्या है 'इसरो' की चुनौतियाँ ?

शुकदेव प्रसाद*

भारत के नवीनतम दूरसंचार उपग्रह 'जीसैट-15' (जियो स्टेशनरी सैटेलाइट-15) को यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी 'एरियन स्पेस' के एरियन-5 राकेट ने 11 नवंबर, 2015 को सुबह सफलतापूर्वक उसकी कक्षा में स्थापित कर दिया।

राकेट ने 3.04 बजे प्रातः कौरु, फ्रेंच, गुयाना (द. अमेरिका) से उड़ान भरी जो पूरी तरह त्रुटिहीन थी और राकेट ने उपग्रह को जीटीओ (भू स्थिर अंतरण कक्षा) में पहुँचा दिया। शनैः-शनैः कक्षोन्नयन करके उपग्रह को 36,000 किमी. की ऊँचाई वाली भू-स्थिर कक्षा में डाल दिया जायेगा। प्रक्षेपण के 43 मिनट 24 सेकंड की उड़ान के बाद राकेट ने जीसैट-15 को जीटीओ में स्थापित कर दिया था। उस समय उसकी धरती से निकटतम दूरी (पेरोजी) 250 किमी. और अधिकतम दूरी (एपोजी) 35,819 किमी. थी। शनैः-शनैः उपग्रह को भू-स्थिर कक्षा में पहुँचा दिया जाएगा।

जी सैट-15 मूलतः संचार है जो हमारे पुराने पड़ चुके 'इन्सैट-3ए' और 'इन्सैट-4बी' का स्थानापन्न है। इन्सैट-3ए का प्रक्षेपण अप्रैल, 2003 में किया गया था और उसका 12 वर्षीय कार्यकाल समाप्त हो चुका है। इसी प्रकार मार्च, 2007 में प्रक्षेपित 'इन्सैट-4बी' के आधे प्रेषानुकर (ट्रांसपोंडर्स) 2010 में ही बेकार हो चुके थे क्योंकि इससे संलग्न दो सौर पैनलों में से एक खराब हो चुका था, फलतः विद्युत की आपूर्ति आधी रह गयी और मुख्य नियंत्रण सुविधा (एम सी एफ), हासन, कर्नाटक ने उसे स्विच ऑफ कर दिया।

इस उपग्रह में केयू बैंड के 24 ट्रांसपौंडर्स संलग्न हैं जो मुख्यतः डीटीएच (डायरेक्ट टू होम) सेवाओं के लिए हैं लेकिन इसके अतिरिक्त हजारों वी सैट (वेरी स्माल अपर्चर टर्मिनल) आपरेटरों को यह उपग्रह अपनी सेवाएँ देगा जो ब्राडबैंड सुविधाएँ उपलब्ध कराते हैं। इतना ही नहीं, टी वी न्यूज चैनलों, डीएसएनजी (डिजिटल सैटेलाइट न्यूज गैदरिंग) को भी अपनी सेवाएँ प्रदान करेगा।

3,164 किग्रा वजनी जीसैट-15 के निर्माण और प्रक्षेपण पर लगभग 860 करोड़ रुपये का परिव्यय आया है।

एरियन-5 अपने साथ सउदी अरब के 'अरबसैट-6बी/बद्र-7' उपग्रह को ले गया था और इस उपग्रह की उसने सफल स्थापना कर दी।

हमारे ध्रुवीय राकेट और जीएसएलवी राकेट इतने भारी उपग्रहों को 36,000 किमी. की ऊँचाई वाली कक्षा में पहुँचाने में सक्षम हैं। इसलिए हमें 'एरियन' से अनुबंध करना पड़ा।

36,000 किमी. ऊँचाई वाली भू-स्थिर कक्षा में उपग्रहों की स्थापना के लिए जिन राकेटों की जरूरत होती है, उनमें क्रायोजेनिक इंजन संलग्न किए जाते हैं। जब फ्रांस ने 'एरियन-1' राकेट बनाया था (1981) तब उसने दुनिया के सारे देशों को आमंत्रण दिया था कि वह किसी भी देश के संचार उपग्रह का निःशुल्क प्रक्षेपण कर सकता है लेकिन इसमें एक जोखिम था कि यदि राकेट विनष्ट हो जाता तो उपग्रह को भी विनष्ट होना ही था। मगर नहीं, भारत ने यह जोखिम उठाया और इस प्रकार फ्रांस ने 19 जून, 1981 को भारत के प्रथम प्रायोगिक दूरसंचार उपग्रह 'एप्पल' का

*सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार विजेता, 135/27-सी, छोटा बघाड़ा (एनी बेसेंट स्कूल के पीछे), इलाहाबाद - 211 002.

सफल प्रक्षेपण किया जिससे हमें भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह 'इन्सैट' बनाने की प्रेरणा मिली।

लेकिन हमने अति महत्वाकांक्षी 'इन्सैट' प्रणाली में तीन सुविधाओं का प्रावधान किया। एप्पल में दूरसंचार सुविधा थी लेकिन इन्सैट में संचार के साथ-साथ हमने रेडियो/दूरदर्शन प्रसारण और मौसमी भविष्य कथन का भी उपक्रम किया। इसकी डिजाइन तो इसरो की ही थी। यह तकनीकी रूप से इतनी जटिल थी कि हम 'इन्सैट' को नहीं बना सकते थे, अतः एक अमेरिकी कंपनी एफ ए सी सी (फोर्ड एरो स्पेस एंड कम्युनिकेशन कार्पोरेशन) ने इसे बनाया और चूँकि 'इन्सैट-1' के चारों उपग्रह ने इसे बनाया और चूँकि 'इन्सैट-1' के चारों उपग्रह वहीं बनकर तैयार ही थे, अतः अमेरिका ने इन्हें लाँच करने का भी हमसे अनुबंध किया। इन्सैट-1ए, 1बी को अमेरिका ने अपने डेल्टा राकेट और चैलेंजर शटल से सही सलामत प्रक्षेपित कर दिया मगर इसके बाद चैलेंजर की जो अगली उड़ान हुई, उसमें उड़ान ने चंद सेकेंडों बाद ही शटल के साथ उस पर सवार सातों अंतरिक्ष यात्री भस्मीभूत हो गए। यह नासा के लिए एक तीव्र आघात था और हमारे लिए भी इस अर्थ में कि हमने इन्सैट के माध्यम से जो परियोजनाएँ आरंभ की थीं, वे अधर में लटक गईं।

ऐसे में हमें पाँच वर्ष लग गए कि कोई एजेंसी हमारे इन्सैट उपग्रहों को प्रक्षेपित करे। फ्रांस तैयार हुआ लेकिन इस शर्त के साथ कि इन्सैट-1सी का प्रक्षेपण हम कर ही देंगे लेकिन आगामी 25 वर्षों तक इन्सैट श्रृंखला के सभी उपग्रहों का प्रक्षेपण हम ही करेंगे और भी सशुल्क। ज्ञातव्य हो कि फ्रांस हमसे एक उपग्रह के प्रक्षेपण के निमित्त चार सौ से लेकर पाँच सौ करोड़ रुपये लेता है। मगर देखिए तो सही इतनी ही राशि में इसरो ने 'मंगलयान' को मंगल की कक्षा में स्थापित कर दिया।

हमारी अपनी सीमाएँ हैं, हमारे जीएसएलवी यान के तीन मॉडल हैं। इसके मार्क-1 की भार वहन क्षमता 1.8 टन है जबकि मार्क-2 की क्षमता 2.2 टन है। मार्क-3 निर्माणाधीन है जो 4 टन वजनी इन्सैट/जी सैट श्रृंखला के उपग्रहों को भू-स्थिर कक्षा में स्थापित कर सकता है। ऐसे में फ्रांस से हमारा जो अनुबंध 2006 में ही समाप्त हो गया था, अब मजबूरी में हमें उसी का अवलंब लेना पड़ रहा है, यही है इसरो का यक्ष प्रश्न। जब तक हमारे जीएसएलवी यान की प्रौद्योगिकी परिपक्व नहीं हो जाती, हम अंतरिक्ष संधान में आत्मनिर्भर नहीं हो सकते।

हमारा ध्रुवीय राकेट और जीएसएलवी राकेट 3,164 किग्रा वजनी जीसैट-15 को 36,000 किमी. की ऊँचाई वाली कक्षा में तो पहुँचा ही नहीं सकता था। आगे भी अनेक बाधाएँ हैं। हम अपने देश की संचार संबंधी जरूरतों को रोक भी नहीं सकते, अतः इसरो ने 4,000 किग्रा वजनी 'जीसैट-11' उपग्रह के साथ ही 'जीसैट-17' और 'जीसैट-18' उपग्रहों के प्रक्षेपण का एरियन स्पेस से अनुबंध किया है। यही है इसरो की असली चुनौतियाँ और उसके यक्ष प्रश्न। और अब आइए, डालते हैं एक नजर जीएसएल के सफर पर-

प्रायः 2 टन से भारी उपग्रहों की 36,000 किलोमीटर की ऊँचाई वाली भू-स्थिर कक्षा (Geo Stationary Orbit/Geo Synchronous Orbit) में स्थापना के लिए जीएसएलवी यान (Geo Stationary Launching Vehicle-GSLV) प्रयुक्त किये जाते हैं। इनमें क्रायोजेनिक इंजनों की जरूरत होती है। क्रायोजेनिक्स या क्रायोफिजिक्स विज्ञान की वह शाखा है जिसमें अतिशय न्यून ताप पर पदार्थ की अवस्था और आचरण का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रौद्योगिकी पर क्रायोजेनिक इंजन बनाये गये हैं जिनमें ईंधन (Fuel) के रूप में द्रव हाइड्रोजन (-253°C) और आक्सीकारी (Oxidiser) के रूप में द्रव आक्सीजन (-183°C) प्रयुक्त किए जाते हैं। गर्म होने पर (प्रज्वलन) ये गैसें तीव्रता से प्रसारित होती हैं और यान को जबर्दस्त बूस्ट देती हैं। जीएसएलवी यानों की प्रौद्योगिकी फिलहाल चंद देशों के पास ही हैं मसलन अमेरिका, रूस, फ्रांस, चीन और जापान। भारत भी इस विशिष्ट क्लब में शुमार हो चुका है। भारत ने जिस जीएसएलवी (मार्क-1) को निर्मित किया है, उसकी भार वहन क्षमता 1.8 टन है जिसमें रूसी क्रोयोजेनिक इंजन संलग्न होते हैं।

पूरे यान की लंबाई 49.1 मीटर और भार 401 टन है। यह त्रिचरणीय राकेट है। पहला चरण जलकर यान को 25 प्रतिशत वेग देता है, दूसरा चरण भी 25 प्रतिशत वेग देता है और तीसरा चरण (जिसमें क्रायोजेनिक इंजन संलग्न होता है) जलकर 50 प्रतिशत वेग प्रदान करता है और उपग्रह को 36,000 किमी. की ऊँचाई वाली भू-स्थिर कक्षा में स्थापित कर देता है।

पहले चरण की मुख्य मोटर ठोस प्रणोदक (Hydroxyl Terminated Poly Butadiene - HTPB) संचालित है। इसमें 129 टन प्रणोदक भरा जाता है। प्रथम चरण के साथ ही चार बूस्टर लगाये जाते हैं जो द्रव प्रणोदक (UDMH-Unsymmetrical Di-Methyl Hydrazine + Nitrogen Tetra Oxide) संचालित हैं। प्रत्येक बूस्टर मोटर 40 टन प्रणोदक ले जा सकती है।

दूसरे चरण में 37.50 टन प्रणोदक प्रयुक्त किया जाता है और सबसे ऊपरी चरण में रूसी क्रायोजेनिक इंजन प्रयुक्त होता है जो 12.50 टन द्रव हाइड्रोजन और आक्सीजन ले जाता है। तीसरा चरण जलकर यान को सर्वाधिक शक्ति (थ्रस्ट) प्रदान करता है और उसके ऊपर सवार संचार उपग्रह को भू-स्थिर अंतरण कक्ष (GTO-Geostationary Transfer Orbit) में डाल देता है। आगे चलकर उपग्रह का क्रमशः कक्षोन्नयन किया जाता है।

रूस से हुए समझौते के तहत हमें 7 क्रायोजेनिक इंजन मिले हैं जिनमें से हमने 6 का प्रयोग कर लिया है। इनमें मात्र तीन उड़ानों में ही सफलताएँ मिली हैं, बाकी फ्लॉप शो रहे। अतः अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भरता के लिए हमें 'क्रायोजेनिक टेक्नोलॉजी' में महारत हासिल करनी ही होगी अन्यथा हमें 'इन्सैट' श्रृंखला के उपग्रहों के प्रक्षेपण हेतु विदेशी एजेंसियों पर निर्भर रहना होगा जैसा कि विगत में हमने भारी भरकम राशि चुकाकर अमेरिका और यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी से अपने 'इन्सैट' श्रेणी की उपग्रहों का प्रमोचन किया।

भारत ने अब अपना क्रायोजेनिक इंजन बना लिया है। उसे जीएसएलवी (मार्क-II) में इस्तेमाल भी किया गया जिसकी भार वहन क्षमता 2.5 टन है। इसी परिप्रेक्ष्य में जीएसएलवी की अब तक की अंतर्यात्रा पर एक विहंगावलोकन –

पहली उड़ान - GSLV-D1

पहली बार किसी भारतीय राकेट में क्रायोजेनिक इंजन (रूसी) का इस्तेमाल किया गया। 28 मार्च, 2001 को जीएसएलवी (GSLV-D1) की पहली उड़ान आयोजित थी। प्रक्षेपण से एक सेकंड पूर्व अचानक बाधा उत्पन्न हो गयी। कम्प्यूटर ने इसके प्रथम चरण के साथ संलग्न, द्रव प्रणोदक संचालित चारों बूस्टरों (Strap on Motors) के प्रज्वलन का जैसे ही आदेश दिया, उसकी एक मोटर में आग लग गई (उसके गैस जनरेटर में खराबी के कारण पर्याप्त दाब उत्पन्न नहीं हो सका और उक्त मोटर का 'विकास' इंजन पर्याप्त 95 प्रतिशत उछाल नहीं ले सका), समुचित दबाव न बन पाना स्वचालित सुरक्षा प्रणाली ने अविलंब भांप लिया और उसने सभी चारों बूस्टर मोटरों का प्रज्वलन रोककर प्रक्षेपण को स्वतः स्थगित कर दिया और इस प्रकार भारी क्षति होते-होते रुक गई।

जीएसएलवी की पूरी परियोजना को 150 संस्थानों में कार्यरत हजारों कार्मिकों ने 10 वर्षों के कठोर श्रम के उपरांत अंजाम दिया था और इसमें 1500 करोड़ रुपये की अंश पूँजी निवेशित थी। लेकिन यदि यह उड़ान ध्रुवीय राकेट (PSLV) की होती तो सब कुछ विनष्ट हो जाता। कारण यह है कि पीएसएलवी के प्रथम चरण की मुख्य मोटर और उससे संलग्न 6 बूस्टर भी ठोस प्रणोदक संचालित हैं। इसमें पहले मुख्य मोटर प्रज्वलित होती है और फिर बूस्टरों का प्रज्वलन होता है। ठोस प्रणादकों की विशेषता है कि इनका प्रज्वलन बीच में रोका नहीं जा सकता है। एक बार जलना आरंभ करने बाद वे समस्त प्रणोदक को जलाकर ही बुझाते हैं। यदि प्रक्षेपण में कोई त्रुटि रह जाय तो पूरी की पूरी प्रणाली जलकर खाक हो सकती है।

इसके विपरीत जीएसएलवी एक उन्नत प्रणाली है। पहले इसके प्रथम चरण के साथ संलग्न चारों बूस्टर (द्रव प्रणोदक संचालित) जलते हैं, फिर मुख्य मोटर जो ठोस प्रणोदक संचालित है। यदि प्रक्षेपण में जरा सा भी व्यवधान हो तो बूस्टरों का प्रज्वलन रोका जा सकता है क्योंकि ये द्रव प्रणोदक आधृत होते हैं।

बहरहाल, इसरो के वैज्ञानिकों ने अपनी क्षमता का परिचय देते हुए उक्त तकनीकी त्रुटि का परिष्कार कर लिया और 18 अप्रैल, 2001 को इसकी त्रुटिहीन उड़ान आयोजित हुई।

श्री हरिकोटा से 3:43 बजे राकेट ने उड़ान भरी और 17 मिनट बाद दूरसंचार उपग्रह 'जीसैट-1' को उसकी कक्षा में डाल दिया। लेकिन 10 किग्रा. ईंधन की कमी के कारण उपग्रह को वांछित कक्षा में पहुँचाया नहीं जा सका। उपग्रह वांछित कक्षा में प्रायः 1900 किमी. नीचे (Drifit orbit) रह गया। अतः भू-समकालिक गति (24 घंटे) की बजाय मात्र 23 घंटे में ही पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा और हासन (कर्नाटक) स्थित मुख्य नियंत्रण सुविधा (Master Control Facility - MCF) की दृष्टि से ओझल हो गया और इस प्रकार उपग्रह की परिणति हमारे लिए आघात ही थी।

इस बारे में विशेषज्ञ कहते हैं कि रूस ने हमें जिस गुणवत्ता का क्रायोजेनिक इंजन देने का अनुबंध किया था, उसे दिया ही नहीं। अपितु जिन इंजनों की उसने हमें आपूर्ति की, वे घटिया स्तर के थे, यान की विफलता का यही कारण था।

हम जीएसएलवी के तीसरे और सबसे ऊपरी चरण में जिन रूसी क्रायोजेनिक इंजनों का इस्तेमाल कर रहे हैं, उनका निष्पादन बहुत अच्छा नहीं रहा है। ये जीएसएलवी यान मार्क-1 श्रेणी के हैं जिनकी भार वहन क्षमता (Payload Capacity) मात्र 1.8 टन है। व्यावसायिक दृष्टि से ऐसे यानों का कोई विशेष महत्व नहीं है, फिर भी ऐसे लघु प्रयासों से ही आगे और उन्नत मार्क-II श्रेणी के यान निर्मित किये जा सके।

दूसरी उड़ान - GSLV-D2

जीएसएलवी की दूसरी उड़ान (मिशन GSLV-D2) 8 मई, 2003 को सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र, श्रीहरिकोटा से आयोजित की गई जिसमें इसने सफलतापूर्वक भारत के दूरसंचार उपग्रह 'जी सैट-II' को 36,000 किमी. की ऊँचाई वाली भू-स्थिर कक्षा में स्थापित कर दिया।

'जी सैट- II' (Geostationary Satellite) इस शृंखला का दूसरा उपग्रह है। जीएसएलवी की यह उड़ान अपनी पूर्ववर्ती उड़ान से काफी समुन्नत थी। 'जी सैट-1' का भार 1540 किग्रा. था जब कि 'जी सैट-II' का भार 1800 किग्रा. है। इस प्रकार इसरो ने अपनी प्रक्षेपण क्षमता में 30 प्रतिशत की अभिवृद्धि अर्जित की।

तीसरी उड़ान GSLV-FO1

20 सितंबर, 2004 को जीएसएलवी की तीसरी उड़ान (मिशन GSLV - FO1 - First Operational Flight) में राकेट ने भारत के

प्रथम शैक्षणिक उपग्रह-एजुसैट (EDUSAT-Educational Satellite) को उड़ाने भरने के 17 मिनट बाद भू-स्थिर कक्षा में स्थापित कर दिया।

उपग्रह का भार 1950 किग्रा. है। यह 'इसरो' द्वारा स्थापित अब तक का सबसे बड़ा उपग्रह है जो पूर्णतः शैक्षिक सेवाओं को समर्पित है। उपग्रह की कार्यकारी अवधि 7 वर्ष आंकलित की गई है। यह जीएसएलवी की प्रथम परिचालनात्मक उड़ान (Operational Flight) है जबकि 18 अप्रैल, 2001 और 8 मई, 2003 की उड़ानें विकासात्मक उड़ानें (Development Flights) थीं जिसमें जी सैट-1 और जीसैट-II नामक संचार उपग्रहों को प्रक्षेपित किया गया था।

एजुसैट कमोबेश 'जीसैट- II' का ही समरूप है, अतः यह तकनीकी रूप से 'जीसैट-III' ही है लेकिन शैक्षिक सेवाओं को समर्पित होने के कारण इसका लोकप्रिय नाम 'एजुसैट' है।

एजुसैट ने देश में सुदूर शिक्षा (Distance Education) और उच्च शिक्षा की दिशा में क्रांतिकारी भूमिका का निर्वहन किया है। प्रकारांतर से हमारे घर ही क्लासरूमों में परिवर्तित हो चुके हैं। टी.वी. स्टूडियो में बैठे अध्यापक देश के विभिन्न अंचलों में स्थित स्कूलों/कालेजों के हजारों छात्रों को संबोधित कर रहे हैं। इसके लिए उन शैक्षिक संस्थानों को उक्त प्रोग्राम प्राप्त करने के लिए मात्र एक टर्मिनल की जरूरत है। टी.वी. और संचार क्रांति के बाद अब शैक्षिक क्रांति की बारी आ चुकी है जिसे एजुसैट ने साकार किया है।

चौथी उड़ान - GSLV-FO2

जीएसएलवी राकेट की चौथी उड़ान (मिशन GSLV-FO2) दुर्भाग्यपूर्ण रही। 10 जुलाई, 2006 को सायं 5:38 बजे राकेट ने सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र (SDSC), श्री हरिकोटा से उड़ान भरी लेकिन टेक ऑफ के 60 सेकंड बाद राकेट के साथ इस पर सवार उपग्रह 'इन्सैट-4C' भी नष्ट हो गया।

2180 किग्रा. वजनी उपग्रह के निर्माण पर 96 करोड़ रुपये और राकेट के निर्माण पर 150 करोड़ रुपये लागत आई थी। इस यान की विफलता का कारण यह था कि इसके प्रथम चरण के एक बूस्टर में उड़ान के 0.2 सेकंड बाद ही अचानक दाब निर्मित नहीं हो पाया।

मात्र तीन बूस्टरों से प्रक्षेपण यान का नियंत्रण असंभव था और इसलिए यान अपने निर्धारित लक्ष्य से भटक गया और आग के शोलों में परिवर्तित होकर बंगाल की खाड़ी में जा समाया।

पाँचवी उड़ान - GSLV-FO4

यद्यपि जीएसएलवी का चौथा प्रक्षेपण 'इसरो' के लिए एक आघात अवश्य था लेकिन शीघ्र ही 'इसरो' के वैज्ञानिकों ने अपनी तकनीकी दक्षता का परिचय देते हुए इसका निराकरण भी कर दिया।

2 सितंबर, 2007 को हुई जीएसएलवी की पाँचवी उड़ान (मिशन GSLV-FO4) पूर्णतः त्रुटिहीन थी। श्रीहरिकोटा से इसकी उड़ान सायं 4:21 बजे आयोजित थी लेकिन कुछ तकनीकी त्रुटियों के चलते यह एक घंटा 50 मिनट विलंब से सम्पन्न हो सकी।

राकेट ने 6:21 बजे उड़ान भरी और प्रायः 17 मिनट बाद अत्याधुनिक दूरसंचार उपग्रह 'इन्सैट-4CR' को भू-स्थिर अंतरण कक्ष (GTO) में सफलतापूर्वक स्थापित कर दिया। 2130 किग्रा. वजनी इस उपग्रह में उच्च क्षमता वाले 12 के.यू. बैंड के प्रषानुकर (Transponders) संलग्न हैं। उपग्रह की कार्यकारी अवधि 10 वर्ष आंकलित की गई है।

आशा की जानी चाहिए की इससे डी.टी.एच. सेवाओं में अभिवृद्धि होगी और सीधे उपग्रह से सूचनाओं का संकलन किया जा सकेगा। उपग्रह कुशलतापूर्वक राष्ट्र को अपनी सेवाएँ मुहैया करा रहा है।

छठीं उड़ान-GSLV-D3: पहली बार स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन का इस्तेमाल

1991 में रूसी अंतरिक्ष संगठन 'ग्लाव कास्मास' और 'इसरो' के बीच क्रायोजेनिक इंजन और उसके तकनीकी ज्ञान (Technical knowhow) के हस्तांतरण का समझौता हुआ था। तब रूसी महासंघ विघटन के कगार पर था लेकिन अमेरिकी दबाव में उसने पहले के समझौते का अनुपालन करने से इंकार कर दिया (अमेरिका ने ग्लाव कास्मास और इसरो दोनों को दो वर्षों के लिए ब्लैक लिस्ट कर दिया था) लेकिन चूँकि अनुबंध पत्र पर हस्ताक्षर हो चुके थे, अतः तत्कालीन रूसी राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने बीच का रास्ता निकाला। रूस ने तकनीकी ज्ञान के हस्तांतरण से मना कर दिया लेकिन क्रायोजेनिक इंजनों की आपूर्ति की हामी भरी और साथ ही एक और अतिरिक्त इंजन की आपूर्ति (कुल 7 इंजन) का वायदा करके भारत के साथ अपने संबंधों में कटुता नहीं आने दी।

प्रायः उसी समय (1992) भारत ने स्वदेशी क्रायोजेनिक बनाने की प्रक्रिया आरंभ कर दी। द्रव प्रणोदन प्रणाली केन्द्र (Liquid Propulsion System Centre, LPSC), महेन्द्रगिरी (तमिलनाडु) विगत 18 वर्षों से इस दिशा में सचेष्ट था और अब उसके वास्तविक परीक्षण की बेला आ गयी।

हमने अपने जीएसएलवी राकेट के ऊपरी (तीसरे) खंड में जिन रूसी क्रायोजेनिक इंजनों का इस्तेमाल किया है, वे 12.50 टन प्रणोदक ले जाने में सक्षम हैं और 750 सेकंड तक जलकर 7.5 टन का ठेल (Thrust) प्रदान करते हैं। रूसी क्रायोजेनिक इंजन संलग्न जीएसएलवी की पाँच उड़ानें हो चुकी हैं जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

भारत ने जो अपना स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन बनाया है, वह 720 सेकंड तक जलकर 7.5 टन ठेल प्रदान करने में सक्षम है, यह 15 नवंबर, 2007 परीक्षण से सिद्ध हो चुका है। अपने राकेटों में क्रायोजेनिक इंजन संलग्न करने की क्षमता अभी तक अमेरिका, रूस, यूरोपीय एजेंसी, चीन और जापान ने अर्जित की है। इस प्रकार भारत क्रायोजेनिक इंजन बनाने वाला छठाँ राट्र बन तो गया है लेकिन इसकी प्रौद्योगिकी अभी परिपक्व नहीं है जैसा कि जीएसएलवी की छठीं उड़ान में मिशन की विफलता से उजागर हुआ।

जीएसएलवी (मार्क-II) की छठीं उड़ान (GSLV-D3) 15 अप्रैल, 2010 को सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र, श्रीहरिकोटा से आयोजित की गई जिसमें पहली बार इसके सबसे ऊपरी (तीसरे) चरण में स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन संलग्न था और उसके ऊपर हमारा दूरसंचार उपग्रह 'जीसैट-4' सवार था। 29 घंटों की उल्टी गिनती के बाद सायं 4:27 बजे यान ने उड़ान भरी। पहले और दूसरे खंडों ने सही-सलामत कार्य किया

लेकिन तीसरे खंड में संलग्न क्रायोजेनिक इंजन के प्रज्वलन को लेकर कुछ गतिरोध उत्पन्न हुआ। यदि यह चरण ठीक-ठाक काम करता तो क्रायोजेनिक इंजन 720 सेकंड तक जलकर 'जीसैट-4' को 36000 किमी. की ऊँचाई वाली भू-स्थिर कक्षा में स्थापित कर देता और भारत जीएसएलवी तकनीक वाले 5 देशों के विशिष्ट क्लब में शामिल हो जाता। लेकिन नहीं, क्रायोजेनिक चरण में तकनीकी त्रुटियों के कारण मिशन फ्लाप हो गया और हमारी आशाओं पर तुषारापात हो गया।

वास्तव में प्रक्षेपण के 293 सेकंड (दूसरे खंड के प्रज्वलन) तक राकेट की दिशा और पथ एकदम ठीक था और इसी के बाद उसकी दिशा भटक गई। क्रायोजेनिक चारण का प्रज्वलन 304.9 सेकंड पर आरंभ होना था जो अगले 720 सेकंड तक जलकर इतना वेग प्रदान करता जिससे कि उपग्रह 'जीसैट-4' की भूस्थिर अंतरण कक्ष में स्थापना हो जाती लेकिन हुआ ठीक विपरीत और मिशन विफल हो गया। 505 सेकंड के बाद तो इसने आँकड़े भी प्रेषित करना बंद कर दिया। अपने पथ से विचलित होते ही राकेट 2200 किलोग्राम वजनी उपग्रह जीसैट-4 के साथ बंगाल की खाड़ी में जा समाया। प्रायः 330 करोड़ रुपये के मिशन की विफलता 'इसरो' के लिए एक तीव्र आघात से कम न थी।

सातवीं उड़ान - GSLV-FO6

पिछली उड़ान की विफलता से विवश होकर हमें फिर रूसी क्रायोजेनिक इंजन का सहारा लेना पड़ा, मगर अफसोस जीएसएलवी की सातवीं उड़ान में हमें विफलता ही हाथ लगी।

यद्यपि यह उड़ान 20 दिसंबर, 2010 को होनी थी लेकिन ऐन वक्त पर ज्ञात हुआ कि क्रायोजेनिक चरण में एक वाल्व से हीलियम गैस का रिसाव हो रहा था, इसलिए उड़ान को स्थगित करना पड़ा चार दिनों की खासी मशक्कत के बाद हीलियम के रिसाव को नियंत्रण की सीमा तक ला पाने में 'इसरो' ने सफलता प्राप्त की। इसके लिए रूसी इंजीनियरों से भी विमर्श किया गया और उन्होंने यथोचित मार्गदर्शन किया।

जीएसएलवी की यह उड़ान अंततोगत्वा 25 दिसंबर, 2010 को श्रीहरिकोटा से सायं 4:04 बजे आयोजित की गई। इसके प्रथम चरण के साथ संलग्न चारों बूस्टरों (द्रव प्रणोदक संचालित) में एकदम ठीक समय पर जैसे ही प्रज्वलन आंरभ हुआ, यान ने आकाश में ऊपर की ओर उड़ान भरी। बंगाल की खाड़ी के ऊपर 2.5 किमी. की ऊँचाई तक यान ठीक-ठाक गया, लेकिन लिफ्ट ऑफ के 47 सेकंड बाद यान पर से नियंत्रण समाप्त हो गया। यान हिचकोले खाने लगा और आग के शोलों में तब्दील हो गया। राकेट के साथ इस पर सवार हमारा दूरसंचार उपग्रह 'जीसैट-5पी' भी विनष्ट हो गया। मिशन की विफलता 'इसरो' के लिए एक तीव्र आघाता था और वह भी एक ही वर्ष में दूसरी बार।

आठवीं उड़ान - GSLV-D5 : अंततः दूर हुआ गतिरोध

विवश होकर हमें फिर 'एरियन' का अवलंब लेना पड़ा। 21 मई, 2011 को फ्रेंच गुयाना, कौरू से एरियन-5 राकेट (फ्रांस) ने भारत के नवीनतम दूरसंचार उपग्रह 'जीसैट-8' को सफलतापूर्वक उसकी कक्षा में स्थापित कर दिया।

जब तक हमारा जीएसएलवी यान पूरी तरह सारे मापदंडों पर खरा नहीं उतरता है, तब तक हमें विदेशी एजेंसियों पर अपने इन्सैट/जीसैट उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए निर्भर रहना पड़ेगा।

'इसरो' के लिए जीएसएलवी यान की तकनीकी परिपक्वता सबसे बड़ी चुनौती थी और यही उसका आसन्न संकट भी था। हर्ष का प्रकरण है कि अब 'इसरो' ने यह बाधा पार कर ली है और अब भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है। अब हमें अपने संचार उपग्रहों की स्थापना के लिए फ्रेंच राकेट 'एरियन' पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा।

स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन संलग्न मिशन 'जीएसएलवी-डी 5' की उड़ान की आयोजना हमने पहले 19 अगस्त, 2013 को की थी, लेकिन लिफ्ट ऑफ के 75 मिनट पूर्व ज्ञात हुआ कि इसके दूसरे चरण के प्रणोद टैंक से द्रव ईंधन का रिसाव होने लगा जो राकेट के प्रथम चरण और उससे संलग्न चारों बूस्टरों को गीला कर चुका था, फलस्वरूप उड़ान स्थगित कर दी गई।

विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि तकनीकी बाधा राकेट के दूसरे चरण के प्रणोद टैंक को लेकर उत्पन्न हुई थी जो एल्युमीनियम की मिश्रधातु 'एफ्नार 7020' से निर्मित थी जिसमें ऐन वक्त पर रिसाव आरंभ हो गया और द्रव ईंधन यान पर बहने लगा। फिर 'इसरो' के वैज्ञानिकों ने एल्युमीनियम की दूसरी मिश्रधातु 'एए 2219' प्रयुक्त की और गतिरोध समाप्त हो गया। इस बार राकेट के पहले और दूसरे चरणों को बदल दिया गया और पहले चरण के साथ संलग्न बूस्टरों की मरम्मत की गई क्योंकि वे गीले हो चुके थे। इनमें इस बार नए इलेक्ट्रॉनिक कलपुर्जे लगाए गए और लीजिए 'इसरो' ने खासी मशक्कत के बाद छू लिया बुलंदियों का एक नया आसमान।

सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र, श्रीहरिकोटा ने 'जीएसएलवी-डी5' ने 5 जनवरी, 2014 को सायं 4:18 बजे उड़ान (आठवीं) भरी। लिफ्ट ऑफ के 5 मिनट बाद स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन में प्रज्वलन आरंभ हुआ और इसने 720 सेकंड तक जलकर 1982 किग्रा. वजनी भारत के संचार उपग्रह 'जीसैट-14' को भू-स्थिर कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित कर दिया।

'इसरो' के इंजीनियरों की मेहनत रंग लाई और इस प्रकार 'इसरो' की चुनौतियों और आशंकाओं पर विराम लग गया। अब भारत अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में पूर्णतः आत्मनिर्भर हो गया है। इस सफल प्रक्षेपण से अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत का गौरववर्धन हुआ है।

उपग्रह 'जीसैट-14' में संलग्न सी बैंड के 12 प्रेषानुकरों का इस्तेमाल टीवी प्रसारण, दूरसंचार, दूर चिकित्सा और सुदूर शिक्षा के नाना क्षेत्रों में किया जाएगा। उपग्रह की कार्यकारी अवधि 12 वर्ष है।

जीएसएलवी की सद्यः सफल उड़ान से भारत का 'क्रायोजेनिक क्लब' में प्रवेश हो गया है जो 'इसरो' की गौरवमयी उपलब्धि है। हमें उम्मीद है कि दो-चार और उड़ानों के बाद हमारी क्रायोजेनिक प्रौद्योगिकी पूर्णतः परिपक्व हो जाएगी और अपने संचार उपग्रहों के प्रक्षेपण हेतु हमारी विदेशी निर्भरता समाप्त हो जाएगी। इसके भावी मॉडल (मार्क-III) की भार वहन क्षमता 4 टन होगी, तब निश्चय ही अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के व्यवसाय में भारत की भागीदारी और बढ़ जाएगी।

GSLV - मार्क III की पहली सफल उड़ान : क्रयूमॉड्यूल की एक सकुशल वापसी

हमारे ध्रुवीय राकेट (पीएसएलवी-सी7) ने 10 जनवरी, 2007 को

अपनी दसवीं उड़ान में एक साथ चार उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण किया था। इसमें दो भारतीय उपग्रहों 'कार्टोसैट-II' और 'एसआरई-I' के अतिरिक्त इंडोनेशिया और टेक्निकल यूनीवर्सिटी ऑफ बर्लिन द्वारा संयुक्त रूप से निर्मित 'लापानसैट' तथा अर्जेंटीना का अघु उपग्रह 'पेहुनसैट' था।

इस उड़ान की विशिष्टता इस बात में नहीं थी कि इसने एक साथ चार उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण किया क्योंकि इससे पहले भी हम ऐसा कई बार कर चुके हैं। इस मिशन का लक्ष्य हमारे उपग्रह 'एसआरई' (स्पेस कैप्सूल रिकवरी एक्सपेरिमेंट) को अंतरिक्ष में भेजना और उसे कुछ अंतराल के बाद समुद्र में सुरक्षित ढंग से उतार लेना था। यह परीक्षण पूरी तरह से सफल अभियान सिद्ध हुआ। भावी मानवीय अंतरिक्ष अभियानों की ओर यह भार का पहला कदम था। बारह दिनों तक अपनी कक्षा में चक्कर लगाने के बाद भू-नियंत्रण से प्राप्त रेडियो कमान से उपग्रह में लगे बूस्टरों को दागा गया जिससे उसका वेग कम हो गया और वह पृथ्वी के वायुमंडल में प्रविष्ट कर गया। जब यह वायुमंडल में प्रविष्ट कर गया तो इसकी गति को और कम करने के लिए पृथ्वी से 5 किमी. की ऊँचाई पर इसके पैराशूट खोल दिए गए और इस प्रकार यह बंगाल की खाड़ी में सुरक्षित ढंग से पूर्व निर्धारित क्षेत्र में गिर गया जहाँ से तट रक्षकों ने इसे खोज निकाला। वस्तुतः यह पुनर्प्रयोज्य यान था जिसका प्रयोग बार-बार किया जा सकता है। इस प्रयोग की सफलता का अर्थ इस बात में है कि भविष्य में बारंबार इस्तेमाल किए जाने वाले अंतरिक्ष यान विकसित किए जा सकेंगे। इसका लाभ यह है कि इससे हमारा अंतरिक्ष बजट काफी कम हो जाएगा और यह भी कि भविष्य में हम मानवीय अंतरिक्ष अभियानों को संचालित कर सकेंगे अर्थात् अपने अंतरिक्ष में भेजकर उन्हें सकुशल वापस उतार लेंगे।

कुछ-कुछ इसी तरह का प्रयोग 'इसरो' ने 18 दिसंबर, 2014 को कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया, मगर इस बार हमने भारत के सर्वाधिक शक्तिशाली राकेट 'जीएसएलवी-III' का इस्तेमाल किया। यह उड़ान मात्र परीक्षण उड़ान थी, वास्तविक नहीं अर्थात् इसमें संलग्न क्रायोजेनिक इंजन को प्रज्वलित ही नहीं करना था। हमारा 'जीएसएलवी मार्क-III' अपने साथ 3775 किग्रा. वजनी क्रयूमाड्यूल ले गया था जिसमें बैठाकर अंतरिक्ष यात्री आवागमन करते हैं लेकिन इस माड्यूल में कोई यात्री नहीं था। यह मात्र तकनीकी प्रदर्शक था जिसका उद्देश्य यह देखना था कि हम अपने इस स्पेस रिकवरी कैप्सूल को अंतरिक्ष में कुछ ऊँचाई तक भेजकर उसे पुनः धरती पर प्राप्त कर सकते हैं या नहीं? हमारे इस स्पेस कैप्सूल का नाम 'केयर' (क्रयूमाड्यूल एटमास्फियरिक रि-इंट्री एक्सपेरिमेंट) है।

18 दिसंबर, 2014 को हमारे जीएसएलवी राकेट ने सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र, श्रीहरिकोटा से प्रातः ठीक 9:30 बजे उड़ान भरी। लिफ्ट ऑफ के साढ़े पाँच मिनट बाद राकेट ने हमारे कैप्सूल को 126 किमी. की ऊँचाई पर पहुँचा दिया और इसके बाद इसने पृथ्वी के वायुमंडल में पुनर्प्रवेश आरंभ किया। लिफ्ट ऑफ के 20 मिनट 43 सेकंड बाद यह श्रीहरिकोटा से 1600 किमी. दूर अंडमान सागर में गिर गया। पहले इसे एक हेलिकाप्टर ने चिन्हित किया, फिर कोस्ट गार्ड ने नौकाओं से इसे सुरक्षित खींच निकाला और जीएसएलवी III की पहली परीक्षण उड़ान कुशलतापूर्वक सम्पन्न हुई। इस प्रयोग की सफलता से 'इसरो' के वैज्ञानिकों में नवीन आशा का संचार हुआ है। वास्तव में यह प्रयोग हमारे उस सपने का एक हिस्सा है जब हमारा भी कोई अंतरिक्ष यात्री चांद या मंगल का संस्पर्ष कर सकेगा। इस प्रयोग का यही निहितार्थ था।

रही बात 'जीएसएलवी मार्क-III' के विकासात्मक उड़ान की तो उसमें अभी विलंब है। 'मार्क III' अपने साथ 4 टन वजनी 'इंसैट-IV/जीसैट' श्रृंखला के उपग्रहों को ले जा सकता है मगर उसमें अभी देर है क्योंकि हमारे स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन की प्रौद्योगिकी अभी परिपक्व नहीं हुई है।

अब इस प्रयोग की सफलता से आशा बलवती हो गई है कि निकट भविष्य में हम 'जीएसएलवी-मार्क III' का विकास कर सकेंगे जिसकी मदद से साढ़े चार टन से 5 टन वजनी उपग्रहों को सफलतापूर्वक भूस्थिर कक्षा में स्थापित कर सकेंगे और तब हमारी फ्रेंच राकेट एरियन से निर्भरता समाप्त हो जायेगी और भारत भी अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में पूर्णतः आत्मनिर्भर हो जायेगा।

इसरो ने रचा इतिहास, प्रक्षेपित किए 20 उपग्रह

इसरो ने 22 जून 2016 दिन बुधवार को एक दिन में 20 उपग्रह प्रक्षेपित कर इतिहास रच दिया। इसरो की योजना भविष्य में दूसरे देशों के उपग्रह लांच करके विदेशी मुद्रा अर्जित करने की है। इससे वह भविष्य की योजनाओं के लिए संसाधन जुटा सकेगा। इसरों की कोशिश आने वाले दिनों में जीएसएलवी और उसके बाद रियूजेबल लांच व्हीकल के जरिये देश के लिए ही नहीं, बल्कि दुनिया भर के लिए उपग्रह लांच करने वाली अहम एजेंसी बनने की है। इसरो से जुड़े सूत्रों का कहना है कि संगठन को वर्ष 2016-17 में कुल 25 विदेशी उपग्रहों का प्रक्षेपण करना है। इसके लिए समझौते किये जा चुके हैं। पूर्व में छोड़े जा चुके और भविष्य में छोड़े जाने वाले सभी को मिलाकर कुल 57 विदेशी उपग्रह इसरो ने या तो लांच कर दिया है या करने का समझौता कर चुका है। इससे छह सौ करोड़ रुपये की आय हुई है। यह कार्य इसरो सहयोगी एजेंसी अंतरिक्ष कॉर्पोरेशन के जरिये करता है।

ग्रामीण भारत में बायोमास ईंधन का उपयोग - स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

प्रो० मुरारी लाल माथुर*

अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि

भारत जनसंख्या के अनुसार विश्व का चीन के पश्चात, दूसरा सबसे बड़ा देश है, जिसकी 125 करोड़ आबादी विश्व की आबादी की 17.5 प्रतिशत है, किन्तु इसका जमीनी क्षेत्रफल विश्व का मात्र 2.4 प्रतिशत है। भारत ग्रामीण प्रधान देश है, जहाँ 6 लाख 40 हजार गाँव हैं, जिनमें देश की लगभग 68 प्रतिशत आबादी बसती है।

भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात बहुत प्रगति की है, किन्तु यह प्रगति शहरी क्षेत्रों में अधिक और ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत कम हुई। इसका मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा का प्रति व्यक्ति कम उपयोग है (शहरी क्षेत्रों की तुलना में मात्र बीस प्रतिशत)। वर्तमानकाल में आर्थिक उन्नति के लिए ऊर्जा ही मुख्य आधार है।

वाणिज्यिक और गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा स्त्रोत

ऊर्जा का एक वर्गीकरण वाणिज्यिक ऊर्जा (कोयला, पेट्रोलियम तेल, प्राकृतिक गैस, बिजली) और गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा (जलावन लकड़ी, गोबर, कृषि अवशेष) है। विकसित देशों में प्रायः समस्त ऊर्जा उपयोग वाणिज्यिक ऊर्जा का ही होता है (गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा 5 प्रतिशत से भी कम), किन्तु विकासशील देशों में गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा का उपयोग भी महत्वपूर्ण है (भारत में कुल ऊर्जा का लगभग 25 प्रतिशत)।

गैर-वाणिज्यिक ईंधन बायोमास की श्रेणी में आते हैं। बायोमास में पृथ्वी की सतह पर प्रकाश संश्लेषण द्वारा उत्पादित सभी कार्बनिक पदार्थ शामिल हैं। बायोमास ऊर्जा को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है–

1. **ठोस बायोमास :** पेड़ के उपयोग, कृषि फसल के अवशेष तथा पशु और मानव अपशिष्ट (यह यथार्थ में बायोमास नहीं हैं, किन्तु सुविधा के लिए इसी श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है)।
2. **तरल बायो ईंधन :** इथेनोल, वनस्पति तेल, बायो डीजल।
3. **बायोगैस :** कार्बनिक पदार्थ का वायुमुक्त वातावरण में डाइजेशन प्रक्रिया से मीथेन (CH_4) गैस का उत्पादन।

विकासशील देशों में, जिनमें दुनिया की आधी आबादी बसती है, घरेलू ऊर्जा आवश्यकता के लिए बायोमास ईंधन मुख्य स्त्रोत है। विश्व की कुल ऊर्जा उपयोग का 14 प्रतिशत हिस्सा बायोमास से प्राप्त होता है। भारतीय गाँवों में 80 से 85 प्रतिशत ऊर्जा बायोमास ईंधन से मिलती है।

बायोगैस संयंत्र

भारतीय घरों में भोजन पकाने हेतु ईंधन का उपयोग

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारतीय घरों में कुकिंग के लिए ईंधन का उपयोग सारिणी 1 में दिया गया है।

भारत में कुल घरेलू ऊर्जा की खपत 13.5 करोड़ टन (135 मिलियन टन) तेल तुल्य (million ton of oil equivalent, MTOE) है। सारिणी 1 दर्शाती है कि ग्रामीण घरों में कुकिंग हेतु लगभग 85

*पूर्व कुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय, राजस्थान; आवास-C/o श्रीमती (डा0) बेला माथुर, 803, ऊर्जा विहार, सेक्टर 45, फरीदाबाद-121 010 (हरियाणा).

प्रतिशत ऊर्जा जलावनी लकड़ी, कृषि अवशेष और गोबर के उपलों से मिलती है।

सारणी 1 : भारतीय घरों में कुकिंग ईंधन का उपयोग, प्रतिशत में, सन् 2011

ईंधन	ग्रामीण घर	शहरी घर	कुल घर
(A) बायोमास ईंधन			
1. जलावनी लकड़ी	62.5	20.1	49.0
2. कृषि फसल अवशेष	12.3	1.4	8.9
3. गोबर के उपले	10.9	1.7	7.9
4. बायोगैस	0.4	0.4	0.4
(B) जीवाश्म ईंधन			
1.एलपीजी / पीएनजी LPG/PNG	11.4	65.0	28.5
2. केरोसीन तेल	0.7	7.5	2.9
3. कोयला	0.8	2.9	1.4
4. अन्य	0.6	0.2	0.5

बायोमास ईंधन की उपलब्धता, खपत और गुणधर्म - LPG से तुलना

1. जलावनी लकड़ी : घरेलू ईंधन के रूप में जलावनी लकड़ी की वार्षिक खपत लगभग 18 करोड़ टन (180 मिलियन टन) है। लकड़ी की केलोरिफिक वैल्यू 4700 kcal/kg है। लकड़ी के सामान्य चूल्हे की दहन दक्षता करीब 10 से 15 प्रतिशत है।

जलावनी लकड़ी संचालित मिट्टी का चूल्हा

2. कृषि फसल अवशेष : कृषि फसल अवशेष की उपलब्धता लगभग 35 करोड़ टन (350 मिलियन टन) प्रतिवर्ष है। इसकी केलोरिफिक वैल्यू लगभग 3500 kcal/kg है। इसके चूल्हे की दहन दक्षता 10 से 15 प्रतिशत है।

3. गोबर के उपले : भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसमें विश्व की 15 प्रतिशत गायें (20 करोड़) और 54 प्रतिशत भैंसें (8.4 करोड़) हैं। गाय से 10 kg और भैंस से 15 kg गोबर प्रतिदिन प्राप्त होता है। भारत में कुकिंग ईंधन हेतु 14.1 करोड़ टन (141 मिलियन टन) गोबर का प्रतिवर्ष उपयोग होता है (गाँवों में 133 मिलियन टन और शहरों में 8 मिलियन टन)। गोबर उपले की केलोरिफिक वैल्यू लगभग 2090 kcal/kg है। इसके चूल्हे की दहन दक्षता 10 प्रतिशत के करीब है।

सारिणी 2 में विभिन्न घरेलू ईंधनों के गुणधर्मों की तुलना की गई है। सारिणी 3 में एक किलोग्राम LPG तुल्य अन्य ईंधनों का वजन दिया गया है।

सारणी 2 : विभिन्न घरेलू ईंधनों की तुलना

ईंधन	केलोरिफिक वैल्यू	दहन दक्षता	उपयोगी ताप
जलावन लकड़ी	4700 kcal/kg	15%	750 kcal/kg
गोबर के उपले	2090 kcal/kg	11%	230 kcal/kg
गोबर गैस	4170 kcal/m^3	60%	2500 kcal/m^3
एलपीजी	11000 kcal/kg	60%	6600 kcal/kg
केरोसीन तेल	9120 kcal/litre	50%	4560 kcal/litre

सारणी 3 : 1 kg एलपीजी तुल्य अन्य ईंधन

	केलोरिफिक वैल्यू के अनुसार	उपयोगी ताप के अनुसार
1 kg एलपीजी बराबर	2.3 kg जलावनी लकड़ी	9.0 kg जलावनी लकड़ी
	5.3 kg गोबर के उपले	29.0 kg गोबर के उपले
	2.6 m^3 गोबर गैस	2.6 m^3 गोबर गैस
	1.2 लीटर केरोसीन तेल	1.5 लीटर केरोसीन तेल

ठोस बायोमास ईंधन के उपयोग से इन्डोर प्रदूषण

ग्रामीण घरों में कुकिंग के लिए जलावनी लकड़ी और गोबर के उपले जलाने से गंभीर इन्डोर प्रदूषण होता है, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। एक अध्ययन में कुकिंग के लिए ठोस बायोमास ईंधन के उपयोग में कणीय पदार्थ (पार्टीकुलेट मैटर) का स्तर 500 से 2000 mg/m3 पाया गया। 24 घंटे का औसत प्रभाव बायोमास ईंधन में 231+109 mg/m3, जबकि स्वच्छ ईंधन में 82+39 mg/m3। सारिणी 4 में विभिन्न ईंधनों के उपयोग से प्रदूषण तत्वों का स्तर दिया गया है।

इन्डोर प्रदूषण का स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

इन्डोर प्रदूषण आउटडोर प्रदूषण से अधिक सघन हो सकता है, क्योंकि यह बन्द जगह में होता है। इन्डोर प्रदूषण से भारत में प्रतिवर्ष लगभग पाँच लाख व्यक्तियों की मृत्यु होती है। इनमें अधिकतर महिला और बच्चे होते हैं, चूँकि वे ही घर में सबसे अधिक समय तक रहते हैं।

जलावनी लकड़ी से इन्डोर प्रदूषण

ग्रामीण घरों में कुकिंग के लिए जलावनी लकड़ी और गोबर के उपले जलाने से गम्भीर इन्डोर प्रदूषण होता है, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। एक अध्ययन में कुकिंग के लिए ठोस बायोमास ईंधन के उपयोग में कणीय पदार्थ (पार्टीकुलेट मैटर) का स्तर 500 से 2000 mg/m^3 पाया गया। 24 घण्टे का औसर प्रभाव बायोमास ईंधन में 231+109 mg/m^3, जबकि स्वच्छ ईंधन में 82+39mg/m^3। सारिणी 4 में ईंधनों के उपयोग से प्रदूषण तत्वों का स्तर दिया गया है।

सारिणी 4 : इन्डोर वायु में विभिन्न ईंधनों के उपयोग से प्रदूषण (mg/m^3)

प्रदूषक तत्व	लकड़ी	गोबर	कोयला	केरोसिन	एलपीजी
कार्बन मोनोऑक्साइड	156	144	94	108	14
पोलीएरोमैटिक हाइड्रोकार्बन	2.01	3.56	0.55	0.23	0.13
फॉर्माल्डिहाइड	652	670	109	112	68

पार्टीकुलेट मैटर से श्वाँस संक्रमण (अस्थमा आदि) की बीमारियाँ होती हैं। बायोमास ईंधन का धुँआ आँख की केटेरेक्ट बीमारी तथा टी बी की बीमारी के लिए जिम्मेदार है। कार्बन मोनोऑक्साइड से कारबोक्सीहीमोग्लोबिन का स्तर बढ़ जाता है, जो शरीर में ऑक्सीजन के स्तर को कम कर देता है। पोली एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन और फॉर्माल्डिहाइड कैंसरजनक है।

ठोस बायोमास ईंधन जनित इन्डोर प्रदूषण- नियंत्रण के उपाय

1. कुकिंग के लिए ईंधन का चयन, उपलब्धता और आर्थिक सामर्थ्य पर निर्भर करता है। एलपीजी ईंधन सबसे कम प्रदूषण करता है, किन्तु यह भारत की आधी से अधिक (साठ करोड़ से अधिक) जनता की पहुँच के बाहर है।

चूँकि ग्रामीण घरों में ईंधन के लिए 80 से 85 प्रतिशत जलावन लकड़ी और गोबर उपले का उपयोग होता है, इनका उन्नत चूल्हों में दक्षता से उपयोग इनकी खपत की मात्रा और प्रदूषण दोनों को कम करेगा। भारत में अनेक कृषि शोध संस्थानों ने उन्नत चूल्हे डिजाइन किये हैं। उदाहरण के तौर पर महाराणा प्रताप कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर ने ''उदयराज'' नामक उन्नत चूल्हे का डिजाइन विकसित किया है, जिसकी दक्षता 25 प्रतिशत के करीब है जबकि आम चूल्हे की दक्षता 10 से 15 प्रतिशत ही होती है। इस उन्नत चूल्हे के उपयोग से आम चूल्हे की तुलना में प्रतिवर्ष 95 Kg. लकड़ी की बचत होती है। उन्नत चूल्हे का प्रचार, प्रसार इन्डोर प्रदूषण कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इसके अतिरिक्त रसोई में से धुँए निकालने के लिए चिमनी लगाना आवश्यक है। वेन्टीलेशन (संवातन) की भी अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए।

2. यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि ऊर्जा की योजना बनाने में केवल वाणिज्यिक ऊर्जा पर ही विचार किया जाता है और गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा को नजरअंदाज कर दिया जाता है। यह न केवल ऊर्जा परिदृश्य का विकृत चित्र प्रस्तुत करता है, अपितु गैर-वाणिज्यिक ईंधन के कुशल उपयोगों की योजना बनाने के कार्य की उपेक्षा करता है। जलावनी लकड़ी का उपयोग उतना ही करना चाहिए जिससे हमारे वन के क्षेत्र में कोई कमी न आये। कृषि फसल अवशेष का उपयोग कुकिंग में नहीं, तो विद्युत उत्पादन में हो सकता है। प्रश्न गोबर के उपयोग का है जिसकी वार्षिक उपलब्धता 14.1 करोड़ टन (141 मिलियन टन), केलोरिफिक वैल्यू के अनुसार 30 मिलियन टन केरोसिन तेल के बराबर है और जो गाँवों के लिए ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण संसाधन है।

बायोगैस उत्पादन संयंत्र : गोबर का सबसे बढ़िया वैकल्पिक उपयोग बायोगैस (गोबर गैस) बनाने में है। बायोगैस, एलपीजी के समान, एक स्वच्छ ईंधन है और बायोगैस द्वारा गोबर का उपयोग करने से इस ईंधन की दक्षता 50 प्रतिशत से अधिक बढ़ सकती है। गोबर गैस उत्पादन तकनीक में विश्व में चीन प्रथम और भारत द्वितीय देश रहा है। चीन में 70 लाख से अधिक बायोगैस संयत्र हैं। भारत में सन् 2006-07 तक 40 लाख बायोगैस संयत्र लगाये गये थे, किन्तु एक सर्वेक्षण के अनुसार 80 प्रतिशत संयत्र बन्द हो चुके हैं।

बायोगैस संयत्रों के डिजाइनों में सुधार करके और नवीन उच्च टेक्नोलोजी का उपयोग करके इनको फिर से चालू करने की संभावना तलाश करनी चाहिए। बायोगैस संयत्र से न केवल स्वच्छ ईंधन का उत्पादन होता है, अपितु इनसे आर्गेनिक खाद भी मिलता है, जो रसायनिक खाद की आवश्यकता को कम कर सकता है। इसके अतिरिक्त बायोगैस संयत्र गाँवों में रोजगार को भी बढ़ावा देता है।

तकनीकी से समस्याओं का हल निकालें

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने वैज्ञानिकों से नई तकनीकों के जरिए लोगों की समस्याओं का समाधान ढूँढने का आह्वान किया है। उन्होंने कहा कि तकनीक वही सफल है जो आम लोगों के काम आए। पीएम ने कहा कि घटती जमीन और जल संसाधनों के मद्देनजर वैज्ञानिक कृषि उत्पादन बढ़ाने पर विशेष ध्यान केंद्रित करें।

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) के 75वें स्थापना दिवस समारोह को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा आज कृषि भूमि संकुचित होती जा रही है। जल संसाधन भी सीमित हैं। ऐसे में उत्पादन बढ़ाने की चुनौती है। वैज्ञानिक इसे स्वीकार करें। फसलों की नई किस्में विकसित करें। नई तकनीकों से उत्पादन बढ़ाने की जरूरत है। मोदी ने कहा कि वह हमेशा कहते हैं कि जमीन के हर इंच के साथ फसल का एक गुच्छा हो। प्रधानमंत्री ने कहा कि वैज्ञानिक तकनीक तभी सफल हो सकती है जब वह आम लोगों के काम आए। उससे आम लोगों की समस्याएँ हल हों। वैज्ञानिक अनुसंधान एक बार का काम नहीं है, बल्कि एक सतत प्रक्रिया है और कभी भी यह गेम चेंजर हो सकती है।

सामाजिक भूमिका में विज्ञान और गाँवों के विकास की चुनौती

प्रो० राणा प्रताप सिंह*

विज्ञान की पैदाइश और उसका विकास मनुष्य की पैदाइश और उसके विकास से अलग नहीं है। मनुष्य पशुओं से अलग प्रजाति के रूप में न सिर्फ शारीरिक भिन्नता के कारण पहचाना जाता है, बल्कि उसकी चेतना भी अलग तरह की तथा अधिक विकसित है। यही चेतना उसे पशुता से बचाती है और मानवीय बनाती है। दरअसल मानवीय होने का अर्थ है, अपने स्वयं से बाहर की दुनिया के प्रति संवेदनशील होना। अपने अलावा अन्य लोगों का भी दुख-दर्द समझना और उसे महसूस करना। एक तर्क-संगत, न्यायप्रिय और समदर्शी समाज बनाना। प्रकृति के साथ भी एक टिकाऊ और स्वस्थ रिश्ता बनाना। पशुता से मानवीय चेतना की ओर अनुष्य को ले जाने वाली विकास की प्रक्रियाओं में, मनुष्य के आदि पूर्वजों द्वारा एक बेहतर और अधिक सहूलियत वाला जीवन पाने की छटपटाहट एक मुख्य कारण रही होगी। इसी क्रम में उसकी श्रम और विचार की क्षमता में इजाफा हुआ। बोलने की और भाषा गढ़ने की क्षमता विकसित हुई और वह अन्य पशुओं से अलग चेतनाशील मनुष्य बना।

प्रागैतिहासिक काल में अनुभव और कौशल से सीखे हुए ज्ञान-विज्ञान का इस्तेमाल लोगों ने अपनी व्यावहारिक जरूरतों के लिए तो किया, परन्तु इसका सैद्धान्तिक स्वरूप समाजों के संगठित होने और उसमें विचार-विमर्श करने के लिए अलग से संस्थाएँ बनने से ही संभव हुआ। आधुनिक विज्ञान का दर्शन लगभग चौदहवीं शताब्दी के विमर्श से निकला। ग्रीक विचारकों की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रही। परन्तु, उस काल की स्थापित राज्य और धर्म-सत्ता की संस्थाओं ने इसे आसानी से स्वीकार नहीं किया। धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा स्थापित तत्कालीन 'सत्य' के उलट विज्ञान के विमर्श से निकले सत्य को प्रतिपादित करने के लिए ब्रूनों को जिंदा जला दिया गया। गैलीलियो को सार्वजनिक रूप से प्रताड़ित किया गया। विज्ञान के इतिहास का अध्ययन करें, तो हम देखेंगे कि असंगत, अतार्किक और अन्यायपूर्ण राज्य तथा धर्म-व्यवस्थाओं के दबावों

ग्रामीण परिवेश

को झेलते समाजों ने ब्रूनों, कोपरनिकस, गैलीलियो, न्यूटन, डार्विन जैसे क्रांतिकारी वैज्ञानिक पैदा किए जिन्होंने सामान्य ज्ञान और पुरानी मान्यताओं पर टिके ज्ञान की स्थापनाओं को चुनौती दी। इन वैज्ञानिक सिद्धांतों ने उस दौर के समाज के विकास की दिशा को बहुत गहरे तक प्रभावित किया।

विज्ञान एवं समाज के इतिहास का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि कोपरनिकस, ब्रूनों, गैलीलियो, कैपलर और न्यूटन की स्थापनाओं ने ब्रह्माण्ड और मनुष्य को नियंत्रित करने वाली दुनिया की पारम्परिक समझ पर अनेकों सवाल खड़े कर दिये। भले ही इन नई बातों को सबने तत्काल नहीं स्वीकार किया और राजतंत्र एवं पुरोहिततंत्र ने तो इन नई अवधारणाओं का घोर विरोध किया, परन्तु समाज के बीच से ऐसे अनेक लोग आगे आने लगे जिनकी चेतना को इन नये विचारों ने झकझोर दिया। नये विचारों की पैदाइश ने समाज के पारम्परिक ढ़ाँचे को हिलाना शुरू कर दिया। आधुनिक और वैज्ञानिक समाज के निर्माण की शुरुआत इन्हीं बीजों से हुई। डार्विन, लैमार्क, पाश्चर जैसे यूरोपीय प्रकृति विज्ञानियों की स्थापनाएँ, अमूर्त, अदृश्य ईश्वर की रचना है, विज्ञान और समाज के विकास में बड़ी घटनाएँ थी। इन्होंने मनुष्य की चेतना को गहरे तक प्रभावित किया। अलौकिक, रहस्यमयी शक्तियों से लोगों का भय कम हुआ। भले ही ऐसे लोग समाज में थोड़े थे, नये युग के सूत्रपात के लिए यह एक बड़ा कारण था। इस तरह हम देखते हैं कि आधुनिक विश्व के विकास में विज्ञान की चेतना ने नियामक भूमिका निभायी, वरना, पूरी

*प्रोफेसर, पर्यावरण विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ-226 025.

दुनिया में राजतंत्र और सामन्तवाद की जगह लोकतंत्र कायम नहीं हो पाता। भारत के प्राचीन वैज्ञानिकों, विचारकों एवं श्रमजीवियों के द्वारा भी नये विश्व के लिए बहुत से नये सैद्धान्तिक और व्यवहारिक ज्ञान खोजे गये।

पिछले 50 वर्षों में विज्ञान की खोजों ने जो दिशा पकड़ी है उसने मनुष्य और मशीनों के इस्तेमाल की नई व्याख्याएँ दी हैं। एक तरफ तो विज्ञान ने सत्य के कई नए आयाम उद्घाटित किए हैं, जीवन तथा जगत के अन्तरसंबंधों पर नई रोशनी डाली है तथा एक विश्व-व्यापी दर्शन के तौर पर मनुष्य की सत्ता के केन्द्र में स्थापित हुआ है, तो दूसरी ओर जनता में विज्ञान को लेकर अनेक भ्रांतियाँ विकसित हुई हैं। विज्ञान को इसके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भों से अलग करके देखने की प्रवृति ने इसे प्रकृति का विनाशक, आर्थिक और राजनैतिक सत्ता का हथियार और बाजार का एक उपकरण मात्र बना दिया है। इस तरह की प्रवृत्ति के चलते विज्ञान के दर्शन की सार्वभौमिकता, तार्किकता, सत्य को उद्घाटित करने की खूबी, सर्वजनहिताय भूमिका और विश्व-व्यापी मानसिक, आर्थिक और सामाजिक विकास की क्षमताएँ धूमिल हो रही हैं। विज्ञान के तकनीकीकरण को ही फोकस में रखने का एक नतीजा यह है कि विज्ञान को एक उपयोगी वस्तु मात्र के रूप में देखा जा रहा है और इसका फायदा सिर्फ कुछ व्यक्तियों या समूहों के हाथों में सिमटता जा रहा है। शेष आबादी सिर्फ बाजार बन कर रह गयी है। आम जनता उपभोक्ता है, खरीददार है और एक मनुष्य के रूप में उसकी औकात बहुत कम हुई है। विज्ञान पर नियंत्रण करने वाली ताकतें विज्ञान के तकनीकीकरण को चमत्कृत कर देने वाली चीजों के रूप में पेश कर रही हैं। अपनी बिक्री

कोपरनिकस, गैलीलियो, कैपलर और न्यूटन

बढ़ाने के लिए ये ताकतें पूरी दुनिया को एक खुला बाजार बनाना चाहती हैं, जहाँ कोई वैधानिक रोक-टोक न हो और वे दुनिया भर के लोगों को अपने उत्पादों का खरीददार बना पायें। इसके लिए वे तमाम प्रचार माध्यमों पर नियंत्रण कायम करके लोगों के दिमागों को प्रभावित कर रही हैं। इसके अतिरिक्त वे सत्ता एवं समाज के प्रभावी एवं प्रबुद्ध लोगों को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करके इस अन्ध-उपभोक्तावाद को एक 'लॉजिक' देने की कोशिश भी कर रही हैं। पागलपन के दौरे की तरह पैदा होने वाले इस अंध-उपभोक्तावाद ने पृथ्वी पर लम्बे जैविक एवं सामाजिक विकास से समृद्ध हुई मानवीयता के विशिष्ट गुणों को खतरे में डाल दिया है। कल्पना करिए एक ऐसे अन्ध-उपभोगी समाज की जो अमानवीय हो। जंगली पशुओं की तरह क्रूर और हिंसक हो। इतना मतलबी हो कि सिर्फ अपने लिए जीता हो। विडम्बना यह है कि आधुनिक समय में वह समाज पशुवत् नहीं कहलाना चाहेगा, इसलिए व्यक्तिवाद, उपभोक्तावाद, साम्राज्यवाद और सामंतवाद जैसी पुरातन आदिम प्रवृतियों की नयी व्याख्याएँ गढ़ी जा रही हैं और विभिन्न प्रतिक्रियावादी ताकतों के नये गठजोड़ कायम हो रहे हैं।

विज्ञान का दर्शन आज के समाज में सबसे आसानी से स्वीकार होने वाला दर्शन है। इसलिए इस पूरी कवायद को विज्ञान के साथ जोड़कर किसी अति-आधुनिक दर्शन की तरह पेश किया जा रहा है। यदि इन गैर मानवीय प्रवृत्तियों के विकास और प्रसार को समय रहते रोका नहीं गया, तो जो समाज बनेगा उसकी धुँधली तस्वीर आज भी बनायी जा सकती है। मध्यवर्ग के अधिकांश लोग और वैज्ञानिक शोध एवं शिक्षण से जुड़े लोग भी दुर्भाग्यवश अपने दायित्वों को सामाजिक और नैतिक प्रश्नों से अलग करके देखते हैं। वे सोचते हैं कि उनका काम तो ज्ञान की खोज या ज्ञान का प्रसार है। इनका अच्छा उपयोग होगा या बुरा, इससे उनको मतलब नहीं है। पर यहाँ यह रेखांकित करना उचित रहेगा कि किसी भी ज्ञान को ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भौगोलिक परिप्रेक्ष्य से अलग करके देखने का नजरिया या उसके सार्वभौमिक दर्शन से काटकर देखने की दृष्टि न तो बौद्धिक विचार-प्रक्रिया की कसौटी पर खरी उतरती है, न ही वैज्ञानिक। तो क्या वे एक वैज्ञानिक या विज्ञान-शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका ठीक तरह से निभा रहे हैं? यह एक विचारणीय प्रश्न है। दूसरी बात यह है कि वे जिस मध्यवर्ग के हिस्से हैं, वह खुद और इस तरह वे स्वयं तथा उनका अपना परिवार भी विज्ञान के बाजारीकरण से उपजी त्रासदियों का शिकार हो रहा है। विकसित हो रही निरंकुश बहुराष्ट्रीय बाजार व्यवस्था विश्वभर से छाँट-बीन कर मध्य-वर्ग के थोड़े से लोगों को अपने उत्पादों को बनाने के लिए रोजगार तो दे सकती हैं, कुछ अधिक कुशल लोगों को मोटी तनख्वाह भी दे सकती हैं, परन्तु मध्यवर्ग का बड़ा हिस्सा उसका खरीददार है, उपभोक्ता है। इससे उन्हें कुछ लेते रहना है, देना नहीं है और न सिर्फ निम्नवर्ग के गरीब और साधनहीन लोग, बल्कि मध्यवर्ग के भी अधिकतम लोग इस त्रासदी के शिकार होंगे। आज यह बात वे लोग देख नहीं पा रहे हैं। यह एक बहुत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। इस तरह हम देखते हैं कि आधुनिक और औद्योगिक समाज के बीच अपना भरोसा कायम करने के बावजूद, विज्ञान की सामाजिक भूमिका साफ नहीं हो पा रही।

देश के तमाम हिस्सों में उठ रहे युवा उफान और अराजक आन्दोलनों की जड़ें कहीं न कहीं ग्रामीण सभ्यता और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आ रही विकृतियों में ढूँढी जा सकती हैं। कृषि की हरित क्रांति ने अनाजों के उत्पादन में देश को आत्मनिर्भर बना दिया। इसका स्वागत हुआ। भुखमरी और गरीबी से कुछ निजात मिली, हालाँकि अनाजों के खरीद, भंडारण और वितरण की सरकारी व्यवस्थाओं की तमाम खामियाँ समय-समय पर प्रकाशित होती रही हैं। हरित क्रांति के दौर में बीज, रासायनिक खादों और कीटनाशकों के अंधाधुँध प्रयोग से इनके अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादक तो बहुत फायदे में रहे, परन्तु ये जहरीले रसायन खेत, अनाज, हवा, पानी, मिट्टी और मनुष्य तक को विषाक्त कर दिये हैं। फसलों की जैव विविधता की जगह पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली एक ही तरह की फसलों की भरमार हो रही है। यह देश के आर्थिक और सामाजिक ढाँचे के लिए भी बहुत घातक है। पंजाब हरित क्रांति के पुरोधा राज्य से कैंसर ट्रेनें चलने लगी हैं। जमीन बंजर होने लगी है। पानी, हवा और अनाज के साथ-साथ लोगों के फेफड़े, अंतड़िया और मस्तिष्क सभी विषाक्त हो गये हैं। क्या हम इसी तरह की खेती चाहते हैं? इसी तरह की खाद्य आत्मनिर्भरता चाहते हैं? इसी तरह का विकास चाहते हैं?

कैंसर एक्सप्रेस ट्रेन

काफी दिनों पहले से 'कार्बनिक खेती' की बातें होने लगी हैं, पर यह पद्धति भी कुछ विशिष्ट और संपन्न लोगों और समूहों के द्वारा कुछ विशिष्ट एवं संपन्न लोगों के लिए सुरक्षित खाद्य उत्पादन की व्यवस्था बन गयी है। इसका देशभर में और दुनिया भर में फैले हुए सीमांत, छोटे और मझोले किसानों की बड़ी संख्या के समस्याओं से कोई सरोकार नहीं है। इसलिए उन्होंने इसे अपनाया ही नहीं। न तो उन्हें सरकारी-गैर कृषि तंत्र द्वारा इस तरह के सुरक्षित कृषि-विधियों की वास्तव में जानकारी ही दी गयी, न अपने उत्पादों का सर्टिफिकेशन करने की उनकी क्षमता विकसित की गयी। न ही 'कार्बनिक खेती' से जुड़े कम उपज से होने वाले घाटे को पूरा करने के लिए उत्पादों को महँगा करने के अलावा कोई तरीका तय किया गया। जो कुछ भी हुआ फल यह निकला कि जैविक खेती को अपनाने वाले किसानों का प्रतिशत अब भी नगण्य है। यह जानते हुए भी कि 'कार्बनिक खेती' टिकाऊ और कम खर्चीली है, इसके सुधार और फैलाव को लेकर भारी भरकम शासकीय कृषि तंत्र जो ब्लाक स्तर तक फैला है, कभी भी गम्भीर नहीं दिखा। न तो ऐसी नीतियाँ बनाई गईं और न ही इसके पक्ष में जैसी-तैसी बनी नीतियों का क्रियान्वयन किया गया।

देश में कृषि को नियंत्रित करने वाला तंत्र बीज और कृषि रसायनों का भारी मुनाफे वाले व्यापार का वाहक बन गया है। भारतीय कृषि का सारा विमर्श हरित क्रांति के विषैले रसायनों, परिष्कृत हाइब्रिड बीजों और अधिक ऊर्जा और पानी खपत वाली अधिक लागत से प्राकृतिक दोहन के बल पर अधिक उपज वाली खेती बनाम, 'कार्बनिक सर्टिफिकेशन' तथा कम उपज के बोझ से दबी जैविक खेती के बीच सिमट गया है। हमें कृषि की असफलताओं और समस्याओं के कारणों को ठीक से समझकर, कम लागत एवं अधिक उपज वाली खेती की जरूरत है जो रासायनिक एवं कार्बनिक के विवाद में न पड़कर विशुद्ध वैज्ञानिक और पारिस्थितिकीय आधार पर भारतीय, सामाजिक, आर्थिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से उचित तालमेल बैठाती हुई, कम लागत में टिकाऊँ उपज दे सके और जमीन की उपजाऊँ शक्ति, खेती की जैव विविधता एवं किसान और कृषि मजदूरों के आर्थिक, सामाजिक हितों का ध्यान रख सके। ऐसी कम लागत और उचित उपज वाली पारिस्थितिकीय खेती की तकनीकें काफी हद तक उपलब्ध हैं। इस क्षेत्र में अधिक शोध एवं अध्ययन की जरूरत तो है ही, इससे अधिक सरकारी और गैर-सरकारी कृषि तंत्रों को इसे ईमानदारी और गम्भीरता तथा तन्मयता से आवश्यक जवाबदेही के साथ लागू करने की जरूरत है। यही हमारे गाँवों और कृषि समस्याओं का उचित समाधान होगा।

दरअसल, भारतीय कृषि में इस मुकाम पर कई तरह के नये प्रयोगों की जरूरत है, मसलन छोटे और सीमांत किसानों के लिए स्वःस्फूर्त और छोटे (प्रबंधन की आसानी के लिए) सहकारी समूह (कोआपरेटिव) जो उनके स्वयं के समूह द्वारा संचालित हों। बड़े और मझोले किसान तथा सरकारी सहायता से छोटे और सीमांत किसान भी कुछ क्षेत्रों में पर्यावरण के लिए सुरक्षित तकनीकी खेती जिसमें 'ग्रीन हाउस' की संरक्षित खेती भी शामिल है, अपना सकते हैं। पर्यावरण हितैषी परन्तु कमाऊँ कृषि को सुरक्षित तथा टिकाऊँ भी बनायेगी तथा इसे एक आकर्षक और कमाऊँ पेशा बना युवाओं को कृषि के लिए आकर्षित कर बेरोजगारी का बोझ कम कर सकती है। बहरहाल, देश को और राजतंत्र को लोक के हित में इन तमाम मुद्दों पर गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है।

देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की घटती भागीदारी का कारण इसकी बढ़ती लागत और इसमें लगने वाला श्रम है। जलवायु परिवर्तन तथा प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ोत्तरी ने इसे और अप्रिय व्यवसाय बना दिया है। छोटी जोतो वाले किसान की आय और जोखिम सहने की क्षमता और घटी है। जहाँ पुरानी पीढ़ी बेचैनी और अनिश्चितता से निढाल हो रही है, वहीं नयी पीढ़ी के युवा इस बेचैनी और यौवन की ऊर्जा को आंदोलनों के अन्ध समर्थन में जाया करते रहे हैं। इससे निपटने का सबसे माकूल उपाय गाँवों का टिकाऊँ आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास है। गाँवों को और इन युवाओं को दान, सब्सिडी या कर्जा माफ करने जैसी खतरनाक अफीम से निढ़ाल करने के बजाय इनके लिए कृषि और गाँव आधारित उद्योगों की स्थापना की जरूरत है। गाँवों के लिए आधारभूत संरचनाएँ जैसे पानी, सड़क, ऊर्जा, प्रभावी शिक्षा के संस्थान, आधुनिक

कौशल विकास एवं प्रशिक्षण

चिकित्सा के साधन तथा ज्ञान विज्ञान के विमर्श का ढ़ाँचा खड़ा करना होगा। सरकारी संरचनाएँ और सरकारी कार्यक्रम गैर जवाबदेही और भ्रष्टाचार के शिकार हैं और लोगों की जरूरतों को संतुष्ट नहीं कर पा रहे हैं। गाँवों के विकास कार्यों का नियमित आंकलन एवं प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए जिला और राज्य स्तर पर गैर-सरकारी तथा विश्वसनीय लोगों तथा विशेषज्ञों की टीमें बनायी जानी चाहिए।

गाँवों से जुड़ी योजनाओं के धन को स्तरीय ढाँचागत संस्थानों तथा साधनों को विकसित करने में लगाना चाहिए जिससे गाँव आधारित लघु उद्योगों के लिए कौशल एवं प्रशिक्षण प्राप्त हो सके राज्य और राष्ट्र स्तर की सरकारों को गाँवों के विकास को पूरी गम्भीरता से लेना होगा, तभी इस अराजकता से मुक्ति मिल सकती है।

ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान

अनिल कुमार मिश्र (विज्ञ)*

है विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।
पैदल चलते थे हम पहले, अब उड़ते हैं लेकर यान।।
पढ़ना-लिखना, ना समझी थी, अब है बहुत जरूरी ज्ञान।
शुद्ध-विशुद्ध हवा-पानी का ज्ञान प्रदाता है विज्ञान।।
जैव विविधता संरक्षण ही, धरती पर जीवन कल्यान।
ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।।
ज्ञान नहीं था अग्नि, अन्न का, अब संकल्प है युग निर्माण।
मोबाइल, टी.वी. कम्प्यूटर, अन्तर्जाल एक्सरे ज्ञान।
डी.एन.ए. संरचना खोजी, रोग निदान करे विज्ञान।।
हो कैसी भी जटिल समस्या कर सकते सबका समाधान।
ये विज्ञान हमारी ज्ञान, आओ सभी पढ़े विज्ञान।।
टूटे अंग जोड़ने हों या फिर देने हों अंगदान।
बीमारी का पता लगाना, या कि बचाना किसी कि जान।।
पशु-पक्षी अरु विटप लताएँ, यही धरा के हैं परिधान।
पर्यावरण प्रदूषण परखें खुद अपनाकर ये विज्ञान।
ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।।
मत काटो बेजुबान पेड़ों को, करते नहीं कोई नुकसान।
जहर पिएँ अरु प्राणवायु दें, वन दधीचि दें हड्डी दान।
पेड़ों से ही बनता कागज, जो बनता सबकी पहचान।।
कागज बने या बने दवाई, तय करने वाला विज्ञान।
ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।।
धरती डूब रही सागर में, बढ़ते ताप ने खींचा ध्यान।
जनसंख्या पर नहीं नियंत्रण, ये विज्ञान का है अपमान।।
अगर जितेन्द्रिय बन नहिं सकते, मानों सीख जो दे विज्ञान।
हरित क्रान्ति और श्वेत क्रान्ति ये हैं विज्ञान के दो वरदान।
ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।।
कृषि यंत्रों की धूम मचा दी, बीज नस्ल फसलों की शान।
उन्नत किस्म के अस्त्र-शस्त्र अरु बुलेट प्रूफ सैनिक परिधान।।
प्रक्षेपास्त्र मिसाइल अणुबल देख शत्रु की सूखे जान।
सेटेलाइट, कम्प्यूटर, टी.वी. इन सबका दाता विज्ञान।
ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।।
स्वेदज, अण्डज या उद्भिज सब है पर्यावरण की शान।
जीवों का संरक्षण करने को कहता है प्रिय विज्ञान।।
नव चेतना व आदर्शों का प्रतिबद्धता से हो निर्माण।
एक ओर है धर्म अगर तो दूसरी ओर है ये विज्ञान।
ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।।
धर्म और विज्ञान को प्यारे, एक सिक्का दो पहलू जान।
इक धारणा है दूजा ज्ञान, पर दोनों हैं गुण की खान।।
नदियों के मुँह मोड़-मोड़, सिंचित कर डाला रेगिस्तान।
खोजी प्रवृत्ति प्रदाता को भगवान कहो या प्रिय विज्ञान।
ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।।
दूरभाष के जाल बिछाकर, ग्लोबल कर दिया बखान।
तार-बेतार से मुक्ति दिला दी, वाई-फाई है आन।।
वाई-फाई से हाई फाई, लाई-फाई का विज्ञान।
इसरो, नासा की खुशहाली है मंगल का अभियान।
ये विज्ञान हमारी शान, आओ सभी पढ़ें विज्ञान।।

*राजकीय सर्वोदय बाल विद्यालय, कोण्डली, दिल्ली - 110 091.

भारतीय उपमहाद्वीप में भूकम्पीय अनुमान के कुछ महत्वपूर्ण पहलू

[1]डॉ0 संजय कुमार तिवारी एवं [2]डॉ0 आशुतोष दूबे*

मानव उत्पत्ति एवं विकास प्रक्रिया के शुरुआत से ही भूकम्प मनुष्य के लिए कौतूहल एवं भय का विषय रहा है तथा हर प्रकार से क्षति पहुँचाता है। भूकम्प का प्रभाव वृहद भौगोलिक क्षेत्र पर देखा जाता है। सामान्यतः रिक्टर पैमाने पर 6.0 या उससे अधिक तीव्रता का भूकम्प क्षतिकारी होता है। भारतीय उपमहाद्वीप का उत्तरी क्षेत्र, विशेषकर हिमालय, भूकम्प की दृष्टि से अति संवेदनशील क्षेत्र है। वर्ष 2015 में नेपाल में आये क्रमिक भूकम्प ने वैज्ञानिकों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि इसके विनाशकारी प्रभाव को कैसे कम किया जाय और कैसे इसका पूर्वानुमान किया जाये।

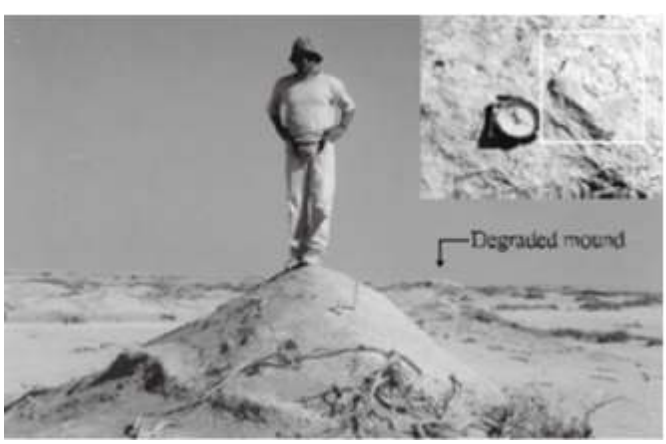

अल्लाह बन्द

भारतीय उपमहाद्वीप की उत्तरी सीमा पश्चिम में हिन्दूकुश से पूर्व में असाम तक फैला वो क्षेत्र है जहाँ भारतीय प्लेट (पृथ्वी की ऊपरी सौ किमी. की मोटी परत) एशिया भू-भाग से टकरा रहा है एवं एक भूकम्पीय क्षेत्र के रूप में पहले से ही परिलक्षित होता रहा है। यह क्षेत्र एल्पाइन बेल्ट जो इण्डोनेशिया से स्पेन तक फैला है, का ही विस्तृत क्षेत्र है।

भारत में आये भूकम्पों का प्रथम अध्ययन सन् 1896 में कछार में आये भयंकर भूकम्प के बाद भू-सर्वेक्षण विभाग के तत्कालीन महानिदेशक डॉ0 टी. ओल्डहम द्वारा किया गया। तत्पश्चात उनके सुपुत्र डॉ0 आर.डी. ओल्डहम ने 12 जून 1897 में आये भूकम्प का काफी गहनता से अध्ययन किया जो आज भी एक उपयोगी दस्तावेज के रूप में शोधकर्ताओं का मार्ग दर्शन करता है। यह वैज्ञानिक अध्ययन का पहला अवसर था जब भूकम्प के समय निकलने वाली मुख्य तीन प्रकार की तरंगों पी, एल एवं एस को भूकम्पमापी यंत्र सिजमोग्राफ पर अंकित किया गया। सन् 1819 में कच्छ के रन में आये भूकम्प का अध्ययन लगभग एक सदी के बाद ओल्डहम के ही द्वारा किया गया। इस भूकम्प का प्रभाव लगभग 10 लाख वर्ग मील में हुआ एवं काफी बड़े क्षेत्र में पृथ्वी के ऊपरी परत तथा सतह पर काफी बड़े पैमाने पर बदलाव आया। सिन्दरी से करीब पाँच मील उत्तर इस भूकम्प के आने से पूर्व जिस स्थान पर एक दबी हुई जमीन (खाई) थी वह एक छोटी पहाड़ी के रूप में परिवर्तित हो गयी। वहाँ के स्थानीय लोगों के द्वारा इसे 'अल्लाह बन्द' कहा जाने लगा।

सन् 1869 से 1969 तक सौ वर्षों में आये भूकम्पों का संकलन भारतीय सर्वेक्षण विभाग के पूर्व महानिदेशक एम.एस. बालासुन्दरम् द्वारा किया गया जो 'भारत में भूकम्पीय अध्ययन' नामक शोध ग्रन्थ में संकलित है एवं उसे भारतीय भू-भौतिकी संघ ने 1970 में प्रकाशित किया।

12 जून 1897 में आये असम के भयंकर भूकम्प के उपरान्त पहली बार भारत में भूकम्पमापी संयत्रों को स्थापित करने का प्रयास शुरू हुआ एवं इंग्लैण्ड के भूकम्प अध्ययन समिति ने भूकम्प के कारण एवं इसके प्रभावों का अध्ययन करने के लिए भारत में भूकम्पमापी यंत्रों को स्थापित करने की संस्तुति दे दी। तत्पश्चात् अलीपुर (कलकत्ता) में दिसम्बर 1898 एवं कोलावा (बम्बई) व मद्रास (जो बाद में कोडाईकनाल स्थानान्तरित किया गया) से प्राप्त आँकड़ों को अध्ययन समिति को भेजा जाने लगा।

04 अप्रैल 1905 को धर्मशाला, पंजाब (वर्तमान में हिमाचल प्रदेश) में आये भूकम्प में लगभग 20 हजार लोगों ने अपनी जान गँवायी। इस भूकम्प के उपरान्त और अधिक यंत्रों को लगाने की आवश्यकता महसूस की गयी एवं जापान के प्रो0 ओमोरी द्वारा निर्मित भूकम्पमापी यंत्रों को पहले शिमला एवं इसके बाद बम्बई, आगरा एवं देहरादून में स्थापित

*[1]एकेडमिक स्टॉफ कालेज (मानव संसाधन विकास केन्द्र); [2]धातुकीय अभियांत्रिकी विभाग, आई.आई.टी., काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

ISSN 2231 - 2455

किया गया। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त 1922-23 में मिलने शाँ नामक यंत्रों को कोलाबा एवं तत्पश्चात् आगरा, कलकत्ता, हैदराबाद एवं कोडाईकनाल में लगाया गया जिसके फलस्वरूप आँकड़ों को प्राप्त करने की क्षमता में काफी वृद्धि हुई एवं भूकम्प से संबंधित सभी प्रकार के आँकड़े हर घन्टे एवं मिनट इन यंत्रों द्वारा अंकित किये जाने लगे।

15 जनवरी सन् 1934 में आये विनाशकारी भूकम्प जिसमें लगभग 10,500 लोगों ने जान गँवायी, के बाद तत्कालीन भारत सरकार द्वारा भूकम्पीय अध्ययन के लिये गठित समिति ने 1936 में अपने अध्ययन को प्रस्तुत किया जिसके फलस्वरूप महानिदेशक, भारतीय सर्वेक्षण विभाग के अधीन भूकम्पीय अध्ययन के लिये एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति हुई। इसके पहले भूकम्पीय अध्ययन भारतीय मौसम विभाग द्वारा किया जाता था। इस अवधि में डॉ0 एस.के. बनर्जी का भूकम्पीय शोध कार्य एक प्रमुख शोध पत्र के रूप में प्रकाशित हुआ।

1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त भारत सरकार द्वारा 1945 में गठित भू-भौतिकीय योजना समिति ने 1948 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके फलस्वरूप वर्तमान भूकम्पमापी यंत्रशालाओं एवं शोध कार्यों हेतु कई संगठनों का जन्म हुआ। इनका मुख्य उद्देश्य भूकम्पमापी यंत्रों का विस्तार, भूकम्पीय क्षेत्रों का अध्ययन, भूकम्पों की संख्या, मुख्य भूकम्प के पहले व बाद में आने वाले सूक्ष्म झटकों, उनकी गहराई, कार्यविधि, भूकम्पीय तरंगों एवं इनकी गति का अध्ययन करना है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय विश्व में मात्र 500 भूकम्प अध्ययन केन्द्र थे जिनकी संख्या आज कई गुना बढ़ गयी है एवं आज एक सेकेण्ड के छोटे से भाग तक के भूकम्पीय तथ्यों का अध्ययन किया जा सकता है। भारत के प्रमुख भूकम्पीय अध्ययन केन्द्र राष्ट्रीय भू-भौतिकी शोध संस्थान, हैदराबाद; आई.आई.टी., रुड़की; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी; आई.आई.टी., खड्गपुर; बी.ए.आर.सी., बम्बई; देहरादून, जोरहट (असाम); कलकत्ता; कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा एवं पूना में स्थित हैं।

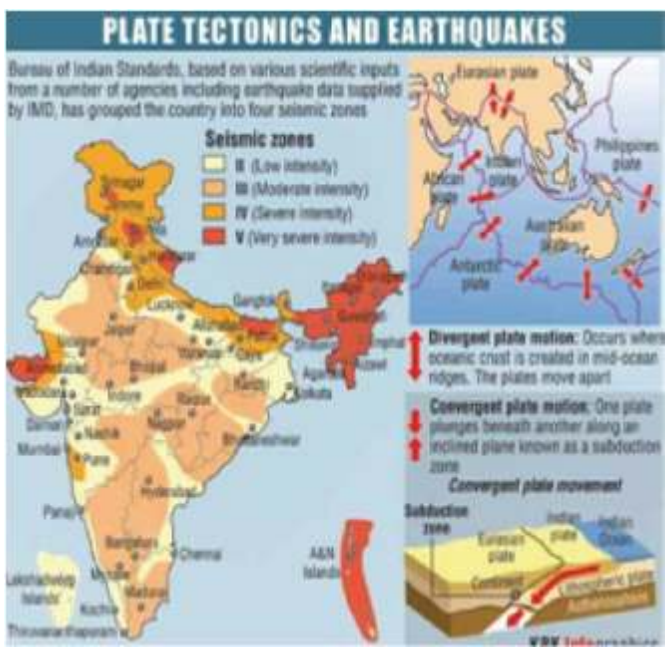

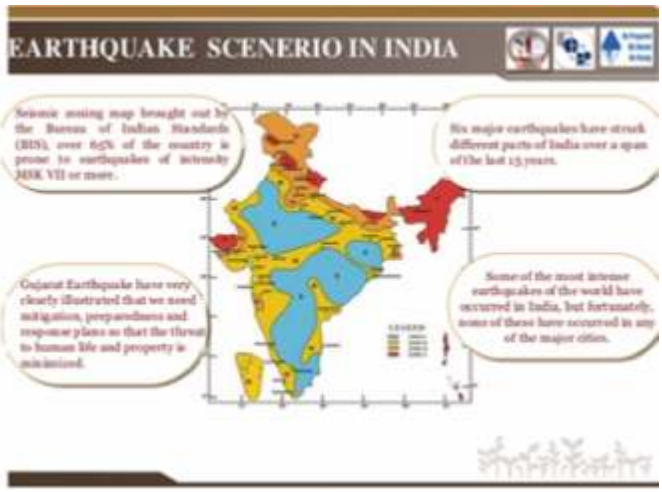

भारत की भूकम्पीय स्थिति

देश में आजादी के पूर्व बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कोडाईकनाल व हैदराबाद मात्र पाँच प्रमुख भूकम्प अध्ययन केन्द्र थे। सन् 1970 तक 18 स्थायी राष्ट्रीय अध्ययन केन्द्र, 4 अस्थायी सचल अध्ययन केन्द्र व 7 केन्द्र व्यास व सतलज के समीपवर्ती क्षेत्रों में विशेष अध्ययन के लिए स्थापित हुए। सन् 1976 में महाराष्ट्र में कोयना बाँध के निकट आये भूकम्प के फलस्वरूप कुछ और केन्द्रों की स्थापना जैसे कोयना, सतारा, ग्वालकोट, पीपली, महाबलेश्वर व एलोरा में की गयी। तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र में रामगंगा-यमुना परियोजना की कुशलता, सफलता एवं उसकी आयु के अध्ययन हेतु कालागढ़, नरेन्द्र नगर, टिहरी व रुद्र प्रयाग में भूकम्पीय केन्द्रों की स्थापना की। विभिन्न अध्ययन केन्द्रों से प्राप्त तथ्यों एवं आँकड़ों के आधार पर 1966 में पहली बार भारत को विभिन्न भूकम्पीय क्षेत्रों में विभाजित किया गया एवं मकानों व विशाल निर्माण कार्यों के लिए भूकम्परोधी डिजाइन व माडल प्रस्तुत किया गया। अध्ययनों के आधार पर पाया गया कि भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों में आने वाले भूकम्प, उनकी संख्या व उनकी शक्ति एक निश्चित समय अवधि में अनियमित रूप से नहीं होतीं बल्कि वे एक सिद्धान्त का पालन करती हैं जो इस प्रकार है– $\text{Log } N = a+bM$, जहाँ N आने वाले भूकम्पों की संख्या एवं M उनकी शक्ति को दर्शाता है। उक्त सिद्धान्त में a, b स्थिरांक हैं। भारत के कई विश्वविद्यालय, शोध संस्थान जैसे भारतीय मौसम विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, केन्द्रीय जल एवं ऊर्जा संस्थान, पूना व राष्ट्रीय भू-भौतिकी शोध संस्थान, हैदराबाद उक्त सिद्धान्त के आधार पर शोध कार्य कर रहे हैं।

किसी भूकम्प का प्रभाव उस क्षेत्र पर कितना होगा इस तथ्य को जानने के लिए विस्तृत भूगर्भीय सर्वेक्षण का होना आवश्यक है। जैसे उस क्षेत्र की चट्टानें जहाँ किसी आकृति का निर्माण करना है एवं यदि वहाँ कोई भ्रंश या दरार है तो उससे उस आकृति की दूरी कितनी है। हिमालयी क्षेत्र अपनी संरचनात्मक विशिष्टता एवं अस्थिरता के कारण सदा से ही भू-वैज्ञानिकों के लिए विशेष अध्ययन का केन्द्र रहा है। इस क्षेत्र के लिए भूकम्पीय यंत्रों एवं प्रतिरोधी माडल व आकृतियों का विकास करना आवश्यक है। भूकम्पीय दृष्टि से हिमालय सदा से ही प्रभावित क्षेत्र रहा है। दुर्भाग्यवश, पिछले मात्र 2 सौ वर्षों का ही भूकम्पीय इतिहास वैज्ञानिकों को पता है।

उससे पहले के तथ्य एवं आंकड़े आक्रमणकारियों, अन्य भूकम्पों या बाढ़ द्वारा नष्ट हो गये। इस कारण उत्तरी भारत जो काफी प्रभावित क्षेत्र रहा है, के आंकड़े पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं हैं। उत्तरी पूर्वी भारत में विगत 200 वर्षों में कई भूकम्प आये जिनकी संख्या उत्तराखंड क्षेत्र में आये भूकम्पों की संख्या से कई गुना अधिक है। हिमालय क्षेत्र में विगत दो सौ वर्षों में आये भूकम्पों के आंकड़ों को देखने पर यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि मुख्यतः उत्तरी-पूर्वी भारत भूकम्पों की संख्या एवं उनकी शक्ति की दृष्टि से सबसे ज्यादा प्रभावित क्षेत्र है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि पश्चिमी एवं मध्य हिमालय का क्षेत्र जैसे उत्तराखण्ड हिमालय क्षेत्र भूकम्प प्रभावित नहीं है। इन क्षेत्रों में भी उत्तरी-पूर्वी भारत के समान अधिक क्षमता वाले (7 या उससे अधिक) भूकम्प आ सकते हैं, (जैसे अक्टूबर 1991 में उत्तर काशी में आया भूकम्प), किन्तु ऐसे अत्यधिक क्षमता वाले भूकम्पों की संख्या कई दशकों में एक बार होती है। पिछले 40 वर्षों में उत्तरी-पश्चिमी हिमालय में चार भूकम्प पाँच से अधिक एवं दो भूकम्प छः से अधिक शक्ति वाले आये।

हिमालय पर्वत क्षेत्र पश्चिम में नंगा पर्वत (8125 मी. ऊँचाई) से पूर्व में नमचा बरवा पर्वत (7755 मी. ऊँचाई) तक लगभग 2400 किमी. लम्बाई में फैला हुआ है, जिसका निर्माण भारतीय उप-महाद्वीप के युरेशिया महाद्वीप से टकराने के कारण हुआ है। फलस्वरूप, हिमालयी क्षेत्र भूकम्पीय दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण रहा है एवं पिछले 25-30 वर्षों से भू-वैज्ञानिकों के लिए अध्ययन का केन्द्र रहा है। भू-वैज्ञानिक मोलनर के अनुसार भारत एवं एशिया के मध्य का करीब 2000 से 3000 किमी. का क्षेत्र एक दूसरे में समाहित हुआ है जिसमें से 300 से 500 किमी. का क्षेत्र हिमालय की परतदार संरचना के रूप में उभर कर आया है। एच. लियान-सियान एवं पी. मोलनर (1985) के अनुसार समाहित होने की दर 18 ± 7 मिलीमीटर प्रतिवर्ष है। इस गणना में हिमालय के उभरे हुए भू-भाग को ध्यान में रखा गया है।

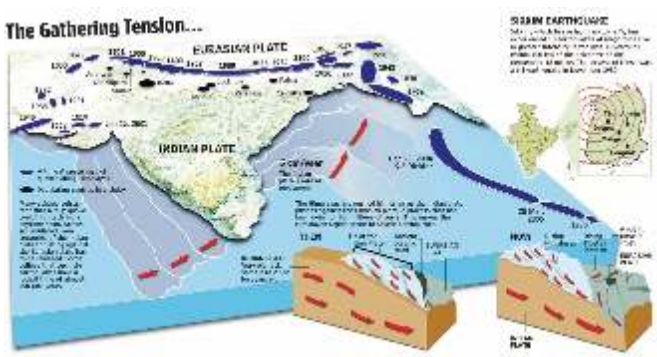

तनाव एकत्रण

असम में 1897 एवं 1950 में आये भूकम्पीय क्षेत्रों के मध्य स्थित क्षेत्र काफी संवेदनशील है। किलिश एवं बोरोक ने अपने अध्ययन के आधार पर मध्य हिमालय, पूर्वी हिमालय व तिब्बत के समीपवर्ती क्षेत्र में 8 क्षमता का भूकम्प सन् 2000 तक या 8.5 क्षमता का भूकम्प सन् 2006 तक आने की संभावना व्यक्त की थी जो कि सन् 1999 में चमोली (गढ़वाल) एवं सन् 2011में सिक्किम में आये भूकम्पों से कुछ हद तक प्रमाणित होता है।

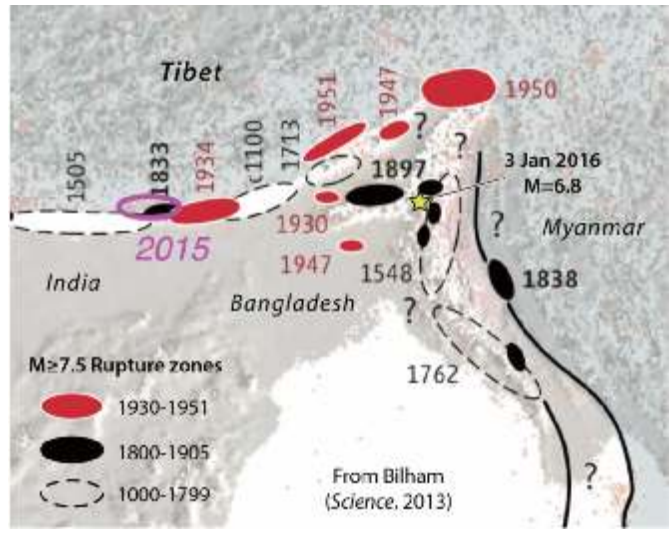

भूकम्पों के कारण हिमालयी क्षेत्र में बनी दरारें

एच.के. गुप्ता एवं एच.एन सिंह ने 19 मई 1988 में अपने शोध के आधार पर यह बताया था कि 21° से 25° उत्तर व 93° से 96° पूर्व के क्षेत्र में किसी भी समय 8 शक्ति का भूकम्प आ सकता है। इस अनुमान के लगभग दो माह बाद 6 अगस्त 1988 को 7.5 शक्ति की भूकम्प आया जिसका केन्द्र 115 किमी. भूमि के नीचे 25° उत्तर व 95° पूर्व में था। अन्य वैज्ञानिकों एल. सीबर एवं जे.पी. आर्मब्रस्टर ने 1897, 1905,1934 एवं 1950 में हिमालय क्षेत्र में आये भूकम्पों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि हिमालय क्षेत्र में ऊर्जा का निस्तारण इन मुख्य भूकम्पों के दौरान हिमालय में बनी दरारों या भ्रंशों के माध्यम से हुआ। 1897 में आये भूकम्प के दौरान उत्तरी पूर्वी हिमालय क्षेत्र में भूटान एवं असम हिमालय में 500 किमी. लम्बी दरार (जिसकी लम्बाई 160 से 500 किमी. हो सकती है), 1905 में कांगड़ा भूकम्प के कारण कुमाऊँ एवं पंजाब हिमालय में 300 किमी. लम्बी दरार (जिसकी लम्बाई 250 से 280 किमी. हो सकती है), 1934 में बिहार-नेपाल में आये भूकम्प के कारण बिहार-नेपाल हिमालय में 300 किमी. लम्बी दरार (जिसकी लम्बाई 100 से 300 किमी. हो सकती है) एवं 1950 में असम में आये भूकम्प के कारण असम हिमालय में 300 किमी. लम्बी दरार (जिसकी लम्बाई 200 से 450 किमी. हो सकती है) उत्पन्न हुई। इस प्रकार पूर्व में आये इन चार भूकम्पों के कारण हिमालय क्षेत्र में बने इन दरारों की कुल सम्भावित लम्बाई करीब 1400 किमी. के आस-पास हो सकती है। इनमें से तीन भूकम्पों 1897, 1934 व 1950 के कारण करीब 1100 किमी. की लम्बी दरार उत्पन्न हुई एवं संग्रहीत ऊर्जा का निस्तारण हुआ।

सन् 1905 में आये भूकम्प के दौरान निर्मित दरार कुमाऊँ और पंजाब हिमालय की परिधि में आती है। सन् 1803 व 1833 के उत्तर प्रदेश हिमालय क्षेत्र एवं 1885 व 1905 के भूकम्पों द्वारा कश्मीर हिमालय क्षेत्र में उत्पन्न स्थिति की पूर्ण जानकारी नहीं है। यदि यह मान लिया जाय कि इन भूकम्पों के कारण ऊर्जा निस्तारण हेतु दरारें उत्पन्न हुई तो इस स्थिति में हमें पूरे हिमालय में एक पूर्ण लम्बी दरार को स्वीकार करना होगा। अगर यह मान लें कि सन् 1803 व 1833 में उत्तर प्रदेश

के हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में आये भूकम्पों के कारण दरारें उत्पन्न नहीं हो पायी तो ऐसी स्थिति में हिमालय की वर्तमान गतिशीलता को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में ऊर्जा का संग्रह पिछले 200 वर्षों (सन् 1800 या इससे पूर्व) से होता चला आ रहा है जो समय-समय पर भूकम्पों के माध्यम से (उदाहरण के लिए 1991 का उत्तरकाशी का भूकम्प) बाहर निकलने का प्रयास कर रहा है। उत्तर प्रदेश हिमालयी क्षेत्र में वर्तमान तक संग्रहीत ऊर्जा को निकालने के लिए क्षेत्र में भ्रंश/दरार का निर्माण अवश्यम्भावी है अर्थात् इस क्षेत्र को आने वाले वर्षों में एक गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ेगा।

पूर्व भूकम्पीय अध्ययनों के आधार पर यह पाया गया है कि 8.4 से अधिक क्षमता का भूकम्प औसत रूप से 270 किमी. लम्बी दरार उत्पन्न कर सकता है। सन् 1905 के कांगड़ा भूकम्प (पंजाब व कुमाऊँ क्षेत्र) एवं 1934 के बिहार-नेपाल में आये भूकम्प के मध्य का 800 किमी. का क्षेत्र भूकम्पीय रिक्तता दर्शाता है। तात्पर्य है कि इस क्षेत्र में पिछले करीब 200 वर्षों में (1803 व 1833 के पश्चात) कोई 7 या अधिक क्षमता वाला भूकम्प नहीं आया है। उक्त रिक्त क्षेत्र कुमाऊँ-बिहार-नेपाल हिमालय क्षेत्र में स्थित है। यह 800 किमी. लम्बा विस्तृत क्षेत्र 1803 व 1833 में आये भूकम्पीय क्षेत्रों के मध्य का क्षेत्र है जहाँ करीब पिछले 200 वर्षों से ऊर्जा का जमाव हो रहा है जिसका निस्तारण भविष्य में आने वाले 8 क्षमता वाले दो भूकम्पों के माध्यम से होना लगभग अनिवार्य है। क्योंकि जैसा पहले भी लिखा जा चुका है 8.4 से अधिक क्षमता वाला एक भूकम्प 270 किमी. का विस्तृत क्षेत्र है, अतः उक्त क्षेत्र को पूर्ण ऊर्जा मुक्त होने के लिए कम से कम दो 8 क्षमता वाले भूकम्पों का आना आवश्यक है जो 600 किमी. से 800 किमी. लम्बी दरार उत्पन्न कर सकते हैं। सन् 1991 से सन् 2016 के मध्य पूर्व एवं मध्य हिमालय क्षेत्र में आये पाँच भूकम्पों (1991, 1999, 2011, 2015, 2016) के माध्यम से समय-समय पर ऊर्जा अवमुक्त होती रही है। लेकिन शेष अवमुक्त होनी बाकी है।

हिमालय क्षेत्र में आने वाले भूकम्पों की संख्या भारतीय प्लेट के उत्तर की ओर खिसकने के कारण हिमालय में जमा हो रही ऊर्जा की दर पर निर्भर करती है। हिमालयी क्षेत्र विशेष रूप से उत्तर-पश्चिमी नेपाल, गढ़वाल, उत्तरी पूर्वी कुमाऊँ क्षेत्र व दार्जिलिंग क्षेत्र में वर्तमान में ऊर्जा का जमाव तो हो रहा है किन्तु उसका निस्तारण पूर्ण नहीं हुआ है और भूकम्प की संख्या में कमी रही जो भविष्य में आने वाले किसी विनाशकारी भूकम्प से पहले की भूकम्पीय शुष्कता या रिक्तता दर्शाती है। साधारणतया हिमालयी क्षेत्र में 8 से अधिक क्षमता वाले भूकम्प की पुनरावृत्ति 200 से 270 वर्षों के बाद होती है। सन् 1910 व 1934 में आये 7.5 व 7 क्षमता वाले भूकम्प का केन्द्र कुमाऊँ नेपाल क्षेत्र में है। इन भूकम्पों के द्वारा ऊर्जा का निस्तारण पूर्ण नहीं हो पाया न ही दरारें फटीं। अतः ये केन्द्र वर्तमान व भविष्य में आने वाले भूकम्पों के निश्चित केन्द्र के रूप में देखे जा सकते हैं। 8 से अधिक क्षमता वाले भूकम्पों की पुनरावृत्ति करते हुए 186 वर्ष के उपरान्त गढ़वाल, उत्तरकाशी में 20 अक्टूबर 1991 में एक विनाशकारी भूकम्प आया। लेकिन यह क्षेत्र पूर्ण रूप से ऊर्जा मुक्त नहीं हुआ है। इसी प्रकार सन् 1833 में कुमाऊँ के भूकम्प के करीब 186 या 200 वर्ष के उपरान्त 8 या 8 से अधिक क्षमता वाला कम से कम एक भूकम्प इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में आने की पूर्ण संभावना है।

इस सदी में उत्तराखण्ड के कुमाऊँ हिमालय (धारचूला क्षेत्र) में आये भूकम्पों पर अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि इस क्षेत्र में 6.5 से अधिक क्षमता वाले भूकम्प चार बार 1916, 1966, 1974 एवं 1980 में आये हैं। इसी प्रकार गढ़वाल हिमालय (टिहरी, उत्तर काशी) में सन् 1828 में 7.6 क्षमता का भूकम्प आया था। तत्पश्चात, 163 वर्षों के बाद 20 अक्टूबर 1991 में टिहरी, उत्तर काशी में 6.6 क्षमता वाले आये भूकम्प के द्वारा उस क्षेत्र में जमा ऊर्जा का निस्तारण हुआ। किन्तु यह स्थिति कुमाऊँ क्षेत्र की नहीं है। इस क्षेत्र से 1883 के पश्चात से कोई अधिक क्षमता वाला भूकम्प नहीं आया है जिसके कारण जमा हो रही ऊर्जा का निस्तारण 8 या 8 से अधिक क्षमता वाले भूकम्प के माध्यम से होना

सारिणीः कुछ महत्वपूर्ण भूकम्पों का विवरण

दिनांक	क्षेत्र	तीव्रता	क्षमता
01-09-1803	बद्रीनाथ, सिरमुर, गढ़वाल, मथुरा,	IX	IX
26-05-1816	गंगोत्री (व गंगा की ऊपरी घाटी)	VIII to VI	VII
1828	टिहरी उत्तर काशी		7.6
25-12-1831	पिथौरागढ़	V	
02-07-1832	पिथौरागढ़	VI	
05-03-1842	सहारनपुर, मसूरी, शिमला	VII	6
05-03-1851	नैनीताल	VII	
11-08-1858	शिमला		7
11-04-1865	शिमला, मसूरी, नैनीताल	VII	7
25-07-1869	नैनीताल	V	6
02-03-1878	शिमला		6
26-02-1906	बजांग (उत्तरी पश्चिमी नेपाल)		8
14-10-1911	अल्मोड़ा का उत्तरी क्षेत्र		6.7
28-10-1916	धारचूला		7.6
27-05-1936	धौलागिरि		7.0
02-10-1937	देहरादून		8
04-06-1945	अल्मोड़ा		6.5
28-12-1958	बजांग		7.5
जनवरी, 1966	टिहरी उत्तर काशी		5.0
27-07-1966	कपकोट धारचूला		6.6
19-01-1975	किन्नौर (धर्मशाला)		7
14-06-1976	धर्मशाला		5
22-07-1980	धारचूला (बंजाग)		6.5
25-08-1980	जम्मू		5.5
26-04-1986	धारचूला		5.7
20-10-1991	उत्तरकाशी		6.6
09-03-1999	चमोली		6.8
18-09-2011	सिंगटम, सिक्किम	VII	6.9
2015	नेपाल		7.9
04-01-2016	तेमेन्गालान्ग, मणिपुर		6.7

है। विभिन्न प्रकार की पर्वतीय गणनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर की दिशा में प्रतिवर्ष 5 सेमी. की दर से बढ़ने के कारण करीब 2 लाख 20 हजार मैट्रिक टन 'ट्राई नाइट्रो टालूईन' (टी.एन.टी.) के बराबर ऊर्जा का जमाव हो रहा है एवं सैकड़ों वर्षों से जमा हो रहे ऊर्जा का निस्तारण होना बाकी है। टी.एन.टी. एक विस्फोटक है जो विस्फोट के दौरान ऊर्जा उत्पन्न करता है (1 टन टी.एन.टी.= 4.184 × 109 जूल ऊर्जा)। यह अनुमान है कि M 5.6 क्षमता वाले भूकम्प के माध्यम से 28616 टन टी.एन.टी. ऊर्जा का निस्तारण होता है। निकट भविष्य में आने वाले भूकम्प की क्षमता यदि 8 M होगी तो इससे निकलने वाली ऊर्जा 5686890 टन टी.एन.टी. के बराबर होगी एवं यदि आने वाली भूकम्प की क्षमता 8.5 M के बराबर होगी तो उससे निस्तारण होने वाली ऊर्जा 28615850 टी.एन.टी. के बराबर होगी जो कि उत्तरकाशी गढ़वाल में अक्टूबर 1991 में आये भूकम्प की करीब हजार गुना अधिक होगी एवं इससे होने वाली जनहानि एवं विध्वंस की कल्पना की जा सकती है।

18 सितम्बर, 2011 को सिक्किम में आये भूकम्प ने भारत में 97 लोगों की जीवन लीला समाप्त कर दी तथा प्राप्त आँकड़ों के अनुसार कुल 111 लोग काल कवलित हुए। लगभग एक वर्ष पश्चात् सन् 2012 में सिक्किम में 4.1 तीव्रता का दूसरा भूकम्प महसूस किया गया। 25 अप्रैल 2015 में नेपाल में आये विनाशकारी भूकम्प का प्रभाव पूरे उत्तर भारत में व्यापक स्तर पर देखा गया।

भूकम्प का पर्यावरणीय एवं जनजीवन पर प्रभाव

भूकम्प आकस्मिक भूगर्भीय प्राकृतिक घटना है तथा मानव के जीवन पर व्यापक प्रभाव डालती है। इससे विकासोन्मुख क्रियायें, यथा-सड़क, रेल, भवन, पुल, बाँध, उद्योग, स्वास्थ्य एवं शिक्षा व्यापक स्तर पर प्रभावित होते हैं। नदियों के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होने से बाढ़ एवं जलस्तर में परिवर्तन आ सकता है। नदियों के मार्ग में परिवर्तन एवं भू-स्खलन से मानव-कृत भू-दृश्य में परिवर्तन हो जाता है तथा नयी भू-उपयोग प्रणाली विकसित करनी होती है। धरती में दरारें पड़ने से अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। भू-आकृति में बदलाव से जैव-सम्पदा एवं जैव-विविधता में व्यापक परिवर्तन देखा जा सकता है। 1991 में उत्तरकाशी में आये विनाशकारी भूकम्प ने एक बार पुनः इस आपदा से निपटने हेतु हिमालय क्षेत्र में सक्षम प्रणाली विकसित करने के लिए सोचने को विवश किया है क्योंकि इस क्षेत्र में पर्यावरणविदों एवं अन्य सामाजिक संगठनों के विरोध के बावजूद भी टिहरी बाँध जैसी महत्वपूर्ण परियोजना को आगे बढ़ाया गया। इस बाँध के बारे में प्रसिद्ध भू-वेत्ता डॉ0 खड़ग सिंह वाल्दिया, पदम्भूषण ने अपनी शंका जाहिर की थी कि यह सक्रिय भ्रंश (श्रीनगर भ्रंश) क्षेत्र में है जो विगत 11,000 वर्षों में लगातार सक्रिय रहा है। इसकी दूरी मुख्य बाँध से मात्र लगभग 4 किमी. है। प्रमाणिक साक्ष्यों के अनुसार प्लीस्टोसीन एवं होलोसीन युग में कुल छः (6) बार इस क्षेत्र में प्रमुख उठाव हुए हैं जिनसे भू-गर्भीय चट्टानें अस्थिर बनी हुयी हैं। अनुमानतः जिन क्षेत्रों में विगत 150-200 वर्षों में कोई बड़ा भूकम्प नहीं आया है वहाँ प्राकृतिक विपदाओं की संभावना काफी बढ़ जाती है। हिमालय क्षेत्र भूकम्प की दृष्टि से अति संवेदनशील है। वर्तमान में यहाँ पर अनेकों विकासोन्मुख योजनाओं पर हमारी सरकार अधिक प्रयास कर रही है। इन योजनाओं को शुरू करते समय तकनीकी एवं भू-गर्भीय अध्ययन के लिए उचित बल दिये जाने की जरूरत है ताकि किसी भी प्रकार के प्राकृतिक आपदा के समय तत्काल बचाव कार्य शुरू करके जन-धन की हानि को कम किया जा सके।

अनुमानतः, यदि किसी क्षेत्र में रिक्टर पैमाने पर 7.5 तीव्रता का भूकम्प आता है तो वह लगभग 400 किमी. की दूरी तक एवं 5,20,000 वर्ग किमी. क्षेत्रफल में अपना विनाशकारी प्रभाव डालता है। इस क्षमता के भूकम्प में लगभग 9,07,000 टन टी.एन.टी. विस्फोटक की क्षमता के बराबर ऊर्जा उत्पन्न होती है जो व्यापक स्तर पर विध्वंस करने में सक्षम है।

कैंसर का ट्यूमर दो घंटे में 95 प्रतिशत ठीक होने का दावा

अमेरिकी शोधकर्ताओं ने कैंसर के इलाज के लिए एक नई विधि ईजाद की है जिसमें दावा किया गया है कि कैंसर का ट्यूमर अब सिर्फ दो घंटे में 95 फीसदी तक ठीक हो जाएगा। 'द जर्नल ऑफ क्लीनिकल आंकोलॉजी' में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार, नई विधि से रोगी के शरीर में मौजूद कैंसर के उत्तक में सबसे पहले सीधे 'नाइट्रोबेंजल्डिहाइड यौगिक' दिया जाएगा। उसके बाद ऊत्तकों को लेजर की किरणों से गुजारेंगे जिससे उत्तक अम्लीय होकर अपने आप नष्ट हो जाएँगे। टेक्सास यूनिवर्सिटी के शोधकर्ता मैथ्यू गोडविन ने कहा कि इस विधि से हर तरह के कैंसर में लाभ मिलेगा।

इस विधि से मस्तिष्क, धमनियों और रीढ़की हड्डी के कैंसर का इलाज आसान हो जाएगा और पीड़ित मरीज को कीमोथेरेपी से भी छुटकारा मिलेगा। उन बच्चों के लिए भी यह फायदेमंद साबित होगा जिन्हें जन्म के कुछ समय बाद ही कैंसर की बीमारी हो जाती है और इलाज के बावजूद यह समय-समय पर अपना रूप बदलता है और दवाएँ इन मामलों में असर नहीं करतीं। गोडविन ने नई विधि की प्रमाणिकता के लिए स्तन कैंसर के अतिसंवेदनशील मामलों पर यह परीक्षण किया। नाइट्रोबेंजल्डिहाइड यौगिक के सिर्फ एक बार के इस्तेमाल से ट्यूमर का बढ़ना रुक गया। अभी इस विधि का डॉक्टरी परीक्षण चूहों पर किया है परन्तु गोडविन के अनुसार यह इंसानों के मामले में कारगर है।

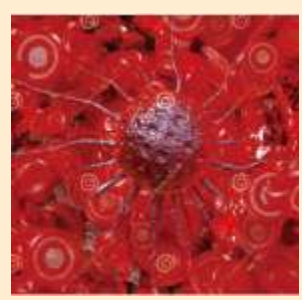

एक नए शोध में सामने आया है कि तनाव भी कैंसर का कारण बन सकता है। इसकी वजह से यह छह गुना तेजी से बढ़ता है। ऑस्ट्रेलिया स्थित मोनाश इंस्टीट्यूट ऑफ फार्माक्यूटिकल्स साइंस के शोधकर्ता डॉक्टर इरीका स्लोआन के मुताबिक, तनाव के कारण कैंसर रोगियों में कैंसर का ट्यूमर तेजी से बढ़ता है, साथ ही तनाव के कारण कैंसर का इलाज भी सफल नहीं हो पाता। मरीज पर दवाएँ अपना सही असर नहीं दिखा पातीं। स्लोआन ने कहा कि कैंसर गंभीर बीमारी है और इसका पता चलते ही पीड़ित व्यक्ति न चाहते हुए भी तनावग्रस्त हो जाता है।

एंटीबायोटिक्स : घटता जादू, बढ़ते खतरे

डॉ0 विनोद गुप्ता*

हमारे शरीर में बीमारियाँ दो तरह से प्रवेश करती हैं, एक तो जीवाणु या कीटाणुओं के द्वारा, जिन्हें बैक्टीरिया कहा जाता है और दूसरे, विषाणु अथवा वायरस द्वारा। जहाँ तक शरीर पर जीवाणुओं के हमले का प्रश्न है, उनका सफाया करने के लिए एंटीबायोटिक्स दवाओं का इस्तेमाल किया जाता है।

एंटीबायोटिक्स से अभिप्राय सूक्ष्म जीवाणुओं के शरीर से प्राप्त रासायनिक पदार्थों से है जो कि किन्हीं दूसरे सूक्ष्म जीवाणुओं का नाश कर सके। अधिकांश एंटीबायोटिक्स जीवाणुओं और फफूंदियों से बनाई जाती हैं।

दुनिया की पहली एंटीबायोटिक दवा पेनिसिलीन थी, जिसने चिकित्सा जगत में तहलका मचा दिया था। यह एक चमत्कारिक औषधि थी, जो खाँसी, निमोनिया आदि के लिए कारगर साबित हुई। इसके पश्चात स्ट्रैप्टोमाइसिन नामक एंटीबायोटिक दवा बनी, जो क्षय रोग या तपेदिक की रामबाण औषधि साबित हुई। फिर तो तरह-तरह की एंटीबायोटिक्स दवाएँ बनने लगीं, जैसे ऐंपिसिलिन, क्लोरोमाइसेटिन, टैट्रासाइक्लिन आदि।

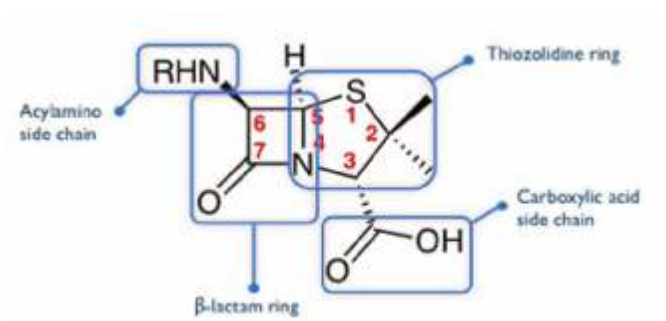

पेनिसिलीन की रासायनिक संरचना

एंटीबायोटिक्स शरीर में जाकर किस तरह जीवाणुओं का नाश करती है, यह एक रहस्य ही बना हुआ है। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि ये रोग के जीवाणुओं तक आक्सीजन को पहुँचने नहीं देतीं, जिससे जीवाणु मरने लगते हैं और रोगी स्वस्थ हो जाता है। जबकि कुछ का कहना है कि एंटीबायोटिक्स शरीर में पहुँचकर रोग के जीवाणुओं को शरीर में भोजन नहीं लेने देती, जिससे वे मरने लगते हैं और व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

बढ़ती खपत

पिछले एक दशक में दुनियाभर में एंटीबायोटिक दवाओं का इस्तेमाल 36 प्रतिशत बढ़ा है। विकासशील देशों, जिसमें भारत भी शामिल है, एंटीबायोटिक दवाओं का एक तिहाई हिस्सा इस्तेमाल होता है। भारत विश्व में एंटीबायोटिक दवाओं का सबसे ज्यादा खपत करता है। पिछले एक दशक में लोगों में एंटीबायोटिक खरीदने की प्रवृत्ति में 62 प्रतिशत का इजाफा हुआ है। शोध के तहत वर्ष 2000 से 2010 के बीच 71 देशों में एंटीबायोटिक्स के इस्तेमाल का अध्ययन किया गया। वर्ष 2000 में भारत में जहाँ एंटीबायोटिक की आठ अरब गोलियों का इस्तेमाल होता था, वर्ष 2010 में इसकी संख्या बढ़कर 12.9 करोड़ हो गई है। 'ग्लोबल ट्रेंड्स इन एंटीबायोटिक्स कंजम्पशन 2000—2010' शोध के मुताबिक, एक भारतीय एक वर्ष में औसतन 11 एंटीबायोटिक का सेवन करता है।

जीवाणु

लैसेंट जर्नल में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक, दुनियाभर में इस्तेमाल हो रही एंटीबायोटिक्स की 76 फीसदी खपत ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका में है। चिंता की बात यह है कि इनमें भारत सबसे आगे है। बिना डाक्टरी सलाह के बार-बार एंटीबायोटिक खाना ऐसे बैक्टीरिया के तैयार होने में मदद कर रहा है जिस पर दवाओं का असर नहीं होता है, दवा प्रतिरोधी 'सुपरबग' उन्हीं में से एक है।

*43/2, सुदामानगर, रामटेकरी, मन्दसौर-458 00 (म.प्र.).

बेअसर होते एंटीबायोटिक्स

एंटीबायोटिक दवाओं को लेकर हमेशा जताई जाने वाली चिन्तओं ने अब गंभीर रूप ले लिया है। हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने अपनी एक रिपोर्ट में एंटीबायोटिक दवाओं के विरुद्ध पैदा हो रही प्रतिरोधक क्षमता को जनस्वास्थ्य के लिए एक वैश्विक खतरे की संज्ञा दी है। डब्ल्यूएचओ ने 114 देशों से जुटाए गए आँकड़ों का विश्लेषण करते हुए रिपोर्ट में कहा कि यह प्रतिरोधक क्षमता दुनिया के हर कोने में दिख रही है। रिपोर्ट में एक ऐसे पोस्ट-एंटीबायोटिक युग की आशंका जताई गई है जिसमें लोगों के सामने फिर उन्हीं सामान्य संक्रमणों के कारण मौत का खतरा होगा, जिनका पिछले कई दशकों से इलाज संभव हो रहा है। यह रिपोर्ट निमोनिया, डायरिया और रक्त संक्रमण का कारण बनने वाले सात अलग-अलग बैक्टीरिया पर केंद्रित है। रिपोर्ट में कहा गया है कि कुछ देशों में अध्ययन में शामिल आधे से ज्यादा लोगों पर दो प्रमुख एंटीबायोटिक का प्रभाव नहीं पड़ा। स्वाभाविकतौर पर बैक्टीरिया धीरे-धीरे एंटीबायोटिक के विरुद्ध अपने अंदर प्रतिरक्षा क्षमता पैदा कर लेता है लेकिन इन दवाओं के हो रहे अंधाधुंध प्रयोग से यह स्थिति अनुमान से कहीं ज्यादा तेजी से सामने आ रही है। चिकित्सकों द्वारा ज्यादातर इन दवाओं की सलाह देना और मरीज की ओर से दवा का कोर्स पूरा न करना इसका कारण बन रहे हैं।

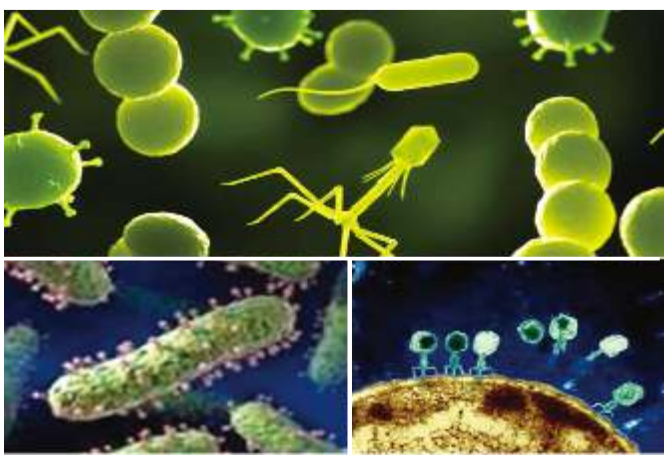

विषाणु

एंटीबायोटिक दवाओं के प्रति जीवाणुओं के आक्रामक रवैये और उनकी बढ़ती प्रतिरोधक क्षमता का मुकाबला करने के लिए एक जैव प्रौद्योगिकीय अध्ययन शुरू किया गया है। इसके तहत इन जीवाणुओं की अनुवांशिकी का अध्ययन करके इनकी प्रतिरोधक क्षमता तथा आक्रामकता को कम किया जाएगा।

जीवाणुओं को नष्ट कर उसे फैलने वाली संक्रामक बीमारियों पर अंकुश लगाने का उत्तम साधन माने जाने वाले अधिकतर एंटीबायोटिक कई बार रोग पर काबू पाने में बेअसर देखे गए हैं। आज से दो दशक पहले अमेरिका के एक सर्जन ने घोषणा की थी कि अब संक्रामक बीमारियों का युग समाप्त हो चुका है, लेकिन एंटीबायोटिकों के प्रति जीवाणुओं के आक्रामक रवैये के मद्देनजर विशेषज्ञ अब यह कहने पर मजबूर होते जा रहे हैं कि कहानी बिल्कुल उलटती जा रही है।

स्टेफिलोकोकस आरियस

विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट में अत्यधिक चौंकाने वाले तथ्य सामने आये हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार, *स्टेफिलोकोकस आरियस* नामक जीवाणु 95 प्रतिशत से अधिक पेनिसिलिन नामक एंटीबायोटिक के प्रति प्रतिरोधी पाए गए हैं। इतना ही नहीं, लगभग 65 प्रतिशत तक ये जीवाणु पेनिसिलिन के अन्य तत्वों जैसे मैथिसिलिन के प्रति भी उदासीन देखे गए हैं। इसके अतिरिक्त जापान, यूरोप तथा अमेरिका में बहुत से जीवाणुओं को नष्ट करने वाली एंटीबायोटिक वैंकोमाइसिन के प्रति भी इन्हें प्रतिरोधी पाया गया है।

जर्नल लेसेंट में प्रकाशित रिपोर्ट के मुताबिक, एंटीबायोटिक्स के अधिक इस्तेमाल से लोगों पर दवाइयों का असर कम होने और दवा प्रतिरोधी बैक्टीरिया के प्रभावी होने की आशंका बढ़ी है। प्रमुख शोधकर्ता थॉमस वान बोकेल के अनुसार, लोगों की क्रय शक्ति बढ़ रही है और वे आसानी से एंटीबायोटिक्स खरीद सकते हैं। अगर इन दवाओं का प्रभाव समाप्त हो गया तो वास्तव में कुछ नहीं बचेगा। निम्न और मध्यम आय वाले देशों में सेफैलोस्पोरिन और फ्लोरोक्विनोलोन के उपयोग में वृद्धि से साफ पता चलता है कि इन देशों में डेंगू, चिकुनगुनिया जैसी बीमारियाँ तेजी से फैल रही हैं। इनमें से ज्यादातर बीमारियाँ वायरस से फैलती हैं जिन पर एंटीबायोटिक्स प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन ज्यादातर देशों में इंफ्लुएंजा के फैलने पर भी एंटीबायोटिक्स का इस्तेमाल किया जा रहा है जबकि फ्लू पर ये दवाइयाँ असर नहीं दिखाती है।

इसमें दो राय नहीं कि एंटीबायोटिक्स दवाओं के जन्म के बाद बीमारियों के उपचार में चमत्कारिक सफलता मिली है, लेकिन यह ध्यान देने योग्य बात है कि बैक्टीरिया के कारण मानव शरीर में होने वाले संक्रमण के उपचार में ही एंटीबायोटिक्स कारगर हैं। यदि बीमारी का कारण विषाणु हैं तो फिर इन्हें लेने से कोई फायदा नहीं होगा, क्योंकि एंटीबायोटिक्स का विषाणुओं पर कोई असर नहीं होता।

खतरे की घंटी बनते एंटीबायोटिक्स

डब्ल्यूएचओ में सहायक महानिदेशक डॉ0 कीजी फुकुदा के अनुसार, दुनियाभर में मिलकर गंभीरता से कदम न उठाने की स्थिति में दुनिया ऐसे भयानक युग की ओर कदम बढ़ाने जा रही है जहाँ सामान्य बीमारियाँ भी जानलेवा साबित होंगी। जब तक हम संक्रमण रोकने के

बेहतर प्रबंधन के साथ एंटीबायोटिक के निर्माण, निर्धारण और प्रयोग की प्रक्रिया को नहीं बदलेंगे, यह खतरा बना रहेगा। इसका परिणाम भयानक हो सकता है। पिछले साल इंग्लैंड के प्रधान चिकित्सा अधिकारी प्रोफेसर डेम सैली डेविस ने इस खतरे को ग्लोबल वार्मिंग के जितना ही महत्वपूर्ण बताया था। डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट पूरी दुनिया के लिए एक खतरे की घंटी है।

ब्रिटेन सरकार ने कहा है कि एंटीबायोटिक प्रतिरोध के बढ़ते खतरे पर ध्यान नहीं दिया गया तो दुनिया चिकित्सा के 'अंधकार युग' में वापस चली जाएगी। विशेषज्ञों का कहना है कि एमआरएसए सुपर बग इतनी सारी दवाओं के प्रति प्रतिरोध क्षमता विकसित कर चुका है कि इनका इलाज पहले ही मुश्किल हो गया है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ज्यादा एंटीबायोटिक लेना स्वास्थ्य के लिए ही खराब नहीं है बल्कि शरीर की प्रतिरोधात्मक क्षमता भी घटा देता है।

एंटीबायोटिक दवाओं के साथ कुछ खतरे भी जुड़े हैं। खासतौर पर तब, जबकि मरीज अपनी मर्जी से ये दवाएँ खरीदकर खाते हैं। बेहतर होगा कि डॉक्टर की सलाह पर ही एंटीबायोटिक दवाएँ लें और उसकी मात्रा निर्धारित खुराक से कम या ज्यादा न करें। एंटीबायोटिक दवाओं का पूरा कोर्स लेना होता है। अधूरा छोड़ने पर बैक्टीरिया अधिक मात्रा में हो जाते हैं जो हानि पहुँचाते हैं। इसी प्रकार, यदि निर्धारित कोर्स से ज्यादा दवा लेते हैं तो इससे दवा विरोधी बैक्टीरिया पैदा हो जाते हैं जो सेहत के लिए ठीक नहीं। कुछ लोगों पर इसके कुप्रभाव भी देखे गये हैं। अधिक संवेदनशीलता के कारण शरीर पर दाग उभर सकते हैं।

20वीं शताब्दी में एंटीबायोटिक्स की खोज मानव स्वास्थ्य की दिशा में एक क्रांति थी लेकिन इसकी बढ़ती खपत के कारण इनके प्रति बढ़ती प्रतिरोधी क्षमता ने इसके प्रभाव और साथ ही करोड़ों लोगों की जिंदगी खतरे में डाल दी है।

एंटीबायोटिक्स के साइड इफेक्ट्स

जर्नल ऑफ द अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन की पेडियाट्रिक्स रिपोर्ट के मुताबिक, एंटीबायोटिक्स के ज्यादा सेवन करने पर बच्चों और किशोरों में मोटापे का खतरा बढ़ता है। पेनिसिल्वेनिया यूनिवर्सिटी के चिकित्सकों ने 64500 से ज्यादा अमेरिकी बच्चों पर अध्ययन किया है। इसमें जिन बच्चों ने दो साल की उम्र तक चार या चार से ज्यादा कोर्स एंटीबायोटिक्स का सेवन किया था, उनमें मोटापा होने की आशंका 10 फीसदी ज्यादा पाई गई है। पेनसेल्वेनिया यूनिवर्सिटी के प्रो. चार्ल्स बैली कहते हैं कि 'हमारी सोच है कि एंटीबायोटिक्स के इस्तेमाल से ऐसे बैक्टीरिया भी नष्ट हो जाते हैं, जो हमारे वजन को नियंत्रित रखने में मदद करते हैं, हालाँकि इस दिशा में अभी गंभीर अध्ययन की जरूरत है।'

एलोपैथी चिकित्सा पद्धति में अहम भूमिका निभाने वाले एंटीबायोटिक्स का एक और दुष्प्रभाव सामने आया है। ताजा शोध के अनुसार, एंटीबायोटिक्स का सेवन करने वाले बच्चों में मोटापे का खतरा ज्यादा रहता है। शोधकर्ताओं के अनुसार, बचपन में एंटीबायोटिक्स का अधिक प्रयोग आगे चलकर शरीर के बॉडीमास इंडेक्स को भी प्रभावित करता है। जॉन हॉपकिंस ब्लूमबर्ग स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ के प्रोफेसर ब्रायन श्वार्ज के अनुसार, ''बचपन में एंटीबायोटिक्स का इस्तेमाल हमारे बॉडीमास इंडेक्स को हमेशा के लिए प्रभावित कर सकता है।

बैक्टीरिया के संक्रमण से बचने के लिए दी जाने एंटीबायोटिक दवाएँ दिमाग को नुकसान पहुँचाती हैं। बोस्टन में भारतीय मूल की शमिक भट्टाचार्य की अगुआई में एक शोध में यह बात सामने आई है। शोध में एंटीबायोटिक्स दवाओं को शामिल किया गया था। एंटीबायोटिक्स के कारण मस्तिष्क की कार्यप्रणाली प्रभावित होती है। इस अवस्था को डेलिरियम या मतिभ्रम कहा जाता है। इससे आवेश की स्थिति उत्पन्न होने की आशंका रहती है। शोध के मुताबिक, डेलिरियम पीड़ित समय पूर्व मौत के शिकार हो जाते हैं। शोधकर्ताओं के मुताबिक, इनका इस्तेमाल करने वालों में 47 फीसद मतिभ्रम 14 फीसद उद्वेग या आवेश, 15 प्रतिशत लोग माँसपेशियों में अनैच्छिक हरकत के शिकार मिले। इसके अलावा, पाँच फीसद लोगों का अपनी शारीरिक गतिविधि पर नियंत्रण नहीं रहा।

हर छोटी-मोटी शारीरिक परेशानियों पर एंटीबायोटिक का सहारा लेने वालों के लिए बुरी खबर है। इसके अत्यधिक सेवन से किशोरों और बच्चों में जुवेनाइल आर्थ्राइटिस (जेए) होने का खतरा बढ़ सकता है। इसे पेडियाट्रिक रूमैटिक भी कहा जाता है। इससे जोड़ों और आँखों में सूजन आ जाती है। यह इस हद तक खतरनाक है कि इससे पीड़ित किशोर व बच्चे दर्द तो झेलते हैं, वे दृष्टिहीनता या शारीरिकतौर पर असमर्थ भी हो सकते हैं। न्यूजर्सी स्थित रुटजर्स विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने ताजा अध्ययन में इसका दावा किया है। एंटीबायोटिक्स का ज्यादा सेवन करने से दुष्प्रभाव की आशंका भी उसी अनुपात में बढ़ती जाती है। शोधकर्ताओं ने 45 लाख बच्चों का अध्ययन किया, जिनमें से 152 जुवेनाइल आर्थ्राइटिस के शिकार मिले। इनकी जाँच से पता चला कि एंटीबायोटिक के ज्यादा इस्तेमाल करने से यह स्थिति पैदा हुई। पहले साल में इसके होने की आशंका बहुत ज्यादा रहती है।

एंटीबायोटिक का अंधाधुंध इस्तेमाल करने वाले लोगों को सावधान हो जाना चाहिए। हाल ही किए गए शोध के मुताबिक, एंटीबायोटिक का ज्यादा प्रयोग करने से टाइप-2 डायबिटीज होने का खतरा काफी बढ़ जाता है। डेनमार्क के शोधकर्ताओं ने अध्ययन में पाया कि टाइप-2 डायबिटीज से पीड़ित लोगों ने सामान्य लोगों की तुलना में एंटीबायोटिक का ज्यादा सेवन किया था। क्रिस्टियन हैलुंड्ब के अनुसार, टाइप-2 से पीड़ित अधिकतर लोगों ने पंद्रह वर्षों तक तुलनात्मक रूप से एंटीबायोटिक का ज्यादा सेवन किया था। शोधकार्ताओं ने निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए टाइप-2 से पीड़ित 1.70 लाख और 13 लाख स्वस्थ लोगों की मेडिकल स्थिति का गहन अध्ययन किया। इसमें एंटीबायोटिक का ज्यादा सेवन करने वालों में टाइप-2 डायबिटीज होने का खतरा ज्यादा पाया गया।

एंटीबायोटिक्स अपने प्रति संवेदनशील रहने वाले हर बैक्टीरिया को मार देती हैं, जबकि कुछ बैक्टीरिया हमारे शरीर के लिए लाभदायक भी होते हैं और इनके मरने से शरीर में बैक्टीरिया का संतुलन बिगड़ जाता है। परिणामस्वरूप, पेट खराब हो जाता है, दस्त लगते हैं और आँतों में संक्रमण हो जाता है। बिना जरूरत के एंटीबायोटिक्स लेने पर बैक्टीरिया उसके प्रतिरोधकता विकसित कर लेते हैं और फिर इन पर सामान्य व हल्की डोज का कोई असर नहीं होता है।

संक्रमण के दौरान लंबे समय तक रोगियों को दी जाने वाली विभिन्न प्रकार की स्क्लेरोसिस (ऊत्तकों में जठरता की बीमारी) के लिए मिनोसाइक्लिन एक अच्छा उपचार साबित हो सकता है। यह बात एक अध्ययन में सामने आई है, जो 'न्यूरोलॉजी' के 21 दिसम्बर, 2001 के सालाना अंक में प्रकाशित हुई थी।

स्क्लेरोसिस वह बीमारी है, जिसका संबंध शरीर की केंद्रीय तंत्रिका प्रणाली से होता है। एंटीबायोटिक दवाओं को टैट्रासाइक्लिन परिवार की सदस्य दवा मिनोसाइक्लिन के स्क्लेरोसिस पर प्रयोग के उपरांत सकारात्मक परिणाम आए। रोग की तीव्रता कम हो गई। इस दवा का इस्तेमाल चूहों पर किया गया था जो मस्तिष्क ज्वर के प्रति प्रतिरक्षति थे। जिन जानवरों का इलाज मिनोसाइक्लिन से किया गया था, उनके मस्तिष्क की कार्य प्रणाली में कोई गड़बड़ी विकसित नहीं हुई और उन्हें दवाएँ कम दिनों तक देनी पड़ीं। यह अध्ययन विनकोंसिन यूनिवर्सिटी में मेडिसिन न्यूरोलॉजी पढ़ाने वाले प्रो. इआन डी डनकेन ने बताया।

डनकेन के अनुसार, बीमारी के ये परिवर्तन उन जानवरों के शरीर पर बाद की पैथोलॉजी जाँच में ठीक रहे, जिनकी तंत्रिका प्रणाली का अध्ययन किया गया था। स्क्लेरोसिस की बीमारी पर इस तरह की चिकित्सा फायदेमंद हो सकती है। इस बीमारी का मेरूदंड और मस्तिष्क के अलावा शरीर के अन्य भागों पर भी अध्ययन किया गया।

एंटीबायोटिक्स के प्रति जीवाणुओं के आक्रामक रवैए और उनकी बढ़ती प्रतिरोधक क्षमता का मुकाबला करने के लिए जैव-प्रौद्योगिकी में जीवाणुओं की आनुवंशिकी का अध्ययन करके इनकी प्रतिरोधक क्षमता तथा आक्रामकता को कम करने का अध्ययन किया गया। जीवाणुओं को नष्ट कर उनसे फैलने वाली संक्रामक बीमारियों पर अंकुश लगाने का उत्तम साधन माने जाने वाले अधिकतर एंटीबायोटिक्स कई बार रोग पर काबू पाने में बेसर देखे गए हैं।

एंटीबायोटिक्स का विकल्प

नीदरलैंड्स के शोधकर्ताओं ने एंटीबायोटिक्स का विकल्प खोजने का दावा किया है। यह एमआरएसए जैसी खतरनाक बीमारियों का समाना करने में कारगर साबित हो सकता है। बायोटेक फर्म मिसरियोस ने एक छोटा सा परीक्षण किया है। इसमें देखा गया कि एमआरएसए इंफेक्शन नई दवा का सामना नहीं कर पाया। यह नई दवा एक एंजाइम है जो एमआरएसए के बैक्टीरिया को टारगेट करता है। उसे आगे बढ़ने से रोकता है। एंटीबायोटिक्स यह नहीं कर पा रहे थे। क्योंकि एंटीबायोटिक्स इस बीमारी पर असर नहीं कर पाते। आमतौर पर अस्पतालों में काम करने वालों को यह बीमारी होती है। इसकी शुरुआत में स्किन में लाल चकत्ते पड़ जाते हैं।

कई मरीजों पर किए गए प्रयोग के आधार पर यह बात सामने आई है कि नया ईजाद किया गया ड्रग एंटीबायोटिक दवाओं से इंफेक्शन पैदा करने वाले कीटाणुओं का खात्मा करने में सक्षम हैं। एक बायो तकनीक कंपनी के मुख्य निदेशक मार्क ऑफरहॉस ने इस आविष्कार को एंटीबायोटिक जनित रोगों के खिलाफ एक नए युग की शुरुआत बताया है। उन्होंने कहा कि पाँच साल के भीतर इस ड्रग्स से निर्मित दवाएँ भी तैयार कर ली जाएँगी। नवनिर्मित ड्रग्स पुराने तरीकों से इधर सीधे इंफेक्शन पैदा करने वाले कीटाणुओं पर हमला करेगा और अन्य रोगाणुओं से दूर रहेगा।

विज्ञ जनों का है ऐलान, वृक्ष मित्र अरु गुरू महान

अनिल कुमार मिश्र (विज्ञ)*

तरु पल्लव जमीन पर छाए, धरती के फेफड़े कहाए।
इनकी पत्तियाँ रवि प्रकाश में, अपना भोजन स्वंय बनाएँ।
रोटी, कपड़ा और मकान, कागज बन देते सद्ज्ञान।
प्राणवायु के शृजनहार हैं, विषधर गैसें भी अहार हैं।
मिले बुराई, करो भलाई, देते ये सत्संगी ज्ञान।
वृक्ष मित्र अरु गुरू महान।।

कन्द-मूल, फल, मेवा, बूटी , हम सबने वृक्षों से लूटी।
स्वर्ग तुल्य जो धरा हमारी, वृक्षों की ही महिमा सारी।
वृक्ष फलों फूलों से लदते, छोड़ अकड़पन सज्जन झुकते।
झुकना एक मुख्य सदगुण है, देते सबको ज्ञान।
पर्यावरण का ताप घटाकर, करें जगत कल्याण।
वृक्ष मित्र अरु गुरू महान।।

ध्वनि शोषक अरु ऊष्मारोधी, रहे अचल पर स्वार्थ विरोधी।
वृक्ष कबहुँ नहिं फलों को भक्षैं, आजीवन औरों को रक्षैं।
जल अवशोषण, वाष्पोत्सर्जन, करते बादल का निर्माण।
झड़ जाते सूखे फल, पत्ते, ह्यूमस बनकर पोषण देते।
पर्यावरण को स्वच्छ बनाकर, देते कृतज्ञता का ज्ञान।
वृक्ष मित्र अरु गुरू महान।।

मम आस वृक्ष, विश्वास वृक्ष, मम मित्र वृक्ष अरु गुरू वृक्ष।
जैव निम्नकरणीय वृक्ष, सतत रखें जल चक्र वृक्ष।
वृक्ष लगाएँ! धरा बचाएँ! बच्चों को भी करे दक्ष।
वर्षा, धूप, शीत सहते तरु, कैक्टस उगे जहाँ होता मरु।
गहरी जड़ें, पत्तियाँ छोटी, मोटा तना रन्ध्र कम होती।
कैक्टस कहता सुनो सुजान, वृक्ष मित्र अरु गुरू महान।।

वृक्ष धरा का विष पी-पीकर, बनते धरती के नीलकंठ।
अगर न रोका वनों का कटना, वसुधा हो जाएगी ठंठ।
बढ़ता ताप पिघलती सड़कें, लगी जलाशय में भी आग।
जीवन का उद्घोष है प्यारे, वृक्ष धरा के हैं शृंगार।
वृक्ष बचाओ वरना एक दिन, धरती फिर होगी अंगार।
वृक्ष मित्र अरु गुरू महान, विज्ञ जनों का है ऐलान।।

*राजकीय सर्वोदय बाल विद्यालय, कोण्डली, दिल्ली - 110 091

विज्ञान में विनोद की फुआर : आईजी नोबल पुरस्कार

विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी*

पहले हँसाते हैं फिर गम्भीरता जगाते हैं

विज्ञान नीरस विषय नहीं है और वैज्ञानिक भी शुष्क स्वभाव के नहीं होते हैं। किसी वस्तु या घटना को हास्य व्यंग्य के कोण से देखने की क्षमता वैज्ञनिकों में सामान्य से अधिक होती है। यह सन्देश है अमेरिका में व्यंग विनोद भरे आयोजन आईजी नोबल पुरस्कार सम्मान समारोह का। स्वीडन में नोबल पुरस्कार समारोह की तर्ज पर 1991 से प्रति वर्ष हो रहे इस आयोजन में विज्ञान व अन्य क्षेत्रों के उन सृजन कार्यों को सम्मान हेतु चुना जाता है जो पहले हँसाते हैं तथा बाद में गम्भीरता से सोचने को मजबूर करते हैं।

आईजी रोमन लिपि में लिखे इग्नोबल शब्द के प्रथम दो अक्षर हैं। इग्नोबल का शाब्दिक अर्थ है अधम या नीचे कुल में उत्पन्न। हास्य-व्यंग को छोड़ दें तो इसमें ऐसा कुछ नहीं होता जिसे नीच कहा जा सके। लगता है व्यंग भाव लाने के लिए इस शब्द का उपयोग किया गया है। आयोजन के स्तर का अनुमान इस तथ्य से किया जा सकता है कि अनेक नोबल पुरस्कार विजेता इस आयोजन में पूर्ण रुचि से भाग लेते हैं।

हास्य से जुड़े होने के कारण ही आयोजन विषय की गम्भीरता को कम करके नहीं आँका जाना चाहिए। ब्रिटिश सरकार के प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार ने एक बार ब्रिटेन के वैज्ञानिकों को आईजी नोबल के लिए नहीं चुनने की माँग की थी। उन्हें आशंका थी कि आईजी नोबल मिलने पर किसी आविष्कार को हल्का समझा जाएगा। तब ब्रिटेन के अनेक वैज्ञानिकों ने ही उनका विरोध कर उनकी आशंका को निर्मूल बताया था। संभावना यह रहती है कि आज का आईजी नोबल विजेता कल सचमुच नोबल पुरस्कार विजेता बन जावे। एण्ड्रेगेइम को पहले आईजी नोबल मिला बाद में सचमुच का नोबल भी मिल गया।

आईजी नोबल पुरस्कार समारोह का आयोजन विज्ञान विनोद पत्रिका 'एनल्स ऑफ इम्प्रोबेबल रिसर्च' द्वारा किया जाता है। कुछ अन्य संस्थाएँ जैसे हार्वर्ड रेडक्लिफ विज्ञानकथा संघ, हार्वर्ड रेडक्लिफ भौतिकी विद्यार्थी समिति, हार्वर्ड कम्प्यूटर सोसाइटी आदि आयोजन में सहयोग करती हैं। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक सभागार सैण्डर्स थिएटर में होने वाले इस आयोजन को विश्व वैज्ञानिक बिरादरी व विनोद प्रिय बुद्धिजीवियों का आर्शीवाद प्राप्त है। आईजी नोबल पुरस्कार विजेताओं के भाषण मेसाच्यूट्स प्रौद्योगिकी संस्थान में आयोजित किए जाते हैं।

आईजी नोबल पुरस्कारों से यह तथ्य उभर कर आता है कि पुरस्कार केवल प्रशंसा ही नहीं करते, किसी की आलोचना करने या किसी पर व्यंग करने के लिए भी पुरस्कारों का उपयोग किया जा सकता है। अब तक दिए आईजी नोबल पुरस्कारों से इस बात की पुष्टि अनेक बार हुई है। प्रतिवर्ष 10 आईजी नोबल पुरस्कार दिए जाते हैं। इनमें पाँच विषय तो वास्तविक नोबल पुरस्कारों के सम्मान ही हैं।

पिछले कुछ वर्षों में दिए गए आईजी नोबल पुरस्कारों का उल्लेख करने से उपरोक्त कथन की पुष्टि स्वतः ही हो जाएगी। वर्ष 2012 में आईजी नोबल पुरस्कार समारोह में साहित्य का आईजी नोबल अमेरिकी सरकार के सामान्य जवाबदारी विभाग को उनकी रिपोर्टों की रिपोर्ट और फिर उसकी रिपोर्ट..... पर दिया गया। मई 2012 में उक्त विभाग ने रिर्पोर्टों पर होने वाले खर्चों व प्रभाव को जानने के लिए फिर एक और रिपोर्ट तैयार करने की आवश्यकता प्रतिपादित की थी। स्पष्ट है कि आईजी नोबल पुरस्कार देकर सरकारी विभागों में बार-बार रिपोर्टें तैयार करने की कार्य प्रणाली पर गहरा व्यंग किया गया है। ऐसा ही व्यंग शान्ति के आईजी नोबल पुरस्कार में भी छुपा है। शान्ति का आईजी नोबल पुरस्कार रूस की एस.के.एन. कंपनी को रूस के पुराने हथियारों को महँगे दामों में बेच कर हीरे कमाने पर दिया गया है। स्वाभाविक है कि पुराने हथियारों से विश्व शान्ति को नए हथियारों की तुलना में कम खतरा होगा। विश्व में विभिन्न सरकारों में उच्च स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण हथियारों के अनावश्यक व्यापार पर व्यंग का भाव उस आईजी नोबल पुरस्कार में छिपा था।

*पूर्व प्रधानाचार्य, 2 तिलक नगर, पाली- 306 406 (राजस्थान).

आपके आगे चलती महिला (कभी-कभी पुरूष भी) की पीढ़ पर, पेण्डूलम की तरह लहराती वेणी को देख आपके मन में कैसे विचार आते हैं यह हम नहीं जानते, पर तीन अमेरिकी वैज्ञानिकों ने वेणी की उस गति का गहराई से अध्ययन किया है। वैज्ञानिकों ने वेणी की विशिष्ट गति के लिए जिम्मेदार विभिन्न बलों के सन्तुलन स्थिति की गणना की है। वर्ष 2012 का भौतिकी का आईजी नोबल पुरस्कार इन्हीं तीन अमेरिकी वैज्ञानिकों को दिया गया था। सन् 2012 में रसायन का आईजी नोबल पुरस्कार भी बालों पर ही केन्द्रित था। स्वीडन के जॉहन पीटरसन नामक वैज्ञानिक को स्वीडन के एण्डरस्लोव कस्बे के कुछ घरों के निवासियों के बालों के हरे हो जाने के रहस्य की गुत्थी सुलझाने पर दिया गया था। औषध का पुरस्कार फ्रांस के दो वैज्ञानिकों को कोलोनोस्कोपी द्वारा मलाशय से रुकावट हटाने के बाद रोगी द्वारा गैस का विस्फोट करने की संभावना को न्यूनतम करने के उपाय बताने के लिए दिया गया था। व्यक्ति द्वारा गैस छोड़ना सदैव हँसी का कारण रहा है। गैस के विस्फोट की बात सुनकर हँसी का विस्फोट होना स्वाभाविक ही है। मनोविज्ञान का आईजी नोबल पुरस्कार नीदरलैण्ड व पेरू के तीन वैज्ञानिकों को संयुक्त रूप से उनकी इस खोज के लिए दिया गया था कि बायीं ओर झुककर देखने पर एफिल टॉवर छोटा किस कारण दिखाई देता है। आप जब पेरिस जाएँ तो बायीं ओर झुककर एफिल टॉवर देखते हुए इस खोज की पुष्टि अवश्य कर लें।

वेणी की विशिष्ट गति को प्रदर्शित करते वैज्ञानिक

किसी वक्ता के लम्बे भाषण से आप भी कभी बोर जरूर हुए होंगे। उसे बैठाने का कोई उचित उपाय नहीं होने के कारण आपको मन मसोस कर बैठा भी रहना पड़ा होगा। आपको अब ऐसे परेशान नहीं होना होगा यदि आपके पास ''भाषण रोको'' यन्त्र होगा। वर्ष 2012 में भौतिक विज्ञान का आईजी नोबल पुरस्कार दो जापानी वैज्ञानिकों को उनके आविष्कार ''भाषण रोको'' यन्त्र (स्पीच जैमर) के लिए दिया गया था। ''भाषण रोको'' यन्त्र बिना ताकत आजमाए, किसी भी वक्ता को भाषण समाप्त करने पर मजबूर कर देता है। स्पीच जैमर के चालू करने पर वक्ता के कान में उसका भाषण कुछ विलम्ब के साथ गूँजने लगता है। इससे वक्ता को बोलने में परेशानी होने लगती और वह भाषण समाप्त करने को मजबूर हो जाता है। जापान के उच्च व्यावसायिक विज्ञान संस्थान केन्द्र में विकसित स्पीच जैमर यंत्र का प्रमुख उद्देश्य वक्ताओं को अपना प्रवचन प्रभावकारी बनाने में मदद करना है। सन् 2012 के द्रव्य-गतिकी के आईजी नोबल पुरस्कार में भी आपकी रुचि हो सकती है। जिस स्थिति के अध्ययन हेतु आईजी नोबल पुरस्कार दिया गया उस स्थिति से आपका भी वास्ता पड़ता रहता है। यह पुरस्कार अमेरिका के दो वैज्ञानिकों को संयुक्त रूप से इस अध्ययन के लिए दिया गया था कि कप में कॉफी भर कर ले जाते समय कॉफी छलक क्यों जाती है। बात छोटी लगती है मगर अब तक किसी ने इसका अध्ययन नहीं किया था, तभी तो 'अधभरी गगरी छलकत जावे' की कहावत चल रही है। इस विशद अध्ययन के कई सामरिक महत्व सामने आवें तो आश्चर्य नहीं होगा।

सन् 2012 में आकारिकी का आईजी नोबल पुरस्कार नीदरलैण्ड व अमेरिका के दो अनुसंधानकर्ताओं को संयुक्त रूप से दिया गया था। इन शोधकर्ताओं ने एक मजेदार तथ्य खोज निकाला है कि पीठ की ओर खीची गई फोटो को देखकर चिम्पैंजी अपने साथी की पहचान कर सकते हैं। यह आश्चर्य की बात तो है ही क्योंकि हम पीठ की ओर से व्यक्ति को पहचानने में कई बार भारी भूल कर जाते हैं। तन्त्रिका विज्ञान का पुरस्कार चार अमेरिकी डॉक्टरों को दिया गया। इस कारण दिया गया कि उन अनुसंधानकर्ताओं ने पता लगाया था कि मस्तिष्क पर शोध करने वाले वैज्ञानिक अत्यन्त मँहगे उपकरणों से मरी हुई सोनोमोन मछली में मस्तिष्क गतिविधियाँ देख सकते हैं। पुरस्कार में अनुसंधानकर्ताओं की तारीफ है या आलोचना इसका फैसला आप ही करें।

वर्ष 2013 का चिकित्साशास्त्र का आईजी नोबेल जापान, ब्रिटेन व चीन के वैज्ञानिकों को प्रत्यारोपित हृदय वाले चूहों पर ऑपेरा के प्रभाव का अध्ययन करने पर दिया गया था। इन वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि हृदय प्रत्यारोपण के बाद वरदी ऑपेरा ला ट्रेविएटा सुनने वाले चूहों के बचने की संभावना अन्य ऑपेरा जैसे मोजार्ट सुनने वालों की तुलना में अधिक होती है। मजे की बात यह है कि पुरस्कार लेने के लिए सभी वैज्ञानिक चूहे का भेष धारण कर पीछे पूँछ लटकाएँ व हाथ में हृदय का प्रतिरूप उठाये आए थे।

मनुष्य पानी की सतह पर दौड़कर तालाब पार कर सकता है, इस वैज्ञानिक खोज को 2013 भौतिकी का आईजी नोबेल दिया गया था। आपको विश्वास नहीं हो रहा है आप स्वयं पानी पर दौड़कर पुष्टि कर सकते हैं। प्रयोग के लिए न्यून गुरुत्वाकर्षण की आदर्श स्थिति पृथ्वी पर प्राप्त करना कुछ मुश्किल होगा। इटली, रूस व स्वीट्जरलैण्ड के इन वैज्ञानिकों का कहना है पृथ्वी के उपग्रह चन्द्रमा पर किसी तालाब या स्वीमिंग पूल पर आप इस बात की पुष्टि कर सकेंगे।

भारत में लोग प्याज की कीमतें सुनकर ही आँसू बहाते रहते हैं। मगर वैज्ञानिक ने पता किया है कि प्याज में ऐसा क्या होता है जिसके कारण आँसू आते हैं? इसके अनके कारण वैज्ञानिकों द्वारा समय-समय पर समझाए जाते रहे हैं। जापान व जर्मनी के वैज्ञानिकों ने अनुसंधान कर पता लगाया है कि प्याज का रसायनशास्त्र इतना सरल नहीं जितना इसे समझा जाता रहा है। वर्ष 2013 का रसायनशास्त्र का आईजी नोबेल पुरस्कार जापान व जर्मनी के वैज्ञानिकों ने प्याज में एक नया एन्जाइम खोज कर उसे आँसू निकालने के लिए जिम्मेदार ठहराया है।

सराहना या आलोचना

आईजी नोबेल पुरस्कारों को देने का उद्देश्य किसी की सराहना करना ही नहीं होता। कई बार किसी को आलोचना करने के लिए भी उसे आईजी नोबेल प्रदान करने की घोषणा की जाती है। वर्ष 2013 में शान्ति के आईजी नोबेल का उपयोग व्यंग्यात्मक प्रहार की पुष्टि करता है। बेलारूस के राष्ट्रपति अलेक्जेण्डर लुकाशेन्को व वहाँ की पुलिस को शान्ति का आईजी नोबेल दिया गया था। राष्ट्रपति ने एक आदेश प्रसारित कर सार्वजनिक स्थान पर ताली बजाकर या हर्षनाद द्वारा किसी की सराहना करने पर रोक लगाई थी। बेलारूस की पुलिस ने एक सशस्त्र व्यक्ति को सार्वजनिक स्थान पर सराहना करने के अपराध में गिरफ्तार भी कर दिखाया था।

गोबर में पलने वाले गुबरिल्ले दिशा ज्ञान हेतु आकाश गंगा के प्रकाश का उपयोग करते हैं। गुबरिल्ले घर का मार्ग भूलने पर सितारों की मदद लेते हैं, किसी अन्य की नहीं। वैज्ञानिकों ने गुबरिल्लों के लिए विशेष प्रकार के चमकीले जूते बनाए हैं। उन जूतों को गुबरिल्लों को पहना कर यह पता किया कि गोबर की सतही जल के उड़ते रहने से वह ठण्डी रहती है। इस कारण सतह पर आने पर गुबरिल्लों के पैरों को ठंडक पहुँचती है। गुबरिल्ले अन्दर की गर्मी से बचने हेतु बार-बार गोबर की सतह पर आते रहते हैं। जूते पहनने पर गुबरिल्लों को सतह पर आना कम हो जाता है। वैज्ञानिकों ने यह भी बताया है कि जब गुबरिल्ले गोबर की सतह पर आते हैं तो वहाँ बैठ कर अपने मुँह व टाँगों की सफाई भी करते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि गुबरिल्ले एक बार चलना प्रारम्भ करते हैं तो फिर उन्हें रोकना मुश्किल होता है। कुछ गुबरिल्ले तो दौड़ भी लेते हैं। इन खोजों पर पाँच देशों आस्ट्रेलिया, स्वीडेन, दक्षिणी अफ्रिका, ब्रिटेन तथा जर्मनी के वैज्ञानिकों को खगोलशास्त्र व जीवविज्ञान का संयुक्त आईजी नोबेल 2013 दिया गया था।

सुरक्षित इंजीनियरिंग का पुरस्कार अमेरिका के अनुसंधानकर्ता गुस्आनो पिज्जो को दिया गया है। गुस्आनो पिज्जो ने उड़ते हवाई जहाज में अपहरणकर्ताओं के पकड़े जाने पर उनका पैकेट बनाकर पैराशूट के सहारे नीचे पुलिस के हवाले करने की विधि खोज निकाली है। कितनी राहत की बात है कि हवाज जहाज को वापस नीचे नहीं लाना होगा। यात्रियों का समय बरबाद नहीं होगा।

राम जाने गाय कब बैठेगी?

किसी घटना के होने की संभावना (प्रायिकता) को व्यक्त करने का आईजी नोबेल 2013 में ब्रिटेन, नीदरलैण्ड व कनाडा के तीन वैज्ञानिकों को दिया गया था। इन्होंने खोज निकाला है कि अधिक समय से बैठी गाय की उठने की संभावना भी अधिक होती है। इन वैज्ञानिकों ने यह भी खोज निकाला है कि गाय के उठने के बाद यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वह वापस कितने समय बाद बैठेगी?

वर्ष 2013 में मनोविज्ञान का आईजी नोबेल पाने वाले वैज्ञानिकों ने खोज निकाला है कि जब व्यक्ति के मन में यह विचार आता है कि वह नशे में है तो उसके साथ ही उसे यह विचार भी आता है कि वह बहुत आकर्षक है। पुरातत्व के आईजी नोबेल 2013 के विषय में जानने से पूर्व आप अपने मन को कुछ अटपटा सुनने हेतु तैयार कर लीजिए। संभव हो तो लौंग-ईलायची जैसा कुछ मुँह में रख लीजिए। हो सकता है कि इस विषय में सुनकर आपको उबकाई आ जावे। पुरातत्व का पुरस्कार अमेरिका व कनाडा के उस वैज्ञानिक दल को दिया गया है जिसने एक मृत गिलहरी को उबाल कर बिना चबाए साबुत निगल लिया। इतना ही नहीं, इसके बाद दल ने अपने मल का परीक्षण कर यह पता लगाया कि उनके पाचन तंत्र ने गिलहरी की कौन-कौन सी हड्डियों को पचा दिया था। क्या आप सोच सकते थे कि कोई वैज्ञानिक ऐसा अनुसंधान भी करेगा?

जनस्वास्थ्य का आईजी नोबेल पुरस्कार 2013 में थाइलैण्ड के वैज्ञानिकों को उनकी एक रिपोर्ट ''स्याम में लिंग अंगोच्छेदन की महामारी का शल्यचिकित्सकीय प्रबन्धन'' में सुझाई गई नई चिकित्सकीय तकनीकों के लिए दिया गया है। एक समय ऐसा भी रहा है जब स्याम (थाइलैण्ड) में पत्नियों द्वारा गहरी नींद में सोए अपने लम्पट पतियों के लिंग काट कर खिड़की से बाहर फेंक दिए जाते थे। रसोईघर के चाकू से पति के लिंग अंगोच्छेदन की घटनाओं ने स्याम में महामारी का रूप ले लिया था। लिंग को पुनः जोड़ने की प्रक्रिया में वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गई नई शल्य विधियों का उल्लेख उक्त रिपोर्ट में किया गया है। अंगोच्छेदन के एक प्रकरण में खिड़की के बाहर फेंका गया लिंग बतख द्वारा कुतर दिया गया था। इस एक प्रकरण को छोड़कर शेष सभी में सफलता प्राप्त हुई थी। स्याम की उस अजीब महामारी के विषय में दुनिया अधिक नहीं जान पाई, क्योंकि घर की लाज बचाने या अन्य किसी कारण से, किसी भी पीड़ित ने पुलिस में शिकायत नहीं की थी।

केले के छिलके पर आपका भी पैर कभी व कभी जरूर पड़ा होगा? ऐसी स्थिति में आपने अधिक से अधिक केले के छिलके को उठा कर कचरे के डिब्बे में डाल दिया होगा, मगर सब आप या मुझ जैसे नहीं होते। जापानी वैज्ञानिक कियोषी मबुची, केन्सेई तनाका, डाइची उचिजीमा तथा रीना साकाई का पैर केले के छिलके पर गिरा या नहीं यह मैं नहीं जानता, मगर अपने अनुसंधान के आधार पर उन्होंने आपको बतला दिया कि केले के छिलके सेव व टेंगेरीन के छिलके की तुलना में अधिक फिसलन भरे होते हैं। इन वैज्ञानिकों ने बहुत श्रम व साधन खर्च कर जूते के तले और केले के छिलके के मध्य तथा केले के छिलके और फर्श के बीच उपस्थित घर्षण बल की गणना की है। इनके कार्य की गम्भीरता का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि 60 बार मापने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँच सके कि केले के छिलके की चिकनाई का कारण छिलके में उपस्थित एक पॉलीसेकेरॉइड होता है। इस अस्वाभाविक विषय पर रोचक अनुसंधान करने पर इन्हें 2014 के भौतिकी के आईजी नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

अनियमित आकृतियों में परिचित चेहरों को देखना मानव मन की कमजोरी रही है। यही कारण है किसी को चाँद पर चर्खा कातती बुढ़िया, तो किसी को टोस्ट में जिसेस क्राइस्ट दिखाई देते हैं। विज्ञान की भाषा में इस स्थिति को फेस पैरेइडोलिया कहते हैं। चीन व कनाडा के वैज्ञानिकों ने फेस पैरेइडोलिया का कारण जानने का प्रयास किया है। इन वैज्ञानिकों ने स्वयं-सेवकों को पूर्णतः अनियमित आकृतियाँ यह कहकर दिखाई गई कि इनमें से 50 प्रतिशत पर विभिन्न चेहरे बने हुए हैं, आप उन चेहरों को पहचानिए। 37 प्रतिशत स्वयं-सेवकों ने उन अनियमित आकृतियों में विभिन्न परिचित चेहरों को देखने का दावा किया था।

अनियमित आकृतियाँ दिखाने के साथ ही स्वयं-सेवकों के मस्तिष्क की जाँच भी की गई। जाँच से पता चला कि आकृतियाँ देखते समय व्यक्ति के मस्तिष्क का वह भाग सक्रिय हुआ था जिसका संबंध चेहरों की पहचान करने से होता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि अनियमित आकृतियों में किसी परिचित चेहरे को देखने में कुछ भी गलत नहीं है। जब आप किसी वस्तु या चित्र को देखने के बहुत उत्सुक होते हैं तो 'फेस पैरेइडोलिया' पहचानने की गति को बढ़ा देता है और थोड़ी सी समानता दिखते ही मस्तिष्क में पूरा चित्र स्वतः ही उभर जाता है। जादू का खेल दिखाने वाले इस कमजोरी का लाभ उठा कर लोगों को वह दिखा देते हैं जो वास्तव में होता नहीं है। इसी अनुसंधान को तन्त्रिका विज्ञान का आईजी नोबेल पुरस्कार 2014 दिया गया था।

देरी से उठने के लाभ

सुबह जल्दी उठने के लाभ बताते कई अनुसंधान हुए हैं, मगर ब्रिटेन के एमी जोनेस, पीटर के जोनासव तथा मीन्ना लायोन्स ने सुबह देरी से उठने वाले पर अनुसंधान कर, इस वर्ष का आईजी नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया है। इस दल ने यह ज्ञान किया कि सुबह देरी से उठने वाले लोग, जल्दी उठने वालों की तुलना में अधिक आत्म प्रशंसक, दक्षता से कार्य करने वाले तथा मनोविकृत होते हैं। जोनेस का कहना है कि इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति सफल होने पर अपनी मन पसन्द नौकरी पाते हैं तथा नौकरी के उच्चतम स्तर पर पहुँचते हैं। इनका वैवाहिक जीवन भी प्रसन्नता भरा होता है। असफलता की स्थिति में ये जेल में जीवन बिताते हैं। पुरस्कार की घोषणा पर एमी जोनेस को बहुत आश्चर्य हुआ। जोनेस ने आईजी नोबेल पुरस्कार के विषय में पहले नहीं सुन रखा था।

बिल्ली और अवसाद

सार्वजनिक स्वास्थ्य के आईजी नोबेल पुरस्कार 2014 के समाचार पढ़कर कुत्ते पालने वाले यह दावा कर सकते हैं कि उनका मानसिक स्वास्थ्य बिल्ली पालने वालों से बेहतर होता है। मिशिगन विश्वविद्यालय के मेडिकल स्कूल के जारोस्लेव फ्लेग्र, जैन हाव्लीकेक, जित्का हानुसोवा लिंडोवा, डेविड हानाउर, नरेन रामकृष्णन तथा लिसा सेयफ्राइड ने अपने अनुसंधान में पाया कि बिल्ली काटने के 750 रोगियों में 41 प्रतिशत अवसाद के शिकार पाए गए। सामान्यतः अवसाद रोगियों का प्रतिशत 9 होता है। कुत्ता काटे लोगों में भी 29 प्रतिशत ही अवसाद ग्रसित होते हैं। सामान्यतया कोई भी अनुसंधान किसी प्रश्न का हल ढूँढ़ता है मगर इनके अनुसंधान ने एक यह प्रश्न खड़ा किया है कि बिल्ली पालने से अवसाद होता है या अवसाद ग्रस्त लोग बिल्ली पालते हैं? आप बिल्ली पालने से पहले तीन बार सोच लें कि बिल्ली पालने का परिणाम अवसाद हो सकता है।

कुत्ते और कुतुबनुमा

जर्मनी व चेक गणतंत्र के वैज्ञानिकों ने हायनेक बुर्डा के नेतृत्व में अनुसंधान कर पता लगाया है कि मल-मूत्र विसर्जित करते समय कुत्ते अपने शरीर को उत्तर दक्षिण चुम्बकीय अक्ष की बल रेखाओं के समान्तर रखते हैं। 37 किस्मों के 70 कुत्तों की मल-मूत्र विसर्जन की शारीरिक स्थितियों का सतर्कता पूर्वक अध्ययन करने पर यह तथ्य सामने आया है। निरन्तर दो वर्ष तक किए अध्ययन से कई नए प्रश्न उत्पन्न हो गए है। एक प्रश्न यह है कि ऐसा करने से कुत्तों को क्या लाभ होता हैं? यह अनुसंधान वैज्ञानिकों को यह सोचने पर मजबूर करता है कि चुम्बकीय तूफान भी जानवरों के मस्तिष्क को प्रभावित करता होगा?

सुन्दर कला का सुन्दर प्रभाव

विज्ञान व कला दो अलग विषय माने गए हैं, मगर इस विज्ञान पुरस्कार ने कला के महत्व को प्रतिपादित किया है। वैज्ञानिक मरिना डी टोमास्को, माइकेल सारडारो तथा पाओलो लिविआ ने जाना है कि सुन्दर चित्र देखते समय व्यक्ति को लेजर किरणों से तकलीफ कम अनुभव होती है, जबकि भद्दा चित्र देखते समय उतनी ही लेजर किरणें अधिक कष्ट उत्पन्न करती हैं। अपने अध्ययन हेतु अनुसंधानकर्त्ताओं ने शक्तिशाली लेजर किरणों का उपयोग किया था।

कैसी भी हो, आय तो आय है

कई बार आईजी नोबेल पुरस्कार का उपयोग किसी देश या संस्था के कार्य पर व्यंग्य करने हेतु भी किया जाता है। यूरोपियन यूनियन ने सदस्य देशों को राष्ट्रीय आमदनी बढ़ाने के आदेश दिए हैं। उस आदेश की अनुपालना हेतु इटली के राष्ट्रीय सांख्यिकी संस्थान ने इटली सरकार को सुझाव दिया है कि यदि वेश्यावृति, अनैतिक दवा व्यापार, स्मगलिंग जैसे गैर-कानूनी तरीकों से प्राप्त धन को भी राष्ट्रीय आय में जोड़ दिया जावे तो देश की राष्ट्रीय आमदनी बिना प्रयास के तुरन्त बढ़ जाएगी। आय बढ़ाने के इस सफल नुक्से को ढूँढ़ने हेतु सम्पूर्ण इटली सरकार को आईजी नोबेल पुरस्कार 2014 से सम्मानित (अपमानित?) किया गया था।

ओल्ड इज गोल्ड

वर्ष 2014 का मेडिसिन का आईजी नोबेल पुरस्कार अमेरिका व भारत के वैज्ञानिकों को अनियंत्रित नक्सीर रोकने हेतु नमक में सूखे सूअर माँस का उपयोग करने पर दिया गया है। डॉ0 सोनल सारैया तथा उनके साथी चिकित्साशास्त्र के सभी नुक्से काम में लेने के बाद भी एक रोगी का नक्सीर नहीं रोक पाए थे। मरता क्या नहीं करता की तर्ज पर उन चिकित्साशास्त्रियों ने आदिवासियों द्वारा अपनाए जाने वाले नुक्से का उपयोग करने से परहेज नहीं किया। जहाँ आधुनिक चिकित्सा फेल हुई वहाँ परम्परा पास हो गई। डॉ0 सोनल सारैया का कहना है कि सामान्य नक्सीर के मामले में सूखे सूअर माँस का उपयोग नहीं किया जा सकता। अनियंत्रित नक्सीर के उस रोगी को एक विशेष रोग ग्लान्जमान थ्रोम्बास्थेनिया था, उस कारण चिकित्साशास्त्र के सभी उपाय असफल हो गए थे। मजबूरी में प्राचीन उपचार को अपनाना पड़ा था। डॉ0 सोनल सारैया सफलता के कारण को लेकर स्पष्ट नहीं हैं। उनका कहना है कि सम्भवतः सूखे सूअर माँस में रक्तस्राव रोकने वाला कोई कारक उपस्थित होगा या फिर नमक के कारण सफलता मिली होगी। एक बात तय है कि इस अनुसंधान ने सिद्ध कर दिया कि चिकित्सा के आदिम नुक्से भी अचूक हो सकते हैं।

एइजिल रेइमेरस तथा इफ्टेस्टोल को रेण्डीयर के व्यवहार की जाँच के लिए 2014 वर्ष का आईजी नोबेल पुरस्कार दिया गया था। इन वैज्ञानिकों ने पता किया है कि रेण्डीयर का व्यवहार ध्रुवीय भालू तथा सामान्य मनुष्य के प्रति अलग-अलग होता है। प्रयोग में वैज्ञानिकों ने एक व्यक्ति को पहले सामान्य मानवी रूप में तथा बाद में ध्रुवीय भालू के रूप में रेण्डीयर की ओर भेजा। प्रयोग में पाया गया कि व्यक्ति को गहरे रंग के मानवीय कपड़े पहने देखने की तुलना में ध्रुवीय भालू के रूप में देखने पर रेण्डीयर दुगनी दूरी से ही छलांगे मारने लगता है।

मल और पोषण

वर्ष 2014 के कार्यिकी के आईजी नोबेल पुरस्कार के विषय को जानकर आप अवश्य छीः छीः करने लगेंगे। वैज्ञानिकों के इस दल ने बच्चों के मल से निकाले गए जीवाणुओं का उपयोग खाद्य पदार्थों को पौष्टिक एवं स्वादिष्ट बनाने के लिए किया है। अनाज से फर्मेन्टेड भोज्य पदार्थ बनाने में जीवाणुओं का प्रयोग प्राचीनकाल से होता रहा है। स्पेन के वैज्ञानिकों ने बताया है कि प्रोबायोटिक जीवाणुओं का उपयोग फर्मेन्टेड डिब्बा बंद माँसाहारी व्यंजन बनाने में भी किया जा सकता है। जिन लोगों को दुग्ध उत्पाद का उपयोग वर्जित होता है वे भी इनका लाभ उठा सकते हैं।

लैक्टिक अम्ल जीवाणु आन्त्र के अम्लीय वातावरण में भी जीवित रह सकते हैं। पुरस्कृत वैज्ञानिकों राक्यूएल रुबिनो, अन्ना जोफ्रे, बेलेन मार्टिन, टेरेसा अयमेरिक तथा मारगारिटा गर्रिगा ने प्रोबायोटिक उत्पादन में प्रारम्भक की भूमिका निभाने वाले जीवाणुओं के लक्षणों को सूचीबद्ध किया है।

60 सेकेण्ड में रिपोर्टिंग

आईजी नोबेल पुरस्कार वितरण समारोह में अनेक परम्पराओं का निर्वाह बहुत ही मनोरंजक तरीके से किया जाता है। प्रत्येक विजेताओं को

अपने अनुसंधान के विषय में बताने हेतु मात्र 60 सेकेण्ड का समय दिया जाता है। इस कारण समारोह में आने से पूर्व वैज्ञानिकों को अपनी बात कहने का पूरा अभ्यास करना होता है। एक 8 वर्ष की बच्ची को मिस स्वीटी पू बनाकर दर्शकों के मध्य बैठाया जाता है। किसी वैज्ञानिक द्वारा अधिक समय लगाने पर मिस स्वीटी पू चिल्लाकर कहती है बन्द करो, बन्द करो, मैं बोर हो गई हूँ। मंच के सामने बैठे दर्शक कागज के हवाई जहाज बनाकर मंच की ओर फेकते हैं। आयोजक अपने विज्ञापन में ही दर्शकों से हवाई जहाज बनाने हेतु पर्याप्त से अधिक कागज (दूसरों के देने हेतु) साथ लाने को कहते हैं।

हवाई जहाज, फेकने के दो निर्धारित सत्र होते हैं। कार्यक्रम का संपादन वैज्ञानिक विनोद पत्रिका ''एनल्स ऑफ इम्प्रोबेबल रिसर्च'' के संपादक मार्क अब्राहम करते हैं। परेड ऑफ इग्नीटरीज के रूप में विजेता वैज्ञानिक अपने कई समर्थकों के साथ समारोह स्थल पर पहुँचते हैं। ऑपेरा गायकों के सानिध्य में होने वाला यह समारोह विज्ञान जगत की अद्भुत वार्षिक घटना होती है।

कुछ लोग आईजी नोबल पुरस्कारों को वास्तविक नोबल पुरस्कारों की पैरोड़ी कहते हैं, मगर ऐसा कहना उचित नहीं है। इन पुरस्कारों के लिए चुने गए अनुसंधान का वैज्ञानिक महत्व वास्तविक नोबल पुरस्कार प्राप्त करने वाले अनुसंधानों के अनुरूप ही होता है। इनके विषय आम सोच के दायरे से कुछ अलग होते हैं। लीक से हटकर कार्य करने वालों का सम्मान करना इस आयोजन का एक उद्देश्य है। झाड़ू अधिपति की उपाधि से विभूषित भौतिकी के प्रोफेसर रोय ग्लाउबर झाड़ू लगाकर मंच पर फेंके गए कागज के हवाई जहाजों को उठाते हैं। रोय ग्लाउबर को 2005 का भौतिकी का नोबल पुरस्कार मिल चुका है।

आईजी नोबेल पुरस्कार पाने वाले कई अनुसंधान जनहितकारी भी सिद्ध हो चुके हैं। आईजी नोबेल पुरस्कार देने के लिए कई पूर्व नोबेल पुरस्कार विजेता कार्यक्रम में उपस्थित रहते हैं।

आयोजकों का मूल उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना नहीं है अपितु विज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करना है। आयोजक चाहते हैं अधिक लोग विज्ञान व प्रौद्योगिकी का अध्ययन करने को प्रेरित हों। समारोह का अन्त इस शुभकामना के साथ होता है कि यदि आप पुरस्कृत नहीं हुए तो ..... और यदि पुरस्कृत हुए है तो विशेष रूप से ... अगले वर्ष भाग्य आपका साथ दे।

कार्बन फुटप्रिंट को घटाकर अपनी धरती को सँवारें

मनीष मोहन गोरे*

हमारी धरती जिन तत्वों से मिलकर बनी है, उनमें कार्बन एक महत्वपूर्ण तत्व होता है। हमारी प्रकृति, सभी जीवों और हम मनुष्यों के शरीर के निर्माण में भी नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के साथ कार्बन की भूमिका अहम होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमारे ग्रह, प्रकृति और हम सभी जीवों में एक समान तत्व मौजूद हैं। ये सभी तत्व एक नियत और संतुलित मात्रा एवं अनुपात में विद्यमान रहते हैं मगर जब इनकी मात्रा और अनुपात में प्राकृतिक संतुलन बिगड़ता है तब हमारे अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो जाता है।

पर्यावरण में कार्बन की अधिक मात्रा से ग्रीनहाउस प्रभाव या जलवायु परिवर्तन की समस्या से आप सभी पहले से परिचित होंगे। इस संकट में कार्बन की प्रमुख भूमिका होने के कारण इस कार्बन गैस को ग्रीनहाउस गैस भी कहते हैं। किसी संस्था, घटना, उत्पाद या व्यक्ति के द्वारा होने वाले ग्रीन हाउस गैस के कुल उत्सर्जन को 'कार्बन फुटप्रिंट' नाम दिया गया है। ग्रीनहाउस प्रभाव को छोटी सीमाओं के भीतर मापने की इस विधि में चिन्हित आबादी, संस्था, प्रणाली या गतिविधि के सभी स्रोतों में कार्बन डाइआक्साइड और मीथेन उत्सर्जनों की कुल मात्रा का मापन किया जाता है। समझने में आसानी के लिहाज से आमतौर पर प्रायः कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा के रूप में कार्बन फुटप्रिंट को व्यक्त किया जता है। परिवहन, उत्पादन, भोजन, ईंधन, उत्पाद, लकड़ी, सड़क और इमारतों के माध्यम से ग्रीनहाउस गैसें उत्सर्जित होती हैं।

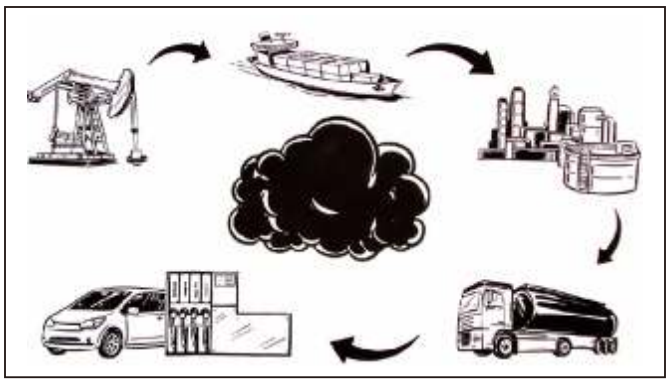

'कार्बन फुटप्रिंट' शब्द की पृष्ठभूमि

'कार्बन फुटप्रिंट' शब्द के सर्वप्रथम प्रयोग की पृष्ठभूमि में 1990 के दशक में रीस और वाकरनागेल द्वारा प्रयुक्त 'इकोलाजिकल फुटप्रिंट' शब्द आता है जिसका अर्थ होता है पृथ्वी पर मनुष्य को अपने स्तर पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग करने में सैद्धांतिक रूप से कितनी 'पृथ्वी' की जरूरत होगी, इसका अनुमान इकोलाजिकल फुटप्रिंट से लगाया जाता है। पर्यावरण वैज्ञानिक अनिंदिता मित्रा ने अस्थायी ऊर्जा प्रयोग को एक सूचक के रूप में कार्बन फुटप्रिंट के मापन की विधि सुझाया जिसमें कार्बन के प्रयोग का मापन किया जाता है। वास्तव में, कार्बन फुटप्रिंट के द्वारा जलवायु परिवर्तन के कारक गैसों के प्रत्यक्ष उत्सर्जन का मापन किया जाता है इसलिए यह इकोलाजिकल फुटप्रिंट की अपेक्षा अधिक सटीक प्रक्रिया है।

कैसे मापा जाता है कार्बन फुटप्रिंट

किसी व्यक्ति, संस्था या देश के कार्बन फुटप्रिंट की मापन प्रक्रिया को कार्बन एकाउंटिंग कहते हैं और इसमें एक जीएचजी (ग्रीनहाउस गैस) उत्सर्जन आंकलन अथवा अन्य गणना प्रक्रियाओं को प्रयोग किया जाता है। एक बार कार्बन फुटप्रिंट का आकार मालूम हो जाने के बाद प्रौद्योगिकी विकास, ग्रीन नीति के क्रियान्वय या ग्रीन पब्लिक प्राइवेट प्रोक्योरमेंट, कार्बन कैप्चर, उपभोग रणनीतियों और कार्बन आफसेटिंग (सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा या पुनर्वनीकरण जैसी वैकल्पिक रणनीतियों के माध्यम से कार्बन फुटप्रिंट का न्यूनीकरण) जैसी विधियों के द्वारा इसे कम किया जा सकता है।

आनलाइन भी विभिन्न कार्बन फुटप्रिंट कैलकुलेटर उपलब्ध हैं जिसमें आपके आहार, परिवहन के तरीके, घर के आकार, विद्युत उपकरणों के प्रयोग, शापिंग और मनोरंजन गतिविधियों आदि के बारे में विस्तार से

*विज्ञान प्रसार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (भारत सरकार), ए-50, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर-62, नोएडा-201 309.

विवरण प्राप्त किये जाते हैं। इस विवरण के आधार पर वेबसाइट फिर आपके कार्बन फुटप्रिंट की गणना करके बताता है।

मानव आबादी, आर्थिक गतिविधियाँ और किसी देश की कार्बन उत्सर्जन तीव्रता का कार्बन फुटप्रिंट पर सबसे अधिक प्रभाव होता है इसलिए कार्बन उत्सर्जन इन दिशाओं में संतुलन-संयम की दरकार है। कार्बन फुटप्रिंट को घटाने के लिए उपरोक्त कारकों को लक्ष्य करना आवश्यक है। चूँकि परिवहन (ड्राइविंग, उड़ान और यातायात) कार्बन उत्सर्जन का सबसे बड़ा स्रोत है इसलिए कार्बन उत्सर्जन ईंधन पर निर्भरता में कमी लाकर कार्बन फुटप्रिंट में कमी लाई जा सकती है।

हाइड्रोइलेक्ट्रिक, वायु और नाभिकीय शक्ति से सबसे कम कार्बन डाइआक्साइड प्रति किलोवाट-घंटा उत्सर्जित होता है। ये आंकड़े दुर्घटना या आतंकी गतिविधि से परे हैं। वायु और सौर ऊर्जा रख-रखाव के दौरान मामूली मात्रा में कार्बन फुटप्रिंट उत्पन्न होता है।

उत्पादों के निर्माणकारी तत्वों में बदलाव लाकर एवं उत्पादों की संख्या और आकार पर नियंत्रण रखकर कार्बन फुटप्रिंट को घटाया जा सकता है। कार्बन उत्सर्जन करने वाले उत्पादों का जितना बड़ा आकार होगा, उसका कार्बन फुटप्रिंट उतना ही अधिक होगा। जूस कार्टन एक प्रकार के कीटाणुरहित कार्टन से निर्मित होता है, कुछ पानी की बोतलें ग्लास से बनाई जाती हैं और बियर की कैन एल्युमीनियम से बनाई जाती हैं। इस तरह के प्रयासों से कार्बन फुटप्रिंट को कम किया जा सकता है।

हमारे दैनिक जीवन में कार्बन फुट प्रिंट

हम अपने दैनिक जीवन में विद्युत उपकरणों, परिवहन, आहार और कपड़े आदि के उपयोग में तर्कसंगत बदलाव लाकर अपने व्यक्तिगत स्तर पर कार्बन फुटप्रिंट में महत्वणूर्ण कमी ला सकते हैं।

खाद्य पदार्थों के प्रसंस्करण (फूड प्रोसेसिंग) में विभिन्न प्रक्रियाओं के दौरान अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा की खपत होती है जिसके फलस्वरूप कार्बन का उत्सर्जन होता है और इससे कार्बन फुटप्रिंट में बढ़ोतरी होती है। बोतलबंद पानी भी पैकेज्ड हानिकारक एवं अपव्ययी उत्पाद होता है। इसके उत्पादन, परिवहन और निपटान में बड़ी मात्रा में ऊर्जा खपत होती है। वहीं दूसरी ओर, एक्टिव कार्बन फिल्टर से उपचारित पीने वाले शुद्ध नल का पानी एक निम्न कार्बन विकल्प होता है।

अपने दैनिक आहार में अधिकतर स्वदेशी और परंपरागत भोजन को अपनाकर हम कार्बन फुटप्रिट को कम कर सकते हैं। औद्योगिक रूप से

और प्रोसेस्ड आहार को कम से कम ग्रहण करके तथा स्थानीय एवं मौसमी आहार को अपनाकर कार्बन फुटप्रिंट में कमी लायी जा सकती है। जरूरत के अनुसार आहार ग्रहण करना भी यहाँ एक प्रासंगिक बात है क्योंकि भोजन को व्यर्थ फेंकना एक तरह से ऊर्जा का क्षय है।

कार्बन उत्सर्जन कम करने की दिशा में भारत की प्रतिबद्धता

वर्ष 2015 में ऊर्जा संबंधी कार्बन उत्सर्जक देशों में चीन और अमेरिका के बाद भारत दुनिया में तीसरे पायदान पर आ पहुँचा है। यह एक गंभीर चिंता का विषय है। 2014 में भारत दुनिया का चौथा सबसे बड़ा कार्बन उत्सर्जक देश था और यूरोपीय संघ तीसरे स्थान पर था। दुनिया के 10 बड़े कार्बन उत्सर्जक देशों के उत्सर्जन प्रतिशत को नीचे दिये गये तालिका में दर्शाया गया है।

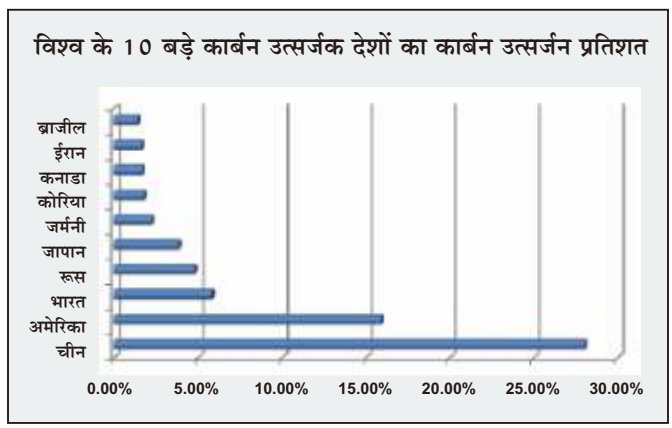

तालिका : विश्व के 10 बड़े कार्बन उत्सर्जन देशों का कार्बन उत्सर्जन प्रतिशत

क्र.सं.	देश	प्रतिशत
1.	चीन	28.03%
2.	अमेरीका	15.90%
3.	भारत	5.81%
4.	रूस	4.79%
5.	जापान	3.84%
6.	जर्मनी	2.23%
7.	कोरिया	1.78%
8.	कनाडा	1.67%
9.	ईरान	1.63%
10.	ब्राजील	1.41%

दिसम्बर 2015 में आयोजित पेरिस जलवायु सम्मेलन में भारत ने यह घोषणा किया कि वर्ष 2030 तक वह कार्बन उत्सर्जन की दर में 35 प्रतिशत तक की कमी लायेगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत ने वायु और सौर ऊर्जा जैसे महत्वपूर्ण नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के अधिकाधिक उपयोग का वचन इस विश्व मंच पर दिया। भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने इस अवसर पर यह भी उम्मीद जताई कि सौर ऊर्जा के क्षेत्र में निवेशों के फलस्वरूप आने वाले वर्षों में 30 करोड़ भारतीयों को विश्वसनीय और कार्बन के अल्प प्रयोग वाली विद्युत हासिल हो सकेगी। इस सम्मेलन में 190 देशों से पधारे वैज्ञानिकों ने एक स्वर में कहा कि

पृथ्वी ग्रह को विनाश से बचाने के लिए इसके तापमान में हो रही निरंतर वृद्धि को रोकना बेहद जरूरी है और पूरी दुनिया को साथ मिलकर इसके लिए प्रयत्न करने होंगे।

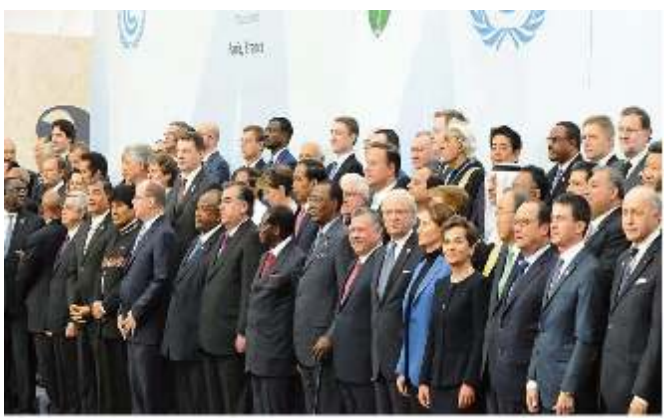

अपनी धरती को बचाने के लिए कार्बन फुटप्रिंट घटाना अहम

कार्बन उत्सर्जन को कम करना, पुनरुपयोग करना, पुनर्चक्रण करना और इन्कार करना कार्बन फुटप्रिंट को कम करने के सबसे उपयुक्त तरीके होते हैं। उत्पाद या संसाधन का पुनर्चक्रण सर्वोपयुक्त विधि है। जैसे दैनिक उपयोग के पानी, चाय, काफी के बर्तन को दोबारा उपयोग करना उचित होता है बजाय डिस्पोजेबल बर्तन के प्रयोग के। जिन पदार्थों और उत्पादों को पुनरुपयोग करना संभव नहीं हो, उन्हें पुनर्चक्रण करना एक बेहतर विकल्प है।

स्वयं के मोटरचालित वाहन के बजाय पैदल यात्रा, साइकिलिंग, बाइकिंग, सार्वजनिक परिवहन के साधनों के प्रयोग या कारपुलिंग करना आसान विकल्प होते हैं। इससे जीवाश्म ईंधन की बचत के अलावा पर्यावरण रक्षा भी होगी। एयर कंडीशनिंग और हीटर/ब्लोअर के न्यूनतम प्रयोग से भी कार्बन फुटप्रिंट में कमी लाई जा सकती है। इनके स्थान पर प्राकृतिक और कम कार्बन फुटप्रिंट वाले विकल्पों को अपनाये जाने की जरूरत है।

आहार के उचित विकल्पों का व्यक्ति के कार्बन फुटप्रिंट पर व्यापक प्रभाव होता है। प्रोटीन के जंतु स्रोत (विशेषतौर पर रेड मीट), प्रासेस्ड खाद्य पदार्थ (अधिकतर फास्ट फूड) और ऐसे खाद्य पदार्थ जिन्हें लम्बी दूरियाँ तय करके एक से दूसरे स्थान तक वाहनों से पहुँचाना होता है, वे सभी उच्च कार्बन आहार की श्रेणी में आते हैं। स्थानीय और मौसमी पौधों पर आधारित आहार निम्न कार्बन फुटप्रिंट वाले होते हैं, जिन्हें अपनाया जाना अपनी पृथ्वी को बचाने के लिए आवश्यक हो गया है।

वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा असंतुलित ढंग से अधिक होने के कारण हमारी पृथ्वी पर अनेक प्रकार के संकट आ गये हैं। जलवायु परिवर्तन इनमें से एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में हमारे सामने है। कार्बन फुटप्रिंट में वृद्धि इस समस्या की एक प्रमुख वजह होती है जिसे हम अपनी जीवन शैली और व्यवहार में परिवर्तन लाकर कम कर सकते हैं। अपनी धरती पर मौजूद समस्त प्राणियों में हम सर्वश्रेष्ठ और सबसे बुद्धिमान हैं इसलिए हमें अपने ही हाथों अपने जीवनदायी ग्रह और प्रकृति को नुकसान पहुँचाना अव्यवहारिक तथा अनुचित है। हम कार्बन फुटप्रिंट घटाकर अपनी पृथ्वी को सुरक्षित और स्वस्थ रखेंगे, आइये, इसका प्रण करते हैं।

पुष्प निर्जलीकरण की विधि एवं गृह उद्योग में उपयोग

अतुल बत्रा*

पुष्प अपनी सुगन्ध एवं सुन्दरता के कारण मनुष्य को प्राचीन काल से आकर्षित करते रहे हैं। भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है, अतः पुष्पों का उपयोग भोज्य पदार्थों के साथ पूजा अर्चना आदि में होता रहा है, यहाँ तक की अलग-अलग देवी-देवताओं को भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्प प्रिय माने जाते हैं। पुष्प एवं अन्य पादप अंगों को सुखाकर खाद्यान्न एवं मसाले के रूप में सदियों से प्रयोग किया जा रहा है। प्राचीनकाल से सुखाये जाने वाले पुष्पों में मुख्य रूप से केसर, महुआ, पलाश आदि प्रमुख हैं। विगत वर्षों में पुष्प कृषि का व्यावसायिक स्वरूप अपार संभावनाओं के साथ सामने आया है। विश्व के अनेक देश ताजा फूलों के निर्यात द्वारा अच्छी आर्थिक उपलब्धि प्राप्त कर रहे हैं।

ताजा फूलों के व्यापार में अनेक प्रकार की समस्याएँ आती हैं। यूरोपीय देशों की तुलना में आज भी हमारे देश में पर्याप्त तकनीक ज्ञान एवं पर्याप्त विकास नहीं हुआ है, इसीलिए पुष्प कृषि व्यवसाय में भारत का योगदान नगण्य (0.1 प्रतिशत) है जिसमें से पुष्प निर्यात में निर्जलीकृत पुष्पों का हिस्सा 75 प्रतिशत है। ब्रिटेन में सूखे फूलों का सबसे बड़ा बाजार है तथा पिछले 2 दशक से जर्मनी, इटली, नीदरलैण्ड एवं स्पेन के बाद भारत से सूखे फूलों का सबसे बड़ा आयातक था। विश्व में सूखे फूलों का सबसे बड़ा वितरक भारत, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैण्ड एवं चीन है। भारत के घरेलू बाजार की तुलना में पश्चिमी देशों के बाजार से कई गुना अधिक फायदा निर्जलीकृत पुष्प व्यापार में कमाया जा सकता है।

पुष्प, पत्तियाँ तथा पौधों के अन्य भागों में 75 प्रतिशत या इससे भी अधिक जल की मात्रा होती है। यही नमी या जल इनको जीवाणुओं एवं कवकों के आक्रमण होने पर सड़ाता है। जल का तीव्र, अनियंत्रित वाष्पन पृष्ठतनावजनित आकार एवं रंग के परिवर्तन का मूल कारण है। अतः रंग, आकार, सुन्दरता के संरक्षण एवं भौतिक क्षरण से बचाने के लिए पुष्प तथा अन्य पादप अंगों को अत्यन्त सावधानीपूर्वक सुखाते हैं।

निर्जलीकरण प्रक्रिया

निर्जलीकरण का अर्थ है कि पुष्पों को कृत्रिम रूप से जनित गर्मी द्वारा नियंत्रित ताप, आर्द्रता एवं वायु प्रवाह पर सुखाना। पुष्पों एवं पत्तियों को सामान्यतः निम्नलिखिति विधियों द्वारा सुखाया जाता है–

अन्तःस्थापना (इम्बेडिंग) द्वारा निर्जलीकरण

वायु में निर्जलीकरण से होने वाली सिकुड़न एवं अन्य आकारकीय परिवर्तनों से बचाव के लिए कम समय (24 से 48 घंटे) में फूल एवं पत्तियों को सावधानीपूर्वक किसी पात्र में बालू या सिलिका जेल में इम्बेड (ढक) कर ओवेन (भट्ठी) में उचित ताप पर सुखाते हैं इस प्रक्रिया में फूल का मूल आकार अन्य गुण भी बने रहते हैं एवं उत्पाद की गुणवत्ता भी बहुत अच्छी होती है। यह विधि लाभप्रद है क्योंकि मौसम की प्रक्रिया पर प्रभाव बिल्कुल नहीं पड़ता है।

विभिन्न प्रकार के निर्जलीकृत पुष्प

अन्तःस्थापना (इम्बेडिंग) की विधि

इम्बेडिंग पुष्प निर्जलीकरण प्रक्रिया का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। प्रायः बाल या सिलिकाजेल का उपयोग निर्जलीकरण पदार्थ के रूप में किया जाता है। इस प्रक्रिया हेतु डस्टबिन, प्लास्टिक, मिट्टी के पात्र का उपयोग करते हैं। पात्र का आकार इम्बेडिंग में प्रयुक्त फूल, पत्ती के आकार के अनुरूप लेते हैं। उपयुक्त पुष्प या पादप अंग का चुनाव अपनी पसन्द के अनुसार अलग-अलग हो सकता है। जैसे- पुष्प, तने के साथ पुष्प, पत्ती, टहनी या फिर पूरा (किन्तु छोटा) पौधा आदि।

- अकेले पुष्प की इम्बेडिंग
- तनायुक्त पुष्प की इम्बेडिंग
- पुष्पयुक्त शाखा की इम्बेडिंग

*पुष्प कृषि अनुभाग, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद – राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-226 001.

फूल पत्तियों को दबाकर हरबेरियम विधि से सुखाना

दबाकर सुखाये गये फूल पत्तियों का उपयोग, ग्रीटिंग कार्ड, वाल प्लेट, टेबेल टाप्स या घरों की अन्तः सजावट हेतु लैण्ड स्केप कलाकृतियों के बनाने में करते हैं। इस विधि का प्रयोग वैज्ञानिक फूल पत्तियों या अन्य पादप अंगों की हरबेरियम सीट बनाने के लिए करते हैं। फूल पत्तियों को अखबार या सोख्ता कागज की सीट की तहों के बीच में रखते हैं। इस तरह की तीन-चार तहों को दो कोरूगेटेड बोर्ड के बीच में रखते हैं। बहुत सी कोरूगेटेड सीट की तहों को एक के ऊपर एक रखकर मोटी तह बना लेते हैं। इन तहों को दो लकड़ी के फ्रेम (प्लांटप्रेस) के बीच में रखकर पट्टे से कसकर बाँध देते हैं। फ्रेम को बाँधने में यह ध्यान देने योग्य बात है कि कसने में फूल पत्ती को नुकसान न पहुँचे। इस बंडल को रोज धूप में रखते हैं। यह विधि इसलिए अधिक संतोषजनक है क्योंकि कोरूगेटेड बोर्ड के उपयोग के कारण हवा का आवागमन बना रहता है तथा जल वाष्प आसानी से मुक्त होती है। यदि बंडल को खड़ा रखा जाय तो नमी और आसानी से मुक्त होती है। गर्मी में तथा शुष्क मौसम में कम समय में अच्छा निर्जलीकरण हो जाता है, परन्तु आर्द्र या नम वातावरण में अधिक समय लगता है तथा उत्पाद की गुणवत्ता भी कम अच्छी होती है। उक्त तहों को यदि उपयुक्त समय एवं उचित ताप पर ओवेन में रखा जाये तो निर्जलीकरण के समय को कम किया जा सकता है। बार-बार शोषक पर्तों को भी बदलने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सोख्ता कागज, अखबार सभी वस्तुयें स्वयं ओवेन में सूख जाती हैं। इससे श्रम की काफी बचत होती है तथा उत्पाद की गुणवत्ता सबसे अच्छी होती है।

एक्रोक्लाइनम (पेपर फ्लावर), बोगेनविलिया, कैन्डीटफ्ट, जरबेरा (पीला, नारंगी, गुलाबी तथा लाल), हेलीक्राइसम, इक्जोरा, स्टेटिस गुलाबी, पीला, नीला, सफेद, लेवेन्डर पुष्प, एनुएल क्राइसेन्थिमस को दबाकर एवं अन्तःस्थापना द्वारा ओवेन में $45^{\circ}C$ /48 घंटा सुखाया जाता है। गेंदा (मेरी गोल्ड) को अन्तःस्थापना द्वारा ओवेन में $48^{\circ}C/72$ घंटा सुखाया जाता है। नरगिस पुष्प को ओवेन में $48^{\circ}C/72$ घंटा सुखाया जाता है। निम्फिया पीले व नीले फूल को अर्धखुली अवस्था में संग्रहीत पुष्प अन्तःस्थापना द्वारा ओवेन में $48^{\circ}C/120$ घंटा सुखाया जाता है।

पुष्प निर्जलीकरण के महत्वपूर्ण बिन्दु

अच्छे परिणाम एवं गुणवत्ता युक्त उत्पाद प्राप्त करने हेतु निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है-

1. पौधे या पादप अंगों का संग्रह सिंचाई के एक या दो दिन बाद करना चाहिए जिससे फूल-पत्तियों में नमी की मात्रा अधिक न हो।
2. पौधे से संग्रह ओस सूखने या सतह की नमी सूखने के बाद करें।
3. पुष्प एवं पत्तियों का संग्रह शुष्क मौसम में एवं धूप में किया जायें।
4. फूल-पत्तियों पर यदि नमी दिखे तो सोख्ता कागज से सुखा लिया जाये।
5. सदैव ताजा फल-पत्ती ही निर्जलीकरण के लिए संग्रह करें।
6. फूल की सभी अवस्था (स्टेज) आवश्यकतानुसार संग्रह करें।
7. फूल पत्तियों को तोड़ने के तुरन्त बाद इम्बेड करना चाहिए अन्यथा मुरझाने से उनके आकार बिगड़ सकते हैं तथा सतह पर झुर्रियाँ भी पड़ सकती हैं।
8. एक समय में निर्जलीकरण के लिए एक ही प्रकार के फूल का चयन करें।
9. इम्बेडिंग या प्रेसिंग का दिनांक एवं समय अवश्य अंकित करें।
10. प्रेसिंग के लिए फूल पत्ती को बराबर ढंग से सोख्ता कागज पर फैलायें जिससे हर स्थान पर बराबर दबाव पड़े।
11. फूल या पत्ती की सतह पर चिपके आवांछित धूल या कणों को हटाने के लिए मुलायम ब्रश का इस्तेमाल करें।

सजावट हेतु वस्तुओं को तैयार करना

अ. बधाई पत्र (ग्रीटिंग कार्ड)

ग्रीटिंग कार्ड बनाने के लिए पहले विशिष्ट आकार के कार्ड ब्रिस्टल बोर्ड से बना लेते हैं। कार्ड पर चारों तरफ समान या वांछित जगह छोड़ते हुए वेलवेट पेपर को काटकर (ट्रिम करके) चिपका देते हैं। कार्ड को (ग्लास टेबेल टाप) मेज पर रखे ग्लास से कुछ समय के लिए दबाकर रखते हैं तथा सूखने देते हैं। पुष्प डिजाइन के लिए वेलवेट पेपर आधार का काम करती है। वेलवेट के ऊपर उभरने वाले रंग के निर्जलीकृत फूल, पत्ती, शाखा, फली छाँट लेते हैं तथा इच्छानुसार गोंद की सहायता से चिपकाते हैं। कार्ड को पुनः आधे घंटे के लिए शीशे के नीचे मेज पर दबा देते हैं। बने कार्डों को शुष्क स्थान पर भंडारित करते हैं। इस तकनीक के

निर्जलीकृत पुष्पों से बना सजावटी सामान

प्रयोग से अन्य अनेक वस्तुओं जैसेः पुष्पीय डिजाइन, तस्वीरें, लैंडस्केप, कैलेन्डर आदि बनाने में किया जा सकता है।

ब. बन्द शीशे या प्लास्टिक के बर्तनों में बनाये गये पुष्प विन्यास

सूखे फूल एवं पत्तियों को शीशे या पारदर्शी प्लास्टिक के बर्तनों में लुभावने ढंग से सजाया जा सकता है। इन बर्तनों के हवारोधी होने के कारण फूल, धूल, हवा, नमी से बचे रहते हैं। इन फूल लगे पात्रों (कान्टेनर्स) को घर के लिए प्रयोग कर सकते हैं।

इस प्रकार के कान्टेनर बनाने के लिए थर्मोकूल शीट को कान्टेनर के मुँह के बराबर काटते हैं तथा समान आकार का वेलवेट पेपर काट कर थर्मोकूल पर चिपकाते हैं। ग्लू की सहायता से फूलों को इच्छानुसार वेलवेट पेपर पर सजाकर लगाते हैं। फूलों की ऊँचाई बर्तन की ऊँचाई पर निर्भर करती है। इन फूलों को कान्टेनर से ढँक देते हैं। थर्मोकूल बर्तन के मुँह में फिट हो जाता है। आधार पर ग्लास डिस्क जोकि कान्टेनर को आधे घंटे तक 40-45°C पर ओवेन में रखते हैं। कान्टेनर के आधार पर इनमेल पेन्ट लगा देते हैं। इस प्रकार से बनी कलाकृतियाँ लम्बे समय तक अपनी सुन्दरता का जादू बिखेरती रहती हैं।

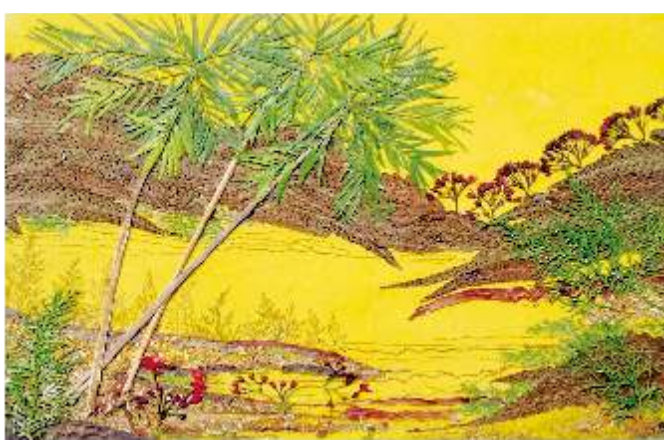

निर्जलीकृत पुष्पों से बना सजावटी सामान

फ्लोरल क्राफ्ट का गृह उद्योग में उपयोग

बेरोजगार युवक, गृहणियाँ एवं ग्रामीण महिलायें विभिन्न प्रकार के पादप अंगों - फूल, पत्ती, फल, फलियाँ, बीज आदि को निर्जलीकृत कर सकती हैं। वे स्वयं सजावटी सामान बना सकती हैं, सूखे फूलों को बाजार में बेच सकती हैं। यह कुटीर उद्योग पर आधारित पुष्पकला, बेरोजगार युवकों, ग्रामीण महिलाओं एवं गृहणियों के लिए स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध करा सकती है।

निर्जलीकृत पुष्पों से बन्द शीशे व प्लास्टिक के बर्तनों में बनाये गये पुष्प विन्यास

निर्जलीकरण उत्पादों की देख-रेख में सावधानी

निर्जलीकरण की गयीं फूल एवं पत्तियाँ बहुत कोमल एवं क्षणभंगुर होती हैं। अतः इनका रख-रखाव एवं देख-रेख विशेष सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इम्बेडिंग फूलों एवं पत्तियों को सुखाने के बाद पात्र को टेढ़ा करके सावधानीपूर्वक निकालना चाहिए। भण्डारण हेतु कांच के डेसीकेटर टिन के बक्से, प्लास्टिक लिपटे कागज के डिब्बे, वैक्स पेपर आदि के पात्रों का उपयोग करते हैं।

डेसीकेटर में भण्डारण हेतु डेसीकेटर में नीचे निर्जलीकृत कैल्शियम क्लोराइड अवश्य रखते हैं। दबे हुए प्रेस्ड फूल सोख्ता कागज में थोड़ा दबाकर रखना चाहिए सूखे फूलों को कीड़ों से बचाकर रखना चाहिए। भण्डारण हेतु प्रयुक्त पात्रों में मोथबाल या नेप्थलीन की गोलियाँ आदि रखनी चाहिए। सूखे फूलों या उनसे बनाये गये सजावटी कान्टेनर को तीव्र प्रकाश से बचाकर सूखे स्थान में भण्डारण करना चाहिए जिससे उनका मूल रंग बना रहे।

पुष्प निर्जलीकरण हेतु उपयुक्त पुष्प

हेलीक्राइसम, एक्रोक्लाइनम, एनुएल क्राइसेन्थीमस, जिप्सोफिला, डैन्थस, कैन्डीटफ्ट, गेंदा, स्टेटिस, कैरिओप्सिस।

निर्जलीकृत पुष्पों का उपयोग

प्रेस किये गये फूल एवं पत्तियों का उपयोग कलापूर्ण ग्रीटिंग कार्ड, वॉल प्लेट, लैंडस्कैप की डिजाइनिंग में किया जाता है। पादप वर्गीकरण में पौधे एवं फूल को पहचानने हेतु एल्बम बनाने में भी इन निर्जलीकृत पुष्पों का प्रयोग कर सकते हैं। बेरोजगार युवक, गृहणियाँ एवं ग्रामीण महिलाएँ विभिन्न प्रकार के पादप अंगों - फूल, पत्ती, फल, फलियाँ, बीज आदि को निर्जलीकृत कर सकती हैं। वे स्वयं सूखे फूलों से सजावटी सामान, बन्द शीशे या प्लास्टिक के बर्तनों में बनाये गये पुष्प विन्यास आदि बनाकर बाजार में बेच सकती हैं।

एक तारे की अंतिम साँस : सुपरनोवा !

मिलिन्द साव*

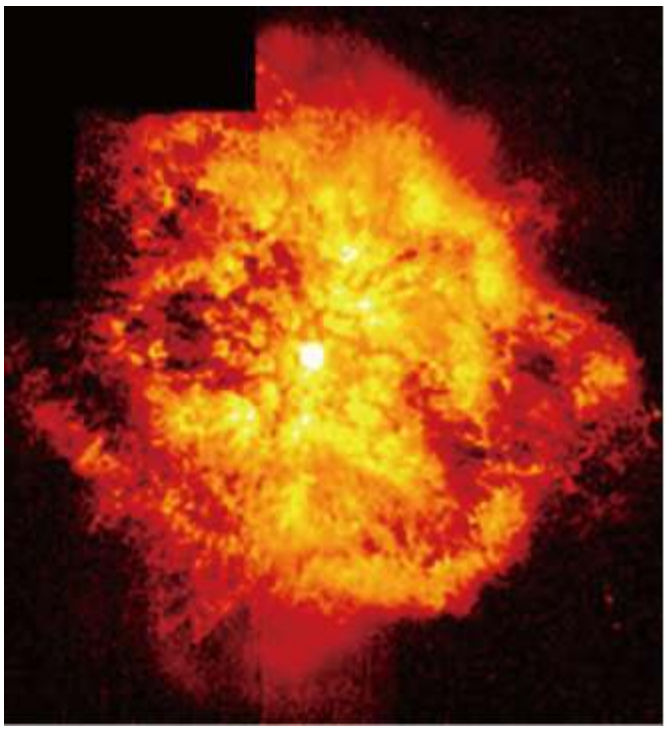

सुपरनोवा विस्फोट

बात काफी पुरानी सन् 1054 ई0 की है। यानी लगभग एक हजार साल पहले की। चीन के ज्योतिषियों ने आकाश के वृषभ राशि के तारामण्डल में एक तारे को तेज प्रकाश से चमकते देखा। इस तारे को उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। कुछ ही दिनों बाद यह अजनबी तारा आकाश का सबसे चमकीला पिण्ड बन गया और दिन के उजाले में भी दिखाई देने लगा। मगर 23 दिनों बाद उसकी चमक घट गई और करीब दो साल बाद वह आकाश से विलुप्त हो गया।

वृषभ के ठीक उसी स्थान पर यूरोप के खगोलविदों ने सन् 1731 ई0 में दूरबीन से एक तारा देखा। फिर सन् 1758 में खगोलविद शार्ल मेसिए ने पहचाना कि वह तारा वस्तुतः एक निहारिका (नैब्यूला) यानी धूल और गैसों का एक विशाल बादल है। बाद में स्पष्ट हुआ कि यह निहारिका सन् 1054 ई0 में चीनियों द्वारा देखे गये उस अजनबी तारे में हुए विस्फोट के पश्चात् बची द्रव्य राशि का अवशेष है जो एक हजार किमी. प्रति सेकण्ड के वेग से फैल रही है। क्रैब यानी केकड़े जैसी दिखाई देने वाली इस निहारिका को अब 'क्रैब नैबुला' के नाम से जाना जाता है। दूरबीन से इसे देखा जा सकता है।

वास्तव में चीनियों द्वारा देखा गया वह बेहद चमकीता तारा (क्रैब नैबुला) एक विस्फोटित तारा था जिसे 'अधिनव तारा' या 'सुपरनोवा' कहते हैं। अपने विस्फोट की 9 शताब्दियों बाद भी क्रैब नैबुला चमकदार और वैशिष्ट्यपूर्ण दिखाई देता है। इस सुपरनोवा-अवशेष की अनुमानित दूरी पाँच हजार प्रकाशवर्ष तथा इसका आकार पाँच से दस प्रकाशवर्ष निर्धारित किया गया है। एक प्रकाशवर्ष लगभग 100 खरब किमी. के बराबर होता है।

तारे के जीवन का अंत - सुपरनोवा

सुपरनोवा किसी तारे के जीवन की अंतिम स्थिति होती है। जिस प्रकार एक मनुष्य अपने जीवन में विकास के विभिन्न दौर से गुजरता है, उसी प्रकार एक तारा भी जन्म लेता है, युवा होता है, वृद्ध होता है और अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है। परन्तु, प्रत्येक तारा अपनी मृत्यु के पश्चात् सुपरनोवा ही बनता हो ऐसा नहीं है। आइए, इसे कुछ विस्तार से समझें!

प्रत्येक तारा अपने आप में एक परमाण्विक भट्ठी होता है। इसमें नाभिकीय संलय (Nuclear Fusion) की क्रिया सतत चलती रहती है। इस क्रिया में हाइड्रोजन के दो परमाणु जुड़कर हीलियम का एक परमाणु बनाते हैं और अपार ऊर्जा मुक्त होती है। इसी ऊर्जा के फलस्वरूप तारा अरबों वर्षों तक चमकता रहता है। तारे का गुरुत्व बल उसके द्रव्य को भीतर की ओर खींचता है और नाभिकीय बल उसे बाहर ढ़केलता है। इन्हीं दोनों बलों के संतुलन के कारण ही तारा अपना अस्तित्व बनाए रख पाता है। पर, तारे के जीवन में एक घड़ी ऐसी भी आती है, जब उसकी क्रोड (केन्द्रीय भाग) की हाइड्रोजन समाप्त हो जाती है और संलयन की प्रक्रिया बंद हो जाती है। अब तारे के गुरुत्व बल को रोकने वाला कोई बल शेष नहीं रह जाता। अतः तारा भीतर की ओर सिकुड़ने लगता है और अंत में 'व्हाइट ड्वार्फ' यानी श्वेत वामन तारे का रूप ले लेता है। इस सफेद बौने तारे का आकर तो पृथ्वी जितना सीमित होता है, पर द्रव्यमान सूर्य जैसा विशाल! हमारी आकाशगंगा में व्याध (सिरियस) तारे का साथी तारा ऐसा ही श्वेत वामन है।

चन्द्रशेखर सीमा

नोबल पुरस्कार विजेता भारतीय मूल के खगोलविद स्व. डॉ. एस. चन्द्रशेखर ने तारों के लिए एक द्रव्यमान सीमा निर्धारित की थी, जिसे चन्द्रशेखर सीमा कहा जाता है। यदि किसी तारे का प्रारम्भिक द्रव्यमान इस सीमा के भीतर होता है, तब तो तारा श्वेत वामन स्थिति के पश्चात् अंत में अपनी संपूर्ण ऊर्जा समाप्त कर काले रंग का मृत पिण्ड 'कृष्ण वामन' (ब्लैक ड्वार्फ) बन जाता है। परन्तु, यदि तारे का प्रारम्भिक द्रव्यमान इस

*19/13, विवेकानंद नगर, राज नांदगाँव - 491 441 (छत्तीसगढ़).

ISSN 2231 - 2455

सीमा से अधिक हुआ तो, अंत में उस तारे में एक प्रचण्ड विस्फोट होता है और उसकी अधिकांश द्रव्य राशि करीब पाँच हजार किमी. प्रति सेकण्ड के वेग से बाहरी अंतरिक्ष में बिखर जाती है। यही घटना सुपरनोवा कहलाती है। तो, इस प्रकार सुपरनोवा का अर्थ हुआ- तारे की मौत! इस स्थिति में तारा एक सेकण्ड में इतनी ऊर्जा उत्सर्जित करता है, जितनी सूर्य 60 वर्षों में करता है। इस घटना के वक्त तारे की कांति एकाएक दस करोड़ सूर्यों के बराबर हो जाती है। कभी-कभी तो अकेले सुपरनोवा की चमक संपूर्ण गैलेक्सी की चमक से अधिक हो जाती है।

नोवा और सुपरनोवा

ऐसे तारे जो पूरी तरह विस्फोटित होकर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, सुपरनोवा कहलाते हैं। परन्तु, जो तारे केवल अपनी बाहरी कवच की काफी अधिक द्रव्य राशि अंतरिक्ष में उछालकर एकाएक उद्दीप्त हो उठते हैं, उन्हें नोवा (नव तारा) कहते हैं। इस प्रकार नोवा एक बूढ़ा तारा होता है जो अपनी बाहरी द्रव्य राशि को अंतरिक्ष में फेंक देता है। इस समय उस तारे की चमक एक लाख गुना बढ़ जाती है। फिर, वह वापस अपनी पुरानी स्थिति में लौट आता है। इस प्रकार नोवा की घटना किसी तारे के जीवन में एक नए दौर की सूचक है, जबकि सुपरनोवा तारे के जीवन का अंत है। हमारी आकाशगंगा में प्रतिवर्ष करीब 25 नोवा प्रकट होते हैं जबकि सुपरनोवा की घटना संपूर्ण शताब्दी में एक ही बार घटती है।

नाभिकीय संलयन के समाप्त हो जाने के कारण होने वाले सुपरनोवा विस्फोट के अलावा यह घटना किसी पुनर्निर्मित तारे में संलयन के एकाएक तेजी से प्रारम्भ हो जाने से भी घटती है। जब एक तारा जो श्वेत वामन की स्थिति में पहुँचकर शांत हो चुका है, अपने पास के साथी तारे से द्रव्य प्राप्त कर पुनः अचानक फ्यूजन की प्रक्रिया आरंभ कर देता है, तब उसके केन्द्रीय भाग (क्रोड) का तापक्रम बहुत अधिक बढ़ जाता है और उसमें सुपरनोवा विस्फोट हो जाता है।

अमेरिका की माउंट विल्सन पर्वत की वेधशाला के खगोलविदों फ्रिजज्विकी और वाल्टर बाडे ने सन् 1930 के दौरान सुपरनोवा के सिद्धांत का विकास किया था। 'सुपरनोवा' नाम भी इन्हीं खगोलविदों का दिया हुआ है। अभी भी सुपरनोवा से जुड़े अनेक पहलू अज्ञात हैं। जनवरी 1993 में अमरीकी खगोलविज्ञान समिति की एक बैठक में N.G.C.-1313 सुपरनोवा पर चर्चा हुई। यह सुपरनोवा विस्फोट शंकु आकार की एक गैलेक्सी में हुआ है। इसमें कई असामान्यतायें पाई गई हैं।

सुपरनोवा का अध्ययन भी तारों की तरह उनके स्पेक्ट्रम के अध्ययन द्वारा किया जाता है। खगोलविदों ने पाया है कि सुपरनोवा विस्फोट के दौरान भारी मात्रा में प्राथमिक कणों 'न्यूट्रीनों' का विकिरण होता है, जो गैलेक्सी की अन्तर्तारकीय गैसों एवं धूल आदि के कणों द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं।

सुपरनोवा : अवशिष्ट द्रव्य

सुपरनोवा विस्फोट के बाद तारे का अवशिष्ट द्रव्य अति सघन होकर रेडियो तरंगों का शक्तिशाली स्रोत बन जाता है जिसे 'पल्सर' कहते हैं। ये तरंगें अन्तर्तारकीय माध्यम में धीरे-धीरे फैलती रहती है और दस हजार वर्षों के समयान्तराल में उसमें समाहित हो जाती हैं। क्रैब नैबुला एक ऐसा ही फैलाव है। इस पल्सर तारे की गुठली को न्यूट्रॉन तारा भी कहते हैं। इसका

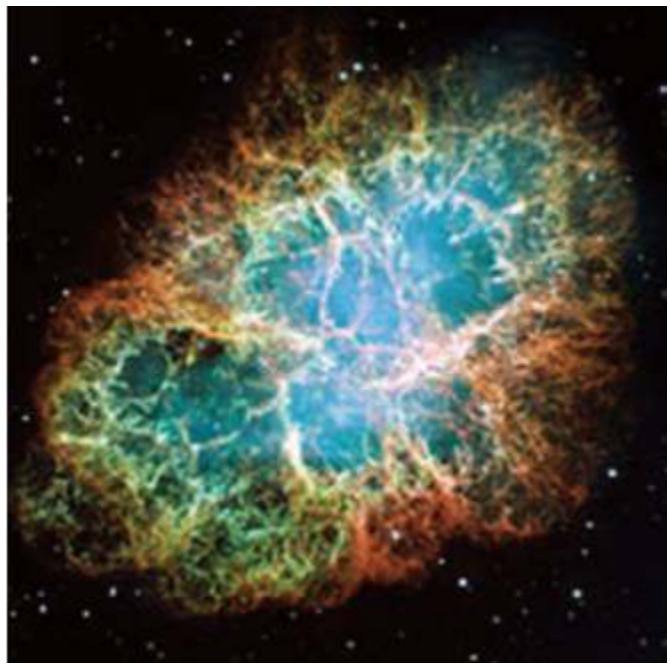

क्रैब नैबुला

व्यास मात्र 20 किमी. होता है, पर द्रव्यमान अति विशाल। कभी-कभी न्यूट्रॉन तारे और भी अधिक सिकुड़ जाते हैं। वे इतने अधिक सिकुड़ जाते हैं कि उनके प्रबल गुरुत्वाकर्षण से प्रकाश तक बाहर नहीं निकल पाता। तब ऐसे अदृश्य, अति सघन तारे ब्लैक होल (कृष्ण विवर) कहलाते हैं।

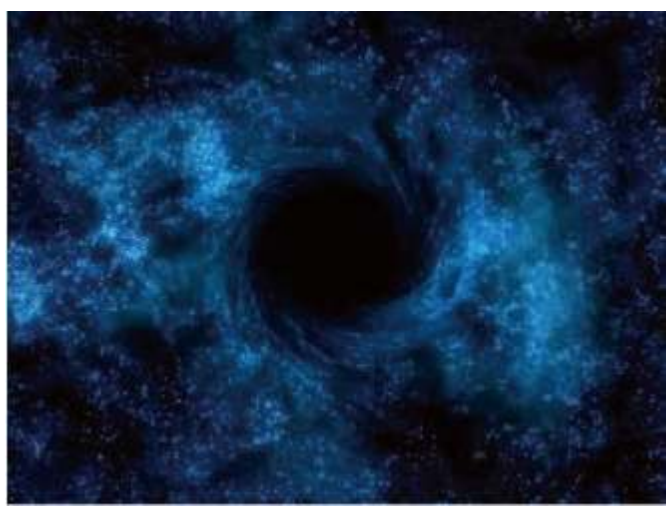

ब्लैक होल (कृष्ण विवर)

सुपरनोवा : ऐतिहासिक दृष्टि से !

ऐसा नहीं है कि सन् 1054 ई0 में चीनियों द्वारा देखे जाने के पहले सुपरनोवा को देखा ही नहीं गया था। एकाएक प्रकट होकर विलुप्त होने वाले इन तारों को लोग अति प्राचीनकाल से देखते आ रहे हैं। महाभारत में मुनि वेदव्यास महाराज धृतराष्ट्र को भावी युद्ध के परिणाम की गंभीरता और विनाशकारिता के प्रति आगाह करते हुए कहते हुए कहते हैं-

'मैनें देखा है कि सूर्य-चन्द्र और नक्षत्र दिन और रात दोनों में चमक रहे हैं तथा दिन का अंत दिखाई नहीं देता !' (महाभारत-भीष्मपर्व)। अब

यह नक्षत्र का दिन में चमकना कहीं सुपरनोवा की ओर इशारा तो नहीं करता? इसके अतिरिक्त भी दिन में तारों के दर्शन की घटना का वर्णन अन्य बहुत से प्राचीन भारतीय साहित्य जैसे शांतिसार, बृहत्संहिता, भविष्यपुराण इत्यादि में देखने को मिलते हैं।

प्रसिद्ध यूनानी खगोलविद हिप्पाकर्स (190 -120 ई0 पूर्व) के दिमाग में आकाश की नई तारा सारणी के निर्माण का विचार केवल अयन-चलन की घटना के कारण आकाश के नक्शे के बदल जाने के कारण ही नहीं आया था। बल्कि लगता है, आकाश में अचानक चमकने और बाद में गायब हो जाने वाले नोवा तथा सुपरनोवा के दर्शनों ने भी उन्हें नई तारा सारणी बनाने के लिए प्रेरित किया था।

सन् 1054 ई0 में प्रकट होने वाले क्रैब नैबुला को जिसका जिक्र चीनियों ने किया है, उसे दक्षिण-पश्चिम संयुक्त राज्य अमेरिका के पेबलो इंडियन नामक आदिवासी जाति के लोगों ने भी देखा था। उन्होंने इससे जुड़े एक चित्र को एक चट्टान पर उकेरा। इस चित्र में चाँद के साथ एक गोल पिण्ड दिखाया गया है। चीनी दस्तावेजों के अनुसार जब यह सुपरनोवा प्रकट हुआ था, तब वह चन्द्रमा के अत्यधिक नजदीक था। यह गोल पिंड इसी घटना को दर्शाता है।

इस घटना को मध्य-पूर्व में भी दर्ज किया गया। दर्ज करने वाले थे, एक इसाई चिकित्सक - इब्न बूतान! इस चिकित्सक की जीवनी में लिखा है - ''हमारे समय में जानी मानी महामारियों में से एक 446 हिजरी में हुई जिसमें मृत 14 हजार लोग ल्यूक चर्च में दफनाए गए। इस वक्त आसमान में एक नए सितारे का उदय हुआ। इसने महामारी को तब जन्म दिया जब नील में पानी कम था।'' हिजरी 446 का मतलब है, 1054 ई0! यानी यह वही समय था जब चीनियों ने क्रैब नैबुला के स्थान पर सुपरनोवा देखा था।

प्राचीनकाल में सुपरनोवा के दर्शनों का रिकार्ड प्रायः चीनियों द्वारा ही अधिक प्राप्त होते हैं। जहाँ सबसे प्राचीन सुपरनोवा SN185 चीनी खगोलविदों द्वारा 185 ई0 में देखा गया, वहीं सबसे चमकदार सुपरनोवा SN1006 भी चीनियों द्वारा ही 1006 ई0 में देखा गया था। मध्यकाल में खगोलविद टायको ब्राही ने सुपरनोवा SN1572 का प्रेक्षण किया। इसके बाद महान् ज्योतिर्विद योहानेस कैपलर ने 17 अक्टूबर, 1604 में आकाश में सुपरनोवा SN1604 को देखा। उन्होंने पूरे एक वर्ष तक इस सुपरनोवा पर अपनी नजरें तब तक गड़ाए रखीं जब तक कि उसकी चमक मंद न पड़ गई।

दूरबीन के आविष्कार की पूर्व सहस्त्राब्दि में केवल पाँच सुपरनोवाओं का प्रेक्षण किया जा सका था जो इस बात का सूचक है कि किसी तारे के दीर्घ जीवन की तुलना में उसकी मौत कितनी संक्षिप्त होती है। वस्तुतः जहाँ किसी तारे का जीवन अरबों वर्षों का होता है, वहीं उसका विनाश कुछ महीनों में ही सिमट जाता है। इसी कारण एक मनुष्य अपने संपूर्ण जीवन में अधिक से अधिक एक ही बार सुपरनोवा के दर्शन कर सकता है, जबकि हमारी आकाशगंगा में ही 200 अरब तारे हैं।

दूरबीन के आविष्कार के बाद दूसरी गैलेक्सियों में भी सुपरनोवा देखे जाने लगे। सर्वप्रथम सन् 1885 ई0 में देवयानी मंदाकिनी में एक सुपरनोवा देखा गया। इसे - ए एण्ड्रोमीडा नाम दिया गया। आकाशगंगा का आकार काफी विशाल होने के कारण केवल पास के सुपरनोवा विस्फोटों को ही देखा जा सकता है। खगोलविदों ने अब तक लगभग 600 सुपरनोवाओं का प्रेक्षण किया है। इनमें सबसे चमकीला सुपरनोवा जून 2015 में खोजा गया। ASASSN15lh नामक यह अधिनव तारा सूर्य से 570 गुना अधिक चमकीला है।

सन् 1887 में दक्षिण खगोल की एक छोटी उपमंदाकिनी जिसे बड़ा मेगल्लानी मेघ कहा जाता है, में भी एक सुपरनोवा विस्फोट देखा गया था। इसके जिस तारे में यह विस्फोट हुआ था, वह हमसे करीब 1 लाख 70 हजार प्रकाश वर्ष दूर है। यानी यह विस्फोट आज से 1 लाख 70 हजार साल पहले हुआ था, पर उसकी सूचना धरती पर अभी मिली है।

सुपरनोवाओं का नामकरण !

सन् 1758 में फ्रांसीसी खगोलविद चार्ल्स मेसिए ने एक प्रसिद्ध सारणी बनानी प्रारंभ की जिसमें आकाश के अनजाने चमकीले पिण्डों को दर्ज करना प्रारम्भ किया और इन पिण्डों का नामकरण M1, M2 आदि किया गया। परन्तु ये सभी पिण्ड सुपरनोवा नहीं थे। इनमें से अधिकांश नीहारिकायें (नैबूला) थीं।

आजकल जब खगोलविद किसी सुपरनोवा की खोज करते हैं, तब उसके नाम में SN के साथ खोज का वर्ष लिखा जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक या दो अक्षरों का प्रत्यय (Suffixe) जोड़ा जाता है। वर्ष के खोजे गए प्रथम 26 सुपरनोवाओं A से Z तक के कैपिटल अक्षर प्रदान किए जाते हैं। इनके बाद प्रेक्षित सुपरनोवाओं को छोटे अक्षरों की जोड़ी aa, ab आदि दी जाती हैं। उदाहरण के लिए SN 2009 B का अर्थ हुआ कि यह सन् 2009 में खोजा गया दूसरा सुपरनोवा है। सन् 2005 में खोजा गया अंतिम सुपरनोवा SN 2005 nc था। इसका नाम यह प्रदर्शित कर रहा था कि यह 2005 में खोजा गया 367वाँ सुपरनोवा था। ऐतिहासिक सुपरनोवाओं को केवल उनकी खोज के वर्ष से ही जाना जाता है। जैसे- SN185, SN1006, SN1054 (क्रैब नैबुला), SN1572 (टायको ब्राही का नोवा) और SN1604 (कैपलर का तारा)।

मूल तत्वों के स्त्रोत - सुपरनोवा !

सुपरनोवाओं के अध्ययन के उपरांत ही सन् 1957 में बर्निज दम्मत्ति, फ्रेड हॉयल और विलियम फाउलर नामक खगोलशास्त्रियों ने एक महत्वपूर्ण अनुसंधानात्मक लेख लिखा। इसमें उन्होंने जानकारी दी कि अधिकांश भारी रासायनिक मूल तत्व तारों के गर्भ में नाभिकीय अभिक्रियाओं द्वारा बनते हैं और सुपरनोवा विस्फोट के माध्यम से बाह्य आकाश में फेंके जाते हैं। इस प्रकार कार्बन, नियॉन, सल्फर, गोल्ड, आयरन आदि मूल तत्वों का निर्माण तारों में ही हुआ है। इस प्रकार लोहे के बने औजार, सोने के बने आभूषण, पेंसिल का ग्रेफाइट जैसे पदार्थ जो पृथ्वी पर पाए जाते हैं, कभी तारों के अंतरंग में अरबों अंशों तक के ताप में पक कर आए हैं। अतः, सोचिए भला आसमान के दूर-दूर के तारे और उनमें होने वाले सुपरनोवा विस्फोट हमसे और हमारी पृथ्वी से कितना व्यापक और घनिष्ट संबंध रखते हैं।

स्वरोजगार हेतु करें फलों एवं सब्जियों का प्रसंस्करण

डॉ0 राम रोशन शर्मा*

हमारा देश विश्व के कुछ उन सौभाग्यशाली देशों में से एक है जहाँ लगभग हर प्रकार की जलवायु पाई जाती है। अतः यही कारण है कि हमारे देश में कमोवेश अनेक प्रकार की फल व सब्जियाँ उगाई जाती हैं। इस समय भारत फलोत्पादन (73.4 मि.टन) एवं सब्जियों के उत्पादन (144.5 मि.टन) में विश्व में चीन के बाद दूसरे पायदान पर है। धान्य व दलहनी फसलों की अपेक्षा फल व सब्जियाँ बहुत अधिक नाशवान प्रकृति के होते हैं। अधिकतर फलों व सब्जियों में 80 से 95 प्रतिशत पानी होता है एवं वे धान्य एवं दलहनी फसलों से भारी होते हैं। उनका गठन मुलायम व श्वसन क्रिया अधिक होने के कारण, इन्हें ढुलाई एवं भंडारण के दौरान बहुत से सूक्ष्मजीव ग्रसित करते हैं जो अनेक रोगों के कारण बन जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि इस उत्पादन का लगभग 30-40 प्रतिशत हिस्सा तुड़ाई के उपरांत कुप्रबंधन के कारण क्षतिग्रस्त हो जाता है। परन्तु, यदि फलों एवं सब्जियों का प्रसंस्करण करें तो तुड़ाई उपरांत क्षति तो कम होगी ही साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी पैदा होंगे। इसके अतिरिक्त हमारे युवा फलों एवं सब्जियों के प्रसंस्करण को उद्यम के रूप में अपनाकर अपने क्षेत्रों में फलों एवं सब्जियों पर आधारित उद्योग लगाकर उन्नति के नए आयाम स्थापित कर सकते हैं। इससे न केवल किसान को आर्थिक लाभ होगा बल्कि देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने में एक अच्छा योगदान होगा।

जैम तैयार करना

जैम

ये उत्पाद ज्यादा चीनी द्वारा परिरक्षित किये जाते हैं। इनमें चीनी की मात्रा कम से कम 68 प्रतिशत होती है क्योंकि चीनी के इतने गाढ़ेपन में जीवाणु पैदा नहीं होते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं। इनमें सब्जी व फल की वास्तविक सुगन्ध तथा स्वाद बना रहता है। जिन फलों में पेक्टिन कम मात्रा में हो उनका जैम बनाने के लिए उनके गूदे में बाजार में मिलने वाला पेक्टिन पाउडर मिला सकते हैं।

जैम लगभग सभी प्रकार के फलों और गाजर व टमाटर से बनाया जा सकता है, लेकिन अच्छा जैम उन्हीं फलों से बनता है जिनमें पेक्टिन पर्याप्त मात्रा में होती है, क्योंकि यह जैम के जमने में सहायक होती है। जैम बनाने के लिए फल अथवा उसका पेस्ट चीनी के साथ मिलाकर गाढ़ा होने तक पकाया जाता है। विभिन्न फलों से जैम बनाने की सामग्री सारणी-1 में दी गई है।

निर्माण विधि

जैम बनाने के लिए अच्छे पके फल लें (अकेला फल या मिश्रित

सारणी-1 फल तथा सब्जियों से जैम बनाने के लिए सामग्री

फल/सब्जी	गूदा (किग्रा.)	चीनी (किग्रा.)	पानी (मिली.)	सिट्रिक अम्ल (ग्राम)	पेक्टिन (ग्राम)
आम	1.0	0.75	50	1.5	10.0
अमरूद	1.0	0.75	150	2.5	-
सेब	1.0	0.75-1.00	100	2.3	-
पपीता	1.0	0.70	100	3.0	4.0
आड़ू	1.0	0.75	100	1.0	3.0
आलू बुखारा	1.0	0.80	150	-	2.0
आंवला	1.0	0.75	150	-	-
अनन्नास	1.0	1.00	50	0.5	8.0
नाशपाती	1.0	0.75	100	1.5	-
स्ट्राबेरी	1.0	0.75	100	2.0	-
गाजर	1.0	0.75	200	2.5	10.0
टमाटर	1.0	1.00	100	3.0	2.0
मिश्रित फल	1.0	0.80-1.00	100	2.5	-

नोट-*जैली फलों के रस से तैयार की जाती है।

*खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110 012.

फल) और उन्हें छीलकर, काटकर, बीज व गुठली (जहाँ आवश्यक हो) निकालें तथा छोटे-छोटे टुकड़ों में काटें अथवा कद्दूकस करें। इसमें थोड़ा पानी डालकर पका लें तथा पेस्ट तैयार करें। फिर पेस्ट में चीनी डालकर कुछ देर पकाएँ और थोड़ा गाढ़ा होने पर सिट्रिक अम्ल (खटास) थोड़े से पानी में घोलकर गाढ़े पेस्ट में डालें और 5-10 मिनट तक जैम के गाढ़ा होने तक पकाएँ। जब जैम को चम्मच से गिराने पर चादर सा बनने लगे तो समझें कि जैम तैयार है। इस गर्म-गर्म जैम को साफ बोतलों में भर दें, थोड़ा ठण्डा होने पर ढक्कन बन्द करें तथा शुष्क स्थान पर भण्डारित करें।

मुरब्बा तैयार करना

फल एवं सब्जी से गाढ़े चीनी के घोल में बने शुष्क मुरब्बे बहुत लोकप्रिय हैं। इन्हें भी चीनी से परिरक्षित किया जाता है। चीनी की 68-70 प्रतिशत या इससे अधिक मात्रा हो जाने पर सूक्ष्म जीव नहीं पनपते तथा मुरब्बा काफी समय तक सुरक्षित रहता है। मुरब्बा सेव, आम, ऑवला, बेल, करौंदा, चेरी, अनन्नास आदि फलों तथा गाजर, पेठा, अदरक आदि सब्जियों से तैयार किया जाता है। शुष्क मुरब्बे को कैण्डी, क्रिस्टलीकृत एवं ग्लेज्ड फल भी कहते हैं।

आंवला का मुरब्बा

निर्माण विधि

मुरब्बा तैयार करने के लिए अच्छे फल का चुनाव करें। इन्हें अच्छी प्रकार से धो लें। इसके बाद इन्हें छीलें, काटें तथा गोदें। इन्हें उबलते पानी या नमक के घोल में उपचारित करें। इन फलों को चीनी की चासनी में पकाएँ या फलों को चीनी की परत के बीच रखें तथा धीमी आँच पर पकाएँ। बाद में थोड़ा सा सिट्रिक अम्ल (0.1 - 0.5 प्रतिशत) डालकर पकाएँ। ठंडा होने पर इन्हें जार या मर्तबान में भरकर तथा बन्द करके शुष्क स्थान पर रखें।

आम की मीठी चटनी

आम की चटनी के लिए थोड़े कच्चे फलों को चुना जाता है। इसके अंतर्गत फल को छीलकर फॉकों में काट लें। अब इन्हें उबलते पानी में दो मिनट तक रखकर फिर पानी में ठंडा करके बाहर निकालें। परिरक्षक के उपचार के लिए इन्हें 1.5 प्रतिशत पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट के घोल में 15 मिनट रखें। फिर धूप में या कैबिनेट शुष्कारित्र में सुखा लें। दूसरी विधि से खुष्क पदार्थ धूप में सूखाने के बजाय अच्छी गुणवत्ता वाला और इसमें परिरक्षक व ऐस्कॉर्बिक अम्ल की अच्छी धारणा रहती है। सूखे आम की फॉकों से लवणजल की अपेक्षा अच्छा अचार ही नहीं बनता, परन्तु भंडारण में स्थान की बचत और सुविधा भी रहती है, अगर इन्हें पॉलिथीनटिन वाले बर्तन में भरकर बंद किया जाये। पुनर्जलयोजन के वास्ते सूखी आम की फॉकों को पानी में 1:10 अनुपात में 10 मिनट तक गर्म करके फिर उसी पानी में 5 घंटे रखना चाहिए। अब इसे उचित मात्रा में नमक, चीनी और ऐसीटिक अम्ल में 68°C तक पका करके बोतलों में बंद कर देना चाहिए।

आम का पापड़ (अमावट)

आम रस को धूप में सुखाकर आम पापड़ भी बनाया जाता है जिसे आम भाषा में अमावट भी कहते हैं। इसके लिए रस को चटाई पर पतली तह में फैलाया जाता है। सूखने पर दूसरी तह लगा दी जाती है। कभी-कभी रस को पकाकर या अतिरिक्त चीनी मिलाकर गाढ़ा करके भी सुखाया जाता है। अत्यधिक अम्ल वाले आम रस में शर्करा मिलाने से, शर्करा व अम्ल के अनुपात को नियंत्रित किया जा सकता है। धूप में सुखाया गया उत्पाद रंग में गहरा भूरा या काला पड़ जाता है। इन पर धूल वगैरह भी लग जाती है तथा यह उत्तम गुण वाला नहीं रहता है। 'बानेशान', 'बाम्बेग्रीन' और 'दशहरी' आम के गूदे का ब्रिक्स 25 डिग्री और अम्लता 0.5 प्रतिशत रखकर कैबिनेट शुष्कारित्र में सुखाने से उत्पाद का स्वाद शर्करा व अम्ल के लिहाज से उत्तम होता है। फल रस में पैक्टिन (बानेशान में 0.5 प्रतिशत) और 'दशहरी' और 'बाम्बेग्रीन' में (0.75 प्रतिशत) मिलाने से आम पापड़ की गठन उन्नत हो जाती है।

आम का पापड़ (अमावट)

अमचूर

कच्चा आम काफी खट्टा होता है, इसलिए अमचूर बनाने के लिए इसे ही इस्तेमाल किया जाता है। साधारणतः तेज हवा से पेड़ से गिरा हुआ कच्चा आम ही अमचूर बनाने के काम में लाया जाता है। परन्तु, यदि पूर्ण विकसित कच्चा आम वैज्ञानिक ढंग से सुखाया जाये तो अच्छा अमचूर बनाया जा सकता है। सामान्यतः कच्चा और बीजू आम का छिलका उतार कर धूप में सुखा देते हैं। लोहे का चाकू इस्तेमाल करने से उत्पाद काला पड़ जाता है। छिलका रहित सूखा आम का चूर्ण ही अमचूर कहलाता है। अमचूर चटनी बनाने के लिए, खटाई देने वाले मसालों के रूप में दाल, साग में इस्तेमाल किया जाता है। यह देखा गया है कि बीजू पेड़ पर फल लगने से 11 सप्ताह बाद यह सुखाने के लिए उपयुक्त रहता है। इस समय फल पूरी तरह से विकसित हो जाता है, गूदा सफेद रहता है, अम्लता और स्टार्च उच्च मात्रा में और शर्करा व फिनोलिक्स कम मात्रा में रहते हैं।

अमचूर बनाने के लिए फल का स्टेनलेस स्टील के चाकू से छिलका

अमचूर

उतारा जाता है, बाद में लम्बी फाँकों में काट लिया जाता है। अब इनका शवेतन उबलते पानी में 2-5 मिनट और भाप में 5 मिनट के लिए करना चाहिए। उसके बाद 15 मिनट के लिए 1.5 प्रतिशत पोटेशियम मैटाबाइसल्फाइट के घोल में रखकर शुष्कारित्र में या फिर धूप में सुखाया जाता है। शवेतन और सल्फाइटीकरण से अम्ल, ऐस्कार्बिक अम्ल और शर्करा को निक्षालन जरूर होता है, किन्तु उत्पाद उत्तम गुण वाला होता है। निर्जलित उत्पाद, धूप में सूखे पदार्थ की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है। पूर्णरूप से पका हुआ फल भी ओसमोबेक और हिम शुष्कन विधि द्वारा सुखाया जा सकता है।

फलों से पेय तैयार करना

फलों से पेय तैयार करने हेतु यदि परिरक्षित गूदे या जूस का प्रयोग करें तो इसमें सिट्रिक अम्ल तथा पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट कम डालें क्योंकि ये पहले ही डाले जा चुके होते हैं। ताजा फलों के जूस व गूदे से विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट, पौष्टिक, मनभावक पेय बनाए जा सकते हैं। फलों के जूस से स्क्वैश, नेक्टेर, शरबत इत्यादि बनाए जा सकते हैं। परिरक्षित गूदे/जूस से भी कई प्रकार के पेय तैयार किए जा सकते हैं।

स्क्वैश

विभिन्न प्रकार के स्क्वैश

यह पेय सबसे अधिक मनभावक और लेकप्रिय है। इसमें कम से कम 25 प्रतिशत फलों का गूदा/जूस 40-50 प्रतिशत चीनी एवं 1 प्रतिशत अम्ल होता है। आम, संतरा, नींबू, बेल, लीची, जामुन या मिश्रित फलों से स्क्वैश तैयार कर सकते हैं तथा इनको खाद्य रसायन से सुरक्षित रख सकते हैं। पीने के लिए एक हिस्सा स्क्वैश में तीन गुना पानी मिलाएँ।

स्क्वैश बनाने के लिए फलों का रस या गूदा तैयार करें। इसके बाद पानी व चीनी का घोल तैयार करें (सारणी-1 के अनुसार)। घोल तैयार करते समय अम्ल डाल लें व एक उबाल आने पर ठंडा कर लें और चीनी के घोल को कपड़े से छान लें तथा जूस में मिला दें। अब सारणी-1 के अनुसार खाद्य रसायन (थोड़े से पानी में घोलकर) डालें। स्क्वैश को साफ बोतलों में भरकर अच्छी प्रकार सील कर दें। भरते समय बोतल में 1.2-2.5 सेमी. तक जगह खाली रखें। बोतलों का भण्डारण ठंडे स्थान पर करें।

नेक्टर

नेक्टर एक अत्यन्त लोकप्रिय पेय है। इसमें 10-15 प्रतिशत फलों का जूस या गूदा, 10-15 प्रतिशत चीनी एवं 0.2 - 0.3 प्रतिशत अम्ल होता है। पीने के लिए इसमें पानी नहीं मिलाते तथा इसे ऐसे ही पीया जाता है। आम, अनन्नास, अमरूद, नींबू, अंगूर, सेब, लीची, जामुन, आलू बुखारा आदि से या मिश्रित फलों से नेक्टर तैयार कर सकते हैं। मिश्रित नेक्टर ज्यादा स्वास्थ्यवर्धक होता है। नेक्टर को संरक्षित गूदे व जूस से भी बना सकते हैं।

इसे बनाने के लिए फलों का जूस/गूदा तैयार करें। इसे गर्म करके चीनी व पानी का घोल तैयार करें। उबाल आने पर ठंडा करें तथा साफ कपड़े में छान लें। अब सारणी-1 के अनुसार जूस व घोल बनाकर व 900 सेल्सियस तक गर्म करके कीटाणु रहित (गर्म पानी से उपचारित) बोतलों में ऊपर तक भरें तथा अच्छी तरह से सील करें। बोतलों को आधे घण्टे तक उबले पानी में डुबोकर रखें। बाद में बोतलों का भण्डारण ठंडे स्थान पर करें।

टमाटर की सौस (कैचप)

टमाटो कैचप, टमाटर के जूस या गूदे को (बिना बीज व छिलके वाला) गाढ़ा करके बनाया जाता है। इसको कई मसालों, नमक, चीनी, सिरका इत्यादि डालकर पकाया जाता है। इसमें टमाटर ठोस पदार्थ 12 प्रतिशत होना चाहिए।

टमाटर की सौस (कैचप)

इसे बनाने के लिए पूरे पके टमाटर धोएँ तथा छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लें। 3-5 मिनट तक पकाएँ व ठंडा करें। छलनी से गूदा या जूस निकालें। इसमें 1/3 हिस्सा चीनी व सभी मसालों की पोटली बनाकर डालें व टमाटर के जूस को पकाएँ। पकाते समय बीच-बीच में पोटली को

दबाते रहें ताकि उसका तत्व जूस में आ जाए। जब टमाटर का जूस 1/3 हिस्सा तक पककर गाढ़ा हो जाए तो मसालों की पोटली निकाल कर उसका जूस निकालें तथा बाकी बची चीनी व नमक डालें और कुछ मिनट और पकाएँ। गाढ़े जूस में सिरका डालकर 5 मिनट तक पकाएँ। सोडियम बेन्जोएट को थोड़े से पानी में घोलकर गर्म कैचप में मिलाएँ। गर्म कैचप साफ बोतलों में भरें व बोतलें सील करें।

टमाटर का सूप

सूप पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं स्वस्थ्यवर्धक होते हैं। इनमें विटामिन और खनिज काफी मात्रा में पाये जाते हैं। यह भूख भी बढ़ाते हैं। अन्य सब्जियों के सूप की तुलना में टमाटर का सूप बहुत लोकप्रिय है।

इसे बनाने के लिए टमाटर का गूदा या जूस छान लें। इसमें चीनी व नमक मिलाकर, उबालें तथा गाढ़ा करें। प्याज, लहसुन डालकर गाढ़ा होने तक पकाएँ तथा मसालों की पोटली बनाकर उबलते जूस में डालें। इसके बाद मक्खन और स्टार्च का पेस्ट बनाकर गाढ़े जूस में डालें तथा 2 मिनट तक पकाएँ। मसालों की पोटली को निचोड़कर उसका रस निकालें और सूप में मिला दें। इसे बोतलों में भरने के लिए बोतलों को उबलते पानी में 40-45 मिनट तक स्ट्रलाइज करें। इसे गर्म-गर्म पियें या साफ बोतलों में भरें। ठंडा होने पर बोतलों को साफ एवं ठंडी जगह पर रखें।

टमाटर का आचार व चटनी

भारतीय भोजन में आचार व चटनी का विशेष स्थान है। अन्य सब्जियों की भाँति टमाटर का अचार भी स्वादिष्ट होता है। अचार बनाने की विधि सब्जियों की सुरक्षित रखने के लिए पुरानी परिरक्षण की विधि है। अचार बनाने के अलग-अलग तरीके हैं जैसे तेल वाला, बिना तेल के सिरके वाला एवं सूखा अचार।

इसे बनाने के लिए सख्त पके हुए टमाटर लें, इन्हें धोकर काट लें। इसके बाद लहसुन, अदरक, हरी मिर्च को तेल में भून लें और सभी पिसे मसाले भी मिलाकर गर्म कर लें। अब टमाटर के टुकड़ों में मिला दें। सिरका और बचा हुआ तेल डाले दें (तेल को पहले गर्म करके ठंडा कर लें)। अब इन्हें साफ बोतलों में भरे और ठंडे सुरक्षित स्थान पर अचार की बोतलों को रखें।

निर्जलीकृत उत्पाद

फल और सब्जियों को धूप में सुखाकर रखने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। आजकल इन्हें मशीनों द्वारा भी सुखाया जाता है क्योंकि धूप की अपेक्षा इसमें समय तो कम लगता ही है साथ में इसकी गुणवत्ता भी बनी रहती है। इसके अतिरिक्त वर्षा ऋतु में प्रायः फल व सब्जियों को धूप में सुखाना संभव नहीं होता है। अतः मौसम-विशेष में जब सब्जी/फल सस्ते होते हैं व पर्याप्त मात्रा में पैदा होते हैं, इन्हें सुखाकर भविष्य में प्रयोग हेतु संरक्षित कर रख सकते हैं।

निर्जलीकरण करने के लिए अच्छी व पकी हुई फल एवं सब्जियों का चुनाव करें। धोकर छीलें, काटें तथा उपचारित करें (जैसे कि सारणी 1 में बताया गया है)। उपचारित सब्जी/फल को लकड़ी व एल्युमीनियम की ट्रे में फैलाकर लगभग 50-65° सेल्सियस तापमान पर (कभी-कभी तापमान

फलों व चीनी से निर्मित निर्जलीकृत पदार्थ

बढ़ाया जाता है) निर्जलकारित्र (मशीन) में सुखाएँ। सुखाने के बाद पॉलीथीन की थैलियों में बन्द करके इन्हें नमी रहित डिब्बों में रखकर भण्डारित करें।

फलों व सब्जियों को सुखाने में सावधानियाँ

1. धब्बेदार, क्षतिग्रस्त या खाए हुए फलों और सब्जियों को सुखाने के काम में नहीं लाना चाहिए, क्योंकि इन पर जीवाणुओं का असर जल्दी होता है। प्रयोग में लाने से पहले साफ पानी में धोएँ।
2. सुखाने से पहले फल तथा कुछ खास सब्जियों को गंधक से उपचारित करना आवश्यक है। इसके लिए इन्हें बन्द कमरे या बक्से में गंधक का धुँआ देना चाहिए या पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट के घोल में निर्धारित समय तक रखना चाहिए। उपचारित फल व सब्जियों का रंग उन्हें सुखाने के बाद खराब नहीं होता है तथा भण्डारण के दौरान इनमें कीटों का असर नहीं होता।
3. धूप में सुखाते समय इन्हें चटाई, चारपाई या चादर पर फैलाकर ऊपर से बारीक मलमल का कपड़ा डाल देना चाहिए जिससे इन्हें धूल, मक्खियों तथा कीटों से बचाया जा सके।
4. इन्हें समय-समय पर उलटते-पलटते रहना चाहिए, ताकि कोई भाग नमीयुक्त न रह जाए।
5. इन्हें ट्रे में इस तरह फैलाना चाहिए कि कटा हुआ भाग ऊपर की ओर रहे।
6. सूख जाने के बाद फलों और सब्जियों को हवारहित डिब्बों अथवा बोतल में रखना चाहिए। इनके ढक्कन पर मोम लगाकर सील बन्द कर देना चाहिए। आजकल इन्हें पॉलीथीन की थैलियों में भी सीलबन्द करके रखा जाता है।
7. सुखाए गए फलों और सब्जियों के भण्डारण में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। भण्डारण कक्ष नमी तथा कीट रहित व शुष्क होना चाहिए।
8. सुखाए हुए फलों और सब्जियों को यदा-कदा धूप में रखना चाहिए।

माइकोटॉक्सिन : मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

[1]मनोज कुमार चितारा, [2]डॉ0 चेतन केसवानी एवं [3]प्रो0 एच0बी0 सिंह*

माइकोटॉक्सिन द्वितीयक उपापचयी पदार्थ है, जो कवकों द्वारा स्रावित किया जाता है और यह पशुओं और मनुष्यों पर विषाक्त प्रभाव डालते हैं जो माइकोटॉक्सिकोसिस कहलाता है, तथा इसका विषैलापन माइकोटॉक्सिन की विषैली प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। माइकोटॉक्सिन की रासायनिक संरचना में काफी भिन्नता पायी जाती है, लेकिन वे सब अपेक्षाकृत कम आण्विक भार के कार्बनिक योगिक होते हैं।

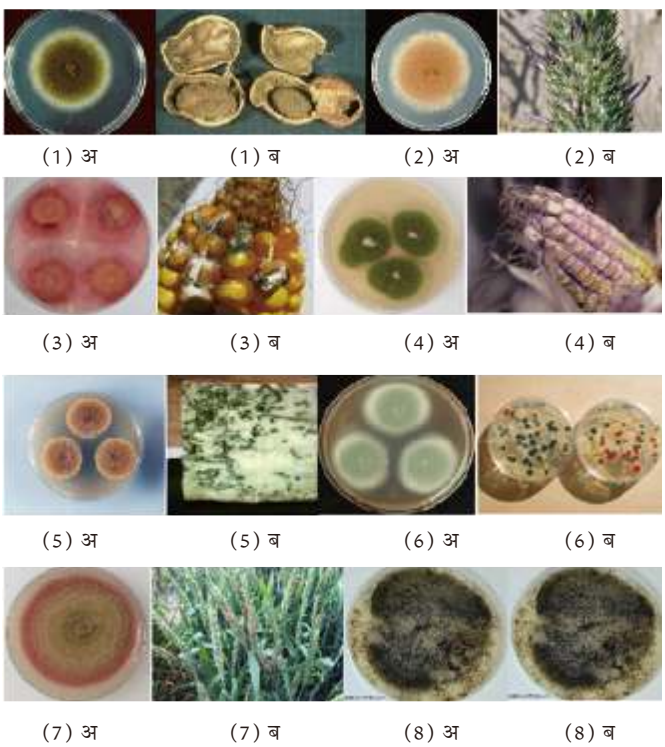

(1) अ (1) ब (2) अ (2) ब

(3) अ (3) ब (4) अ (4) ब

(5) अ (5) ब (6) अ (6) ब

(7) अ (7) ब (8) अ (8) ब

विभिन्न प्रकार के कवकजनित माइकोटॉक्सिन का फसलों व खाद्य पदार्थों पर जैविक प्रभाव

(1) अ - एस्परजिलस फ्लेवियस, ब - मूँगफली (2) अ - क्लेविसेप्स परप्यूरिया, ब - राई (3) अ - एस्परजिलस पैरासिटिकस, ब - मक्का (4) अ - फ्यूजेरियम मॉनिलिफॉर्मि, ब - मक्का (5) अ - पेनिसिलियम ऑरेन्टिग्रिसियम, ब - पनीर (6) अ - पेनिसिलियम वेरूकासम, ब - पनीर (7) अ - फ्यूजेरियम ग्रेमिनिएरम, ब - गेहूँ (8) अ - अल्टरनेरिया टेन्यूइस, ब - टमाटर

क्लेवीसेप्स से प्रभावित गेहूँ के उपयोग से बनी डबलरोटी (ब्रेड) को ग्रहण करने से शरीर लाइसरजिक एसिड डाइथायलेमाइड (एल.एस.डी.) के सम्पर्क में आता है, जो एक विषाक्त सम्मोहनकारी (Hallucinogenic) है। अभी हाल में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार माइकोटॉक्सिन अभी भी मानव स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रहे हैं, और कुछ माइकोटॉक्सिन अत्यधिक सुरक्षा अपनाने की वजह से लुप्त हो गये हैं। माइकोटॉक्सिकोसिस संबंधी अध्ययन कि शुरुआत 1960 में हुई जब टर्की एक्स रोग से इंग्लैंड में टर्की पक्षी मृत पाये गये। यह रोग विषाक्त खाद्य पदार्थों को ग्रहण करने से हुआ। गहन अध्ययन से पता चला है कि यह रोग अफ्लाटॉक्सिन जनित है जो कि एक कवक द्वारा स्रावित माइकोटॉक्सिन है। फफूँद के उपापचयी पदार्थ का वर्गीकरण उसकी विषाक्तता या लाभकारी प्रभाव पर आधारित है, जो रोगों के उपचार में लाभदायक हो। कुछ कवकों से प्राप्त उपापचयी पदार्थ शुरुआत में लाभकारी सिद्ध हुए, परन्तु बाद में उनकी विषाक्तता की प्रवृत्ति का पता चला। उदाहरणस्वरूप अब इसे विषैले टॉक्सिन की श्रेणी में रखा गया है।

माइकोटॉक्सिन का उपयोग

अरगट एल्केलॉयड का उपयोग पर्किन्सन, प्रॉलेक्टिन निरोधक, सेरेब्रोवेस्कुलर कमी, माइग्रेन, विनस इंसफिसिएन्सी, थ्रोम्बोसिस, एम्बोलिस, मस्तिष्क के सेरेब्रल एवं पेरिफेरल (परिधीय) उपापचय, गर्भाशय उत्तेजना एवं डोपामिनरजिक के इलाज में प्रयोग किया जाता है।

माइकोटॉक्सिन के विषैले प्रभाव (ओकराटॉक्सिन, फ्यूमोनिसिन, जिरालेनॉन आदि) का अध्ययन सामान्यतया पशुओं में किया गया है। माइकोटॉक्सिकोसिस का प्रभाव औद्योगिक एवं विकासशील दोनों देशों में पाया गया है जब पर्यावरण सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ कवकों के विकास के लिए अनुकूल मौसम के साथ संयुक्त होते हैं।

माइकोटॉक्सिन का आर्थिक स्तर पर प्रभाव

माइकोटॉक्सिन विभिन्न फसलों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता हैं। सामान्यतया गेहूँ, मक्का, मूँगफली, अखरोट, कपास एवं काफी इत्यादि। खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार प्रति वर्ष माइकोटॉक्सिन द्वारा विश्व में 25 प्रतिशत फसलों का नुकसान होता है। साथ ही 1 अरब मीट्रिक टन भोजन एवं भोज्य पदार्थ की प्रतिवर्ष हानि हो रही है। इस आर्थिक नुकसान की वजह निम्न हैं-

- टॉक्सिजेनिक कवक द्वारा उत्प्रेरित व्याधि के परिणामस्वरूप फसल उपजदार में कमी।
- माइकोटॉक्सिन की वजह से फसल मूल्य में कमी।
- माइकोटॉक्सिन से संबंधित पशु रोगों से उनकी उत्पादकता में कमी।

*1. स्नातकोत्तर छात्र (कृषि विज्ञान), 2. पेस्टडाक्टोरलफेलो, 3. आचार्य, कवक एवं पादप रोग विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

माइकोटॉक्सिन की विषाक्तता एवं खाद्य पदार्थों पर जैविक प्रभाव

क्र.सं.	माइकोटॉक्सिन	प्रमुख खाद्य पदार्थ	कवक जाति	स्वास्थ्य पर प्रभाव
1.	अफ्लाटॉक्सिन	मक्का, मूँगफली, अंजीर, अखरोट, दूध एवं दुग्ध उत्पाद	*एस्परजिलस फ्लेवियस, ए. पैरासिटिकस*	यकृत विषकारी, कैन्सरजनित
2.	साइक्लोपिएजॉनिक अम्ल	पनीर, मक्का, मूँगफली, रॉडोमिलेट	*एस्परजिलस फ्लेवियस, पेनिसिलियम ऑरेन्टिग्रिसियम*	आक्षेप (Convulsions)
3.	डिऑक्सीनिवालेनॉल	अनाज	*फ्जूरियम ग्रेमिनिएरम*	उल्टी, भूख न लगना (food refusal)
4.	टी-2 टॉक्सिन	अनाज	*फ्यूजेरियम स्पॉरोट्राइफाईडिस*	एलिमेन्टरीटॉक्सिक, एल्यूकिया
5.	अरगॉटेमाइन	राई	*क्लेविसेप्स परप्यूरिया*	न्यूरोटॉक्सिन
6.	फ्यूमॉनिसिन	मक्का	*फ्यूजेरियम मॉनिलिफॉर्मि*	इसोफेगल कैन्सर
7.	ऑक्रेटॉक्सिन	मक्का, अनाज, कॉफी बिन	*पेनिसिलियम वेरूकासम, एस्परजिलस ऑक्रेसियस*	नेफ्राटॉक्सिक
8.	पेट्यूलिन	स्बेरस	*पेनिसिलियम एक्सपान्सम*	इडेमा, हिमोरजिया, केन्सर
9.	पेनिट्रेम	अखरोट	*पेनिसिलियम आरेन्टिओग्रिसयम*	ट्रिमॉर्श
10.	स्ट्रिगमेटॉसिस्टिन	अनाज, कॉफी बिन, पनीर	*एस्परजिलस वर्सीकलर*	हिपेटोटॉक्सिक, कैन्सर
11.	टेन्युअजैनिक अम्ल	टमाटर	*अल्टरनेरिया टेन्यूइस*	कॉन्वल्जन, हिमोरेजिया
12.	जिरोलेनॉन	मक्का, जौ, गेहूँ	*फ्यूजेरियम ग्रेमिनिनेरम*	ऑइस्ट्रोजेनिक

खाद्य सुरक्षा और विनियमन

माइकोटॉक्सिन खाद्य श्रृंखला में खेतों में फसल की कटाई एवं भण्डारण के समय प्रवेश कर सकते हैं। खाद्य पदार्थों से किसी भी प्राकृतिक विषैलेपन का पूर्ण उन्मूलन एक अप्राप्य उद्देश्य है। इसलिए माइकोटॉक्सिन्स का विनिमय फूड एडिटिव पदार्थों से बिल्कुल भिन्न है। विभिन्न देशों के खाद्य सुरखा कानूनों ने कृषि उत्पादों में अफ्लाटॉक्सिन और अन्य माइकोटॉक्सिन के परीक्षण के लिए मार्गदर्शक तैयार किए हैं, परन्तु, इन खाद्य सुरक्षा कानूनों का एकीकरण आज के समय में माइकोटॉक्सिन विनियमन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

सन् 1994 में 77 देशों के सदस्यों ने मिलकर भोजन एवं चारे को दूषित करने वाले अफ्लाटॉक्सिन के रोक लगाने के लिए नियम पारित किए। इसके अन्तर्गत अफ्लाटॉक्सिन की मात्रा खाद्य पदार्थों में 0-10 mcg/kg और चारे में 1000 mcg/kg निर्धारित की गयी और इससे अधिक मात्रा पाए जाने पर वह दूषित माना जाएगा। भारत में 'खाद्य अपमिश्रण निर्वाण अधिनियम' (पी.एफ.ए. एक्ट) के अन्तर्गत सभी मानव भोज्य पदार्थों में अफ्लाटॉक्सिन की सुरक्षित सीमा 30 µg/kg निर्धारित की गयी।

पी.एफ.ए. एक्ट के अन्तर्गत अरगट की नियमन सीमा खाद्य पदार्थों में 0.05 प्रतिशत निर्धारित की गई।

निष्कर्ष

कवक भिन्न-भिन्न प्रकार से मानव में रोग फैलाते हैं, कवक द्वारा स्रावित द्वितीयक उपापचय पदार्थ मानवों के लिए अत्यन्त हानिकारक साबित हुए हैं जो मृतोपजीवी कवक द्वारा स्रावित किए जाते हैं। सामान्यतया औषध विज्ञान में माइकोटॉक्सिन का कशेरुकी जन्तुओं पर प्रभाव का वर्णन किया जाता है। यह एक प्रकार के रासायनिक भिन्न समूह है, जो जीव विशेष पर अपना प्रभाव डालते हैं। कुछ कठिन एवं अध्यारोपित किस्म का विषैलापन कुछ समूह की जातियों के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुए हैं। इनके हानिकारक प्रभावों से कैन्सर, चर्मरोग, सूजन, प्रोटीन निर्माण सन्दमन और प्रतिरोधकता सन्दमन आदि शामिल हैं। माइकोटॉक्सिन का मनुष्य के शरीर में प्रवेश दूषित भोजन के ग्रहण करने से होता है। इसके अलावा कवक बीजाणु नाक द्वारा और त्वचा के सम्पर्क में आने पर भी इसके प्रभाव मनुष्य पर देखे गए हैं।

उचित जाँच मानदण्ड और विश्वसनीय प्रयोगशाला परीक्षणों के अभाव में माइकोटॉक्सिन जनित रोगों को खोज पाना बहुत कठिन है। विभिन्न अध्ययनों से यह बात साबित होती है कि माइकोटॉक्सिन मानव और पशु स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। अतः माइकोटॉक्सिन के दुष्प्रभावों को देखते हुए खाद्य पदार्थों के उद्‌गम और भण्डारण में उनके सुरक्षा के प्रति जागरूक होना अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने एक साथ 104 उपग्रहों को अंतरिक्ष में भेजकर रचा इतिहास

भारतीय अंतरिक्ष एजेंसी (इसरो) ने 14 फरवरी, 2017 को एक ही राकेट के माध्यम से 104 उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण करके इतिहास रच दिया है। इन उपग्रहों में भारत का पृथ्वी पर्यवेक्षण उपग्रह भी शामिल है। यह प्रक्षेपण श्रीहरिकोटा स्थित अंतरिक्ष केन्द्र से किया गया है। किसी एकल मिशन के तहत प्रक्षेपित किये गये उपग्रहों की यह अब तक की सबसे बड़ी संख्या है।

नाभिकीय सुरक्षा पर खतरा

विजन कुमार पाण्डेय*

न्यूक्लीयर पावर संयंत्र

आज पूरा विश्व नाभकीय संयत्रों की सुरक्षा के लिए चिंचित है। परमाणु हथियार कहीं आतंकियों के हाथ न लग जाए इसके लिए सुरक्षा कवच बनाए जा रहे हैं। लेकिन परमाणु सुरक्षा की ओर ले जाने वाला अन्तर्राष्ट्रीय कानून प्रणाली बड़ी धीमी गति से आगे बढ़ रही है। मूल नाभिकीय सामग्री भौतिक संरक्षण सन्धि को 1979 में 152 देशों ने स्वीकार किया था और यह सन्धि 1987 में लागू हो गई थी। इसमें तय किया गया था कि नाभिकीय सामग्री और परमाणु केन्द्रों के संरक्षण की पूरी जिम्मेदारी उठाने वाले देश नाभिकीय सामग्री के अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन के दौरान भी उसके संरक्षण की पूरी जिम्मेदारी उठाएँगे। लेकिन जैसे-जैसे अपने परमाणु कार्यक्रमों के विकास में लगे देशों की संख्या बढ़ रही है, वैसे-वैसे दुनियाभर में नाभिकीय सामग्री का परिवहन भी बढ़ रहा है। इस वजह से यह जोखिम भी बढ़ता जा रहा है कि नाभिकीय सामग्री संभावित आतंकवादियों के हाथ न लग जाये। सन् 2005 की सन्धि में परमाणु सामग्री के घरेलू उपयोग, उसके भंडारण और उसके परिवहन से जुड़े नियमों का विस्तार किया गया था। विभिन्न देशों के बीच इस सन्धि को लागू करने और इसके नियमों के पालन पर नियंत्रण रखने की जिम्मेदारी अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी को सौंप दी गई थी। लेकिन कुछ देशों ने इसे अपने संप्रभु अधिकारों पर आघात माना। इस वजह से ही इस संधि में नए संशोधन करने के लिए दो तिहाई सदस्य देशों का समर्थन प्राप्त होने में 11 वर्ष का लम्बा समय लग गया। लेकिन विगत मार्च महीने के अन्त में वाशिंगटन में आयोजित नाभिकीय सुरक्षा शिखर सम्मेलन से पहले ही इन नए संशोधनों के लिए आवश्यक 102 सदस्य देशों का समर्थन मिल गया। उल्लेखनीय है कि रूस ने इस शिखर सम्मेलन में भाग नहीं लिया था।

अब दुनिया को सुरक्षित बनाने की दिशा में कुछ कदम और आगे बढ़े हैं। अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी ने घोषणा की है कि गत 8 मई 2016 को नाभिकीय सामग्री भौतिक संरक्षण संधि में नए संशोधन लागू हो गये हैं। इसके अनुसार विभिन्न देश परमाणु केन्द्रों और नाभिकीय सामग्री को पूरे तरह से संरक्षित करने के लिए कानूनी रूप से बाध्य होंगे। नाभिकीय सामग्री की चोरी या तस्करी जैसे किसी भी विध्वंसकारी काम को अपराध माना जाएगा और अब से इससे जुड़ी जानकारियों का अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के माध्यम से ही आदान-प्रदान किया जाएगा। अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के महानिदेशक यूकिया अमानो ने 6 मई 2016 को वियना में इस नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की शुरुआत करते हुए कहा कि यहाँ तक पहुँचने में हमें लगभग ग्यारह साल लगे हैं। आतंकवादी यदि एटमी पदार्थों का उपयोग करके कोई हमला करेंगे तो उसके काफी विनाशकारी परिणाम निकल सकते हैं, लेकिन अब इस संधि के लागू होने से ऐसे हमलों का खतरा कम होगा और दुनिया पहले से कहीं अधिक सुरक्षित हो जाएगी। इन संशोधनों के लागू होने के बाद नाभिकीय संधि और मजबूत हुई है तथा अब वह एटमी आतंकवाद और एटमी सामग्रियों की तस्करी को रोकने में और अधिक कारगर सिद्ध होगी। अमेरिका द्वारा करवाए गए कई नाभिकीय सुरक्षा शिखर सम्मेलनों और अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी की सक्रिय भागीदारी की वजह से इन संशोधनों को लागू किया गया। इससे आतंकवाद से प्रभावित देशों को राहत मिलेगी। साथ ही परमाणु आतंक के खतरे से दुनिया और भी सतर्क हो जाएगी। हमें यहाँ इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि कुछ ही वर्ष पहले तक इस मुद्दे पर सदस्य देशों के बीच भारी मतभेद थे।

चेतावनी चिन्ह

नाभिकीय ऊर्जा प्रेम

भारत के हुक्मरानों का नाभिकीय ऊर्जा प्रेम के पीछे एक लम्बा इतिहास रहा है। ज्ञात हो कि आजादी के बाद से ही देश में बहस चल रही है कि ऊर्जा सुरक्षा के लिए नाभिकीय ऊर्जा पर जोर देना उचित है या फिर शोध और अनुसंधान ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर केन्द्रित होना चाहिए। प्रसिद्ध मार्क्सवादी इतिहासकार एवं वैज्ञानिक डी.डी. कोसाम्बी शुरू से ही इस मत के थे कि भारत जैसे देश में जहाँ यूरेनियम की उपलब्धता निहायत ही कम है, वहाँ नाभिकीय ऊर्जा पर जोर निश्चय ही विकसित देशों पर निर्भरता को बढ़ायेगा। उनका मानना था कि चूँकि भारत में वर्ष के अधिकांश समय में सूर्य की किरणें पर्याप्त मात्रा में आती हैं और चूँकि यहाँ

*हाउस नं. 70, बड़ीबाग, लंका मैदान (मजार के पास), गाजीपुर - 233 001.

एक विस्तृत समुद्री तट है इसलिए शोध और अनुसंधान की दिशा नवीकरणीय ऊर्जा के स्रोतों जैसे- सौर ऊर्जा, समुद्र लहर ऊर्जा, ज्वार-भाटों से उत्पन्न ऊर्जा, पवन-ऊर्जा इत्यादि पर होना चाहिए। लेकिन हमारे शासकों को कोसाम्बी की बजाय भाभा के विचार रास आये, जिनका मत था कि शोध नाभिकीय ऊर्जा की दिशा में होनी चाहिए। इसके फलस्वरूप अब यह आलम है कि शोध और अनुसंधान के लिए आवंटित फण्ड का अधिकांश हिस्सा नाभिकीय शोध पर खर्च होता है। ऐसा नहीं कि हमारी सोच नाभिकीय ऊर्जा का विरोधी है। दरअसल, नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए हो, यही मेरा उद्देश्य है।

ऊर्जा का उपयोग किसी भी रूप में हो सकता है, लेकिन उसके केन्द्र में मुनाफा नहीं होना चाहिए। इसके पीछे मानव हित होना चाहिए। यही इसके सुरक्षा और उपयोगिता की गारण्टी है। यह आतंकवादी संगठन के हाथ न लग जाए, इस पर कड़ी नजर होनी चाहिए। इसीलिए नाभिकीय ऊर्जा के सन्दर्भ में अधिक सुरक्षा और सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। इसके सुरक्षा और सावधानी के और उन्नत तरीके तथा उपाय विकसित करने के लिए अभी काफी शोध की आवश्यकता है। देश के सर्वांगीण विकास हेतु नाभिकीय ऊर्जा कितनी आवश्यक है यह सभी को पता है। दरअसल, नाभिकीय ऊर्जा का इस्तेमाल त्वरित विकास की योजना में होना बहुत आवश्यक है जिसका मकसद देश की व्यापक आबादी के जीवन स्तर में सुधार लाना है।

परमाणु हथियारों पर बैठी दुनिया

स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट (सिप्री) के मुताबिक परमाणु हथियारों की संख्या के मामले में रूस सबसे आगे है। सन् 1949 में पहली बार परमाणु परीक्षण करने वाले रूस के पास करीब 8000 परमाणु हथियार हैं। 1945 में पहली बार परमाणु परीक्षण के कुछ ही समय बाद अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर परमाणु हमला किया था। सिप्री के मुताबिक अमेरिका के पास आज भी 7300 परमाणु बम हैं। परमाणु बम बनाने की तकनीक तक फ्रांस 1960 में पहुँचा था। आज यूरोप में सबसे ज्यादा परमाणु हथियार फ्रांस के पास हैं। उसके एटम बमों की संख्या 300 बताई जाती है। एशिया में आर्थिक महाशक्ति और दुनिया की सबसे बड़ी थल सेना वाले चीन की असली सैन्य ताकत के बारे में बहुत पुख्ता जानकारी नहीं है लेकिन अनुमान है कि चीन के पास 250 परमाणु बम हैं। चीन ने 1964 में पहला परमाणु परीक्षण किया था। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य ब्रिटेन ने पहला परमाणु परीक्षण 1952 में किया था। अमेरिका के करीबी ब्रिटेन के पास 225 परमाणु हथियार हैं। अपने पड़ोसी भारत से तीन बार जंग लड़ चुके पाकिस्तान के पास 100-120 परमाणु हथियार हैं। 1998 में परमाणु बम विकसित करने के बाद से भारत और पाकिस्तान के बीच कोई युद्ध नहीं हुआ है। लेकिन डर है कि अगर दोनों पड़ोसियों के बीच लड़ाई हुई तो वह परमाणु युद्ध में बदल सकती है। 1974 में पहली बार और 1998 में दूसरी बार परमाणु परीक्षण करने वाले भारत के पास 90-110 एटम बम हैं। चीन और पाकिस्तान के साथ सीमा विवाद के बावजूद भारत ने वादा किया है कि वो पहले परमाणु हमला नहीं करेगा। साथ ही भारत का कहना है कि वह परमाणु हथियार विहीन देशों के खिलाफ भी इनका प्रयोग नहीं करेगा। 1948 से 1973 तक तीन बार अरब देशों से युद्ध लड़ चुके इस्राइल के पास करीब 80 नाभिकीय हथियार हैं। इस्राइल के परमाणु कार्यक्रम के बारे में बहुत कम जानकारी सार्वजनिक है। पाकिस्तान के वैज्ञानिक अब्दुल कादिर खान की मदद से परमाणु तकनीक हासिल करने वाले उत्तर कोरिया के पास कम से कम छह परमाणु हथियार हैं। उत्तर कोरिया का असली विवाद दक्षिण कोरिया से है। तमाम प्रतिबंधों के बावजूद 2006 में उत्तर कोरिया ने परमाणु परीक्षण किया।

परमाणु हमला

मानव हित में नाभकीय ऊर्जा का उपयोग

सवाल यह है ही नहीं कि नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग किया जाना चाहिए या नहीं। किसी भी ऊर्जा स्रोत का उपयोग किया जा सकता है, बशर्ते कि उस पूरे उपक्रम के केन्द्र में मुनाफा नहीं बल्कि मनुष्य हो। नाभिकीय ऊर्जा के जिन स्वरूपों के सुरक्षित उपयोग की टेक्नोलॉजी आज मौजूद है, उनकी भी उपेक्षा की जाती है और उचित रूप से उनका उपयोग नहीं किया जा सकता है। दूसरी बात, नाभिकीय रियेक्टर बनाने का काम किसी भी रूप में निजी हाथों में नहीं होना चाहिए क्योंकि इन कम्पनियों का सरोकार सुरक्षा नहीं बल्कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक मुनाफा कमाना होता है। तीसरा, नाभिकीय ऊर्जा के जिन रूपों का उपयोग सुरक्षित नहीं है, उन पर कारगर शोध और उसके बाद उसे व्यवहार में उतारने के कार्य किसी ऐसी व्यवस्था के तहत ही हो सकता है, जिसके लिए निवेश कोई समस्या न हो। यानी, कोई ऐसी व्यवस्था जिसके केन्द्र में पूँजी न होकर, मानव हित हो।

एटमी फ्यूजन से नये सूरज बनाने की तैयारी

हमारे जीवन में ऊर्जा का बहुत महत्व है। इंसान को तरक्की के लिए ऊर्जा चाहिए है। ऊर्जा हमें ईंधन से मिलती है। आज दुनिया में कई तरह के ईंधन काम में लाए जा रहे हैं। इसमें सबसे ज्यादा कोयला और तेल इस्तेमाल हो रहा है। ये दोनों ईंधन जमीन के अंदर से निकाले जाते हैं। लेकिन इन दोनों ईंधनों के भंडार सीमित हैं, इसलिए इनका विकल्प खोजना जरूरी हो गया है। वह वक्त जल्द ही आने वाला है जब ये दोनों खत्म हो जाएंगे। साथ ही, दोनों से प्रदूषण बहुत होता है जिसका असर हमारे वातावरण पर पड़ रहा है। इसीलिए तमाम देश एटमी ईंधन पर भी जोर दे रहे हैं। मगर एटमी प्लांट लगाना बेहद खर्चीला है। दूसरे इसके बाई-प्रोडक्ट के तौर पर निकलने वाले रेडियो एक्टिव कचरे को ठिकाने लगाना भी बड़ी चुनौती है। इसीलिए काफी दिनों से वैज्ञानिक एक ऐसे ईंधन की तलाश कर रहे हैं जिससे पर्यावरण को भी नुकसान न हो और उसका कोई बाई-प्रोडक्ट (सह-उत्पाद) भी न हो।

परमाणु युद्ध के परिणाम

हमारी धरती को बहुत सारी ऊर्जा की जरूरत है, जो कोयले और तेल से नहीं पूरी होने वाली। इस चुनौती का मुकाबला, एटमी पावर प्लांट से भी नहीं किया जा सकता। फ्यूजन ही वो तकनीक है जिससे धरती की ऊर्जा की जरूरतें पूरी की जा सकती हैं। फ्यूजन में दो परमाणुओं का मेल होने से ऊर्जा निकलती है। जैसे एटमी विस्फोट में दो परमाणुओं के टकराहट से बेहिसाब ऊर्जा निकलती है। वैसे ही जब दो परमाणु एक दूसरे से जुड़ते हैं तो दोनों के मिलन से भी बहुत ऊर्जा निकलती है। एटमी विस्फोट से भी ज्यादा इसमें ऊर्जा निकलती है। इसी तकनीक से हाइड्रोजन बम भी बनाए जाते हैं। सूर्य हमारी ऊर्जा का इकलौता स्रोत है। वहाँ भी इतनी तेज आग फ्यूजन के चलते ही है। वैज्ञानिकों को लगता है कि अगर इंसान दो परमाणुओं का मेल कराकर उसमें से ईंधन बना सके तो एनर्जी का इससे अच्छा माध्यम कोई और हो ही नहीं सकता। इससे प्रदूषण भी नहीं फैलेगा और इसके खत्म होने का भी कोई खतरा नहीं होगा। फिर हमारी ऊर्जा की सारी जरूरतें इससे पूरी हो सकती हैं।

फ्यूजन पावर को नियंत्रित करने की तैयारी

जब से फ्यूजन पावर के बारे में पता चला है तब से वैज्ञानिक इस तकनीक से चलने वाले पावर प्लांट बनाने के लिए तत्पर हैं। फ्रांस में तो फ्यूजन तकनीक से चलने वाला एक रिएक्टर बरसों से बनाया जा रहा है। इसका नाम है आईटर। इस प्रोजेक्ट में कई देशों ने पैसे लगाए हैं। इसकी कामयाबी का पूरी दुनिया को अभी भी बेसब्री से इंतजार है। लेकिन यह प्रोजेक्ट इतनी धीमी गति से चल रहा है कि इसका बजट कई गुना बढ़ चुका है। फिलहाल इसके पूरा होने की कोई उम्मीद भी नहीं है। फ्यूजन तकनीक से ऊर्जा पैदा करने में परेशानी जो आ रही है वो ये है कि दो परमाणुओं की टक्कर लगातार कराई कैसे जाए? फिर इससे निकलने वाली ऊर्जा को इकट्ठा कैसे किया जाए? दरअसल दो एटमों को टकराने में काफी ताकत लगती है। अब तक वैज्ञानिक वो तरीका नहीं निकाल पाए हैं जिससे एटमों की टक्कर के बाद उनका मिलान करके जो ऊर्जा निकले, वो इस प्रक्रिया को पूरी करने से ज्यादा हो। ऐसा नामुमकिन नहीं है और ये बात हाइड्रोजन बम के तमाम टेस्ट से साबित भी हो चुकी है। मगर, एटमों के फ्यूजन से निकलने वाली ऊर्जा को कैसे नियंत्रित करके दूसरे काम में लाया जा सके, वो तरीका अब तक किसी ने नहीं ढूँढा। इस पर और अधिक आविष्कार करने की जरूरत है।

अमेरिका भी अभी तक कोई फ्यूजन रिएक्टर नहीं बना सका है। लेकिन कुछ अरबपति अपनी झोली खोलने को तैयार हैं, जो फ्यूजन तकनीक को कामयाब करना चाहते हैं और इंसानियत की मदद करना चाहते हैं। ऐसे अरबपति कारोबारियों में पहला नाम है अमेजन कंपनी के मालिक जेफ बेजोस। उन्होंने कनाडा के एक फ्यूजन एनर्जी प्रोजेक्ट में करोड़ों का दाँव खेला है। कनाडा के वैंकूवर शहर में चल रहे इस प्रोजेक्ट का नाम है जनरल फ्यूजन। इसके अगुवा हैं मिशेल लाबर्ज। मिशेल ने साल 2001 में लेजर प्रिंटिंग कंपनी क्रियो की नौकरी छोड़कर फ्यूजन तकनीक को कामयाब बनाने का मिशन शुरू किया था। मिशेल का कहना है कि हमारी धरती को बहुत सारी ऊर्जा की जरूरत है, जो कोयले और तेल से नहीं पूरी होने वाली। इस चुनौती का मुकाबला एटमी पावर प्लांट से भी नहीं किया जा सकता। उनकी नजर में फ्यूजन ही वो तकनीक है जिससे धरती की ऊर्जा की जरूरतें पूरी की जा सकती हैं।

सूर्य हमारे अस्तित्व के लिए प्रमुख ऊर्जा का स्रोत है। सूर्य का ताप इसमें मौजूद हाइड्रोजन गैस के बीच होने वाले नाभिकीय फ्यूजन के परिणाम स्वरूप पैदा होता है। इसलिए विश्व के विभिन्न देशों के वैज्ञानिक हमेशा से यह कोशिश कर रहे हैं कि एक दिन वे सूर्य के बराबर ऊर्जा पैदा कर सकेंगे। अगर ऐसा हो गया तो मानव के सामने मौजूद ऊर्जा की समस्या आसानी से खत्म हो जाएगी। इसलिए ये वैज्ञानिक कृत्रिम सूर्य बनाने वाले हैं। चीन भी ऐसी तकनीक प्राप्त करने वाला है। चीन में निर्मित नये चरण वाले नाभिकीय फ्यूजन उपकरण में काम शुरू हो गया है यह विश्व में औपचारिकतौर पर काम चलने वाला प्रथम ऐसा उपकरण है जिसे चीन ने बनाया है। इस उपकरण के निर्माण से विश्व के नागरिकों को उपयोगी नाभिकीय ऊर्जा का लाभ मिल सकेगा। ऐसी संभावना है कि कृत्रिम सूर्य की कल्पना शायद कुछ समय बाद ही संपन्न हो जाए।

समुद्र में भारी हाइड्रोजन का भंडार

नाभिकीय फ्यूजन की क्षमता अतुल्य है। क्योंकि नाभिकीय फ्यूजन हाइड्रोजन से पैदा होता है और हाइड्रोजन तत्व का अनगिनत भंडार है। अभी तक भारी हाइड्रोजन यानी ड्यूटेरियम से नाभिकीय फ्यूजन कराया जाता है। नाभकीय फ्यूजन कराने के लिए उपयोगी सामग्री का समुद्री जल में काफी भंडार है। अनुमान है कि समुद्र के पानी में भारी हाइड्रोजन का

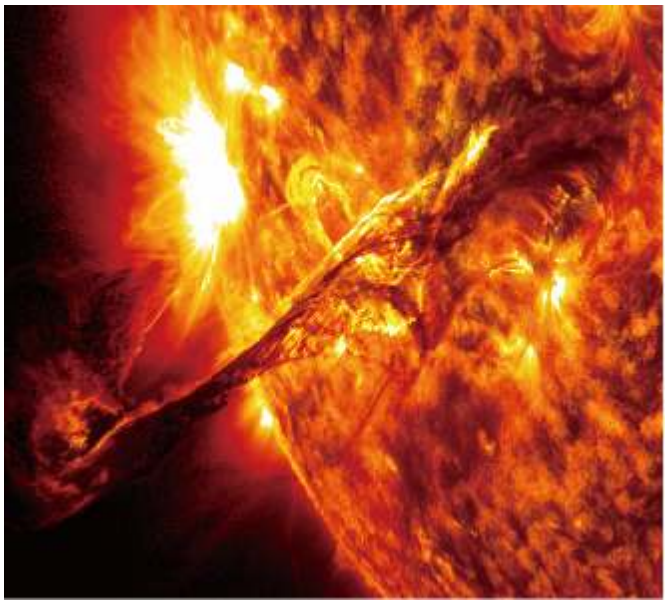

भंडार 450 खरब टन तक है, जो एक कृत्रिम सूर्य बनाने के लिए पर्याप्त है। पिछले सौ वर्षों में मानव के उपयोगी ऊर्जा में भारी परिवर्तन आया है। पहले मानव केवल लकड़ी जलाते थे, इसके बाद कोयला और तेल आया। आज हम रसायनिक ईंधन के अतिरिक्त नाभिकीय ऊर्जा, सौर ऊर्जा और जलीय ऊर्जा आदि सभी का प्रयोग कर रहे हैं। विभिन्न देशों के नाभिकीय बिजली घरों में नाभिकीय फिशन का रिएक्टर काम कर रहा है। लेकिन नाभिकीय फ्यूजन से चलाये जाने वाले बिजली घर का निर्माण अभी तक नहीं हो पाया है। अब तो चीन, अमेरिका, जापान, फ्रांस और रूस आदि सबने नाभिकीय फ्यूजन से चलाये जाने वाले बिजली घर पर शोध कार्य शुरू कर दिया है। चीन ने वर्ष 1998 से नयी कार्यशैली वाले नाभिकीय फ्यूजन रिएक्टर पर अनुसंधान शुरू किया था, जिस पर काफी खर्च हुआ था।

अभी नाभिकीय फ्यूजन पैदा करने में अन्य कठिनाइयों को दूर करना बाकी है। नाभिकीय फ्यूजन पैदा करने के लिए 40-50 करोड़ डिग्री ऊँचा तापमान चाहिए। पृथ्वी पर कोई सामग्री ऐसे उच्च तापमान को झेलने में समर्थ नहीं है। इस तापमान में हर चीज तुरंत गैस बन जाएगी। इसलिए नाभिकीय फ्यूजन करने के लिए किस तरह का बिजली घर का निर्माण किया जाए, यह कठिन सवाल है। इस पर अभी शोध कार्य जारी है। वैसे इसके लिए चुंबकीय शक्ति काम कर सकती है।

चुंबकीय क्षेत्र के जरिये एक विशेष कन्टेनर बनाया जा सकता है जिसके केन्द्र में फ्यूजन तत्व रखा जा सकता है। फिर इसके अन्दर नाभिकीय फ्यूजन कराया जा सकता है। नाभकीय फ्यूजन के लिए न सिर्फ तकनीक, बल्कि काफी धनराशि भी चाहिए। कोई भी एक देश अकेले यह काम नहीं कर सकेगा। इसलिए चीन, भारत, रूस, जापान, कोरिया गणराज्य, अमेरिका और यूरोपीय संघ ने वर्ष 1985 में अंतर्राष्ट्रीय नाभिकीय फ्यूजन रिएक्टर योजना पेश की थी। लेकिन फिर यह मामला ठंढा पड़ गया। अगर इसमें सफलता मिल गई तो एक नया कृत्रिम सूरज हमारे बीच होगा। प्राकृतिक सूरज अब बूढ़ा हो रहा है इसलिए विकल्प

पेड़

सुरेश ''आनन्द''*

वनों में आच्छादित हरे-भरे पेड़
आते हैं बहुत याद।
वहीं थे मीत
समीर की नाव पर सवार
नित्य सुबह आते थे
अपनी बाँहों को फैला
चूमते थे।
देते थे प्राणदायक वायु
महकते थे घर-घर।
एक सुबह देखा
उनके पके फल
उन पर नहीं थे।
कुछ दिनों पश्चात्
हरी-भरी पत्तियाँ भी
उन पर नहीं थी?
निरन्तर ही प्रतीक्षारत
नई पत्तियाँ आएँगी।
पर एक सुबह
डालियाँ भी गायब थीं?
कुछ दिनों पश्चात्
मात्र जड़ दिख रही थी?
अब!
मीठे फलों की सुगंध
नहीं भाती।
पत्तियाँ खाती थी बकरी
व्यथित व्याकुल घूमती हैं?
ठुंठ सिर्फ
अस्तित्व की याद करते
पता नहीं
आदमी! कुल्हाड़ी क्यों रखता है?
क्यों नहीं आती
उसे पर्यावरण की याद?
अब वे पेड़ प्रतिदिन
बहुत याद आते हैं?

*आनन्द परिधि, एल 62, पं0 प्रेमनाथ डोगरा नगर, रतलाम - 457 001.

स्वस्थ मृदा एवं उत्तम स्वास्थ्य के लिए जैविक कृषि

[1]प्रतीक सनोडिया एवं [2]प्रो० मनोज कुमार सिंह*

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 60 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि है, अर्थात् ग्रामीण जीवनयापन जो मुख्यतः कृषि से संचित पूँजी पर आश्रित होती है। वर्तमान बढ़ती जनसंख्या को भोजन की आपूर्ति एवं अन्य कृषि आधारित उद्योग धंधों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति कृषि से होती है। ऐसी परिस्थिति में पर्यावरण संतुलन के लिए मृदा स्वास्थ्य को बेहतर बनाये रखना एक बड़ी चुनौती है। वर्तमान समय में कृषि में असंतुलित रसायनों के उपयोग से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है जिसके दुष्परिणाम चिन्ता के विषय बन गये हैं। भारत में उद्योग धंधों में वृद्धि के कारण कृषि भूमि निरंतर घट रही है। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले बीजों एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अधिक किया जाने लगा है, जिससे भारत से गरीबी एवं भुखमरी की समस्या समाप्त की जा सके। जैविक कृषि के उपयोग द्वारा अन्न की गुणवत्ता बढ़ाकर इन समस्याओं से मुक्त हुआ जा सकता है। जैविक कृषि मानव समाज के लिए पूर्णरूप से सुरक्षित और पर्यावरण के लिए अनुकूल एवं लाभदायक है।

जैविक कृषि के उपयोग और लाभों पर ध्यान आकर्षित करने हेतु भारत के प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी जी ने पिछले दिनों जैविक कृषि को बढ़ावा देने के लिए सिक्किम को पूर्णतया जैविक कृषि राज्य घोषित किया है। सिक्किम राज्य में लगभग 75000 हेक्टेयर जैविक कृषि भूमि है, अतएव प्रधानमंत्री ने किसानों को जैविक कृषि से अधिकाधिक लाभ अर्जित करने के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएँ क्रियान्वित करने का निर्णय लिया है।

भारत में आर्गेनिक फार्मिंग को बढ़ाने के लिए नेशनल प्रोजेक्ट ऑन आर्गेनिक फार्मिंग की शुरुआत 2004 में 57 करोड़ रुपये की लागत से हुई तथा नेशनल सेंटर ऑफ आर्गेनिक फार्मिंग, गाजियाबाद के अंतर्गत 6 आंचलिक केन्द्र (रीजनल सेंटर्स) बैंगलोर, भुवनेश्वर, पंचकुला, इम्फाल, जबलपुर और नागपुर में स्थापित किए गए जिनके द्वारा किसानों को जैविक कृषि संबन्धी जानकारियाँ दी जाती हैं। जैविक कृषि से उत्पादित खाद्यान्न को किसानों द्वारा बाजार में उचित दाम पर बेचने के लिए सरकार ने विभिन्न सहकारी एवं निजी केन्द्रों की भी स्थापना की है।

जैविक कृषि की आवश्यकता

भारत में हरित क्रांति की शुरुआत सन् 1966-67 में हुई जिसमें कृषि उत्पादकता में वृद्धि के उद्देश्य से अधिक उपज के लिए फसलों की उन्नत किस्मों के साथ-साथ रसायनों का प्रयोग आरम्भ हुआ। परिणामस्वरूप, अन्न उत्पादन बढ़ गया, किन्तु रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, फफूँदनाशकों एवं खरपतवारनाशकों के असंतुलित इस्तेमाल से हमारी खाद्य शृंखला प्रदूषित होने लगी, मृदा स्वास्थ्य खराब हो गया जिसके दुष्परिणाम भारत के पंजाब में अधिक देखने को मिले हैं। वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में पाया है कि पेय जल में नाइट्रोजन की सांद्रता 10 मिलीग्राम से अधिक होने पर बच्चों में ब्लू बेबी सिंड्रोम की समस्या उत्पन्न होती है। अन्य कीटनाशकों के अधिक उपयोग से मनुष्यों में कैंसर जैसी घातक बीमारी हो सकती है। रसायनों के प्रभाव से फलों एवं सब्जियों की गुणवत्ता एवं स्वाद में भी परिवर्तन हो रहा है। पर्यावरण की सुरक्षा एवं मानव स्वास्थ्य को बचाने के लिए कृषि में रसायनों पर निर्भरता कम करके जैविक कृषि पर आश्रित होना लाभकारी सिद्ध होगी।

स्वस्थ मृदा　　उत्तम पौध वृद्धि

कृषि में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों एवं फफूँदनाशकों को पूर्णरूप से प्रतिबंधित करके उनके स्थान पर जैविक विधि से तैयार नाडेप कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीवाश एवं अन्य जैविक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों एवं फफूँदनाशकों का कृषि में समायोजन तथा उचित ढंग से प्रयोग करना जैविक कृषि है, किन्तु मानव मल का उपयोग वर्जित है।

आर्गेनिक सर्टिफिकेशन

भारत के तमिलनाडु में किसान बीज फाउंडेशन, सर्टिफाइड एंड ट्रूथफुली लेबल्ड सीड्स के प्रयोग के लिए अधिक जागरूक है। इसके लिए भारत में आर्गेनिक सर्टिफिकेशन डिपार्टमेंट के द्वारा निरीक्षण एवं प्रमाणीकरण का कार्य आर्गेनिक प्रोडक्शन सिस्टम के तहत नेशनल प्रोग्राम फॉर आर्गेनिक प्रोडक्शन नॉर्म्स द्वारा किया जाता है। यह एग्रीकल्चरल एंड प्रोसेस्ड फूड प्रोडक्ट्स एक्सपोर्ट्स डेवलपमेंट अथॉरिटी (अपेडा), दिल्ली द्वारा प्रमाणित किया जाता है। भारत सरकार ने सभी राज्यों में सीड सर्टिफिकेशन, सीड क्वालिटी कंट्रोल, सीड टेस्टिंग

*1. सहायक प्राध्यापक, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान संकाय 2. आचार्य, शस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

एंड आर्गेनिक सर्टिफिकेशन योजनाओं की शुरुआत की है जिसमें किसानों का रजिस्ट्रेशन किया जाता है, फिर उन्हें ट्रेनिंग दी जाती है ताकि वे आर्गेनिक फूड्स उगाकर लाभ कमा सकें।

कैसे करें जैविक कृषि

1. गोबर की खाद एक सस्ता एवं अच्छा विकल्प है, इसे तैयार करने के लिए किसानों को अन्य खर्च वहन नहीं करना पड़ता। वे इसे अपने खेतों में स्वयं बना सकते हैं। पशुओं से प्राप्त गोबर, मूत्र तथा उपयोग के पश्चात् बचे चारे को एकत्रित करके पूर्व में तैयार किए गए गड्ढों में भरा जाता है फिर नियमित अंतराल में उसके ऊपर पानी का छिड़काव किया जाता है। इस प्रकार 3 से 4 माह उपरान्त भूरे काले रंग की गोबर की खाद तैयार हो जाती है जिसमें मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम (0.5 : 0.25 : 0.5 प्रतिशत) तथा सूक्ष्म तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। गोबर की खाद उपयोग करके सभी फसलों में उत्पादन बढ़ाकर मृदा की सेहत सुधारी जा सकती है।

तैयार गोबर खाद का एकत्रण

2. हरी खाद के इस्तेमाल द्वारा कार्बन की मात्रा बढ़ाकर मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा को सुधारा जा सकता है। हरी खाद के लिए सनई, ढैंचा एवं ग्लाइसिरिडिया आदि मुख्य फसलों के पूर्व या साथ में खेतों में उगाई जाती है फिर इन्हें काटकर मृदा में मिला दिया जाता है जिससे सड़ने के उपरान्त ये अधिक मात्रा में नाइट्रोजन फसलों को उपलब्ध कराते हैं, साथ ही खरपतवार नियंत्रण भी होता है। हरी खादों के उपयोग द्वारा रासायनिक खरपतवारनाशकों पर निर्भरता कम की जा सकती है।

3. वर्मीकम्पोस्ट केंचुओं से तैयार की जाने वाली एक बहुत उपयोगी तथा लाभदायक जैविक खाद है, यह खाद कुछ मुख्य स्पीसीज जैसे *आइसीनिया फोटिडा* को उपयोग में लाकर बनाई जाती है। ये स्पीसीज विभिन्न अवशिष्ट पदार्थों को अपघटित करके वर्मीकम्पोस्ट में बदल देते हैं जिसका खेतों में उपयोग करने से मृदा भुरभुरी हो जाती है। इससे ऑक्सीजन की उपलब्धता जड़ों को आसानी से प्राप्त होती है और माइक्रोबियल कार्बन में वृद्धि से सूक्ष्मजीवों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती है। ये सूक्ष्मजीव आवश्यक अम्लों का उत्सर्जन करते हैं जिससे मृदा में पाये

केंचुआ से तैयार खाद

जाने वाले मुख्य और सूक्ष्म पोषक तत्व घुल जाते हैं और फसलों की जड़ें इन्हें अवशोषित करती हैं जिससे फलों, सब्जियों तथा अन्न की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होती है।

4. वर्मीवाश केंचुओं द्वारा स्रावित एक तरल द्रव है। यह पोषक तत्वों से युक्त अच्छा रोगाणु नाशक है जिसमें रोगरोधक गुण होने से कई बीमारियों के लिए फलों, सब्जियों एवं फसलों में उपयोगी है। यह मिर्च में थ्रिप्स के प्रभाव को कम करता है, अतः यह कीटनाशक का कार्य भी करता है। वर्मीवाश किसान स्वयं तैयार कर सकते हैं तथा वर्मीवाश और पानी का 1:10 अनुपात में घोल तैयार करके पर्णीय छिड़काव करने से 15-20 प्रतिशत उपज में वृद्धि होती है।

वर्मीवाश इकाई

5. जैविक उत्पाद जैसे सूखी मछलियों का चूरा, हड्डियों का चूरा तथा पशु रक्त आदि का प्रयोग नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस की आपूर्ति के लिए फसलों में किया जाता है। ये सांद्रित पदार्थ है जिनकी कम मात्रा की आवश्यकता होती है, अतः ये मृदा में कोई हानिकारक प्रभाव नहीं छोड़ते।

वर्मीवाश का छिड़काव

6. जैविक उर्वरक एजोला, एजोस्पाइरिलम, एजोटोबैक्टर तथा राइजोबियम वायुमंडलीय स्वतंत्र नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों की जड़ों में उपलब्ध कराते हैं। फॉस्फोरस घोलक जीवाणु मृदा में उपस्थित स्थिर फॉस्फोरस को घोल देते हैं जिससे जड़ें आसानी से फॉस्फोरस अवशोषित कर लेती हैं। ये जैविक उर्वरक 20-25 प्रतिशत तक उत्पादन बढ़ाते हैं।

7. ट्राइकोडर्मा का प्रयोग बीज उपचार के लिए किया जाता है यह विभिन्न बीजजनित रोगों के नियंत्रण में सहायक होता है यह जैविक फफूँद के कल्चर से तैयार किया जाता है एवं सभी फसलों में पैदावार बढ़ाने के उद्देश्य से बीज में मिलाकर बुवाई में प्रयुक्त होता है।

8. विभिन्न जलीय जंतु जैसे मछलियों की प्रजाति ग्रासकार्प इत्यादिका इस्तेमाल जलीय खरपतवारों के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

9. तम्बाकू के अर्क से तैयार किए गए कीटनाशक को पानी में 1:10 अनुपात में मिलाकर छिड़काव करने से कीटों के प्रकोप को कम किया जाता है। गौमूत्र तथा कालीमिर्च को निश्चित अनुपात में मिलाने से यह कीटनाशक का कार्य करता है।

जैविक कृषि से उत्पादित फल एवं सब्जियाँ

जैविक खादों का फसलों के उत्पादन पर प्रभाव

क्र.सं.	जैविक खाद	मात्रा (प्रति हेक्टेयर)	उत्पादन में वृद्धि
1.	गोबर की खाद	5 टन (फसलों में) 6 टन (सब्जियों में)	10-15% 12-16%
2.	वर्मीकम्पोस्ट	4 टन (फसलों में) 5 टन (सब्जियों में)	10-15% 14-18%
3.	हरी खाद	30 किलोग्राम (सनई एवं ढैचा के लिए)	10-12%
4.	वर्मीवाश	50-60 लीटर	15-20%

जैविक खादों में पोषक तत्वों की मात्रा

उपस्थित अवयव	गोबर की खाद	वर्मीकम्पोस्ट	वर्मीवाश
ओर्गानिक कार्बन	17%	16%	0.008 पीपीएम
नाइट्रोजन	0.5%	1.6%	0.01 पीपीएम
फॉस्फोरस	0.25%	0.7%	1.69 पीपीएम
पोटैशियम	0.5%	0.8%	25 पीपीएम
कैल्शियम	0.9%	0.5%	3.0 पीपीएम
कॉपर	2.8 पीपीएम	5.0 पीपीएम	0.01 पीपीएम
आयरन	146.5 पीपीएम	175 पीपीएम	0.06 पीपीएम
मैग्नीशियम	0.2%	0.2%	158.44 पीपीएम
मैग्नीज	69.0 पीपीएम	96.5 पीपीएम	0.58 पीपीएम
जिंक	14.5 पीपीएम	300-700 पीपीएम	0.02 पीपीएम
पी एच	7.9	7.0-8.2	7.0-8.0
स्रोत- पंजाब स्टेट कॉउंसिल फॉर साइंस एंड टेक्नोलॉजी (2010)			

जैविक कृषि के लाभ

जैविक कृषि करने से अपेक्षाकृत अधिक पैदावार बढ़ाई जा सकती है। जैविक उत्पाद उत्तम एवं मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। जैविक खेती से तैयार फलों, सब्जियों तथा अन्न की गुणवत्ता अच्छी होने से ये स्वादिष्ट एवं पोषक तत्वों से युक्त होते हैं। जैविक कृषि स्थानीय रूप से अपनाकर किसान रासायनिक कृषि पर निर्भरता कम करके अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। जैविक उत्पादों की माँग अधिक होने से किसानों को अधिक दाम प्राप्त होता है। मृदा में पाये जाने वाले विभिन्न सूक्ष्मजीवों की संख्या में वृद्धि होने से मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशा अनुकूल होती है जिसके फलस्वरूप मृदा जल संग्रहण एवं वायु संचरण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है।

मधुमेह रोगियों को मिलेगा इंसुलिन सूई से छुटकारा

डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी*

सूई का नाम सुनते ही प्रथम दृष्टया कष्ट का एहसास होने लगता है। परन्तु एक पीड़ा को दूर करने के लिए दूसरी पीड़ा सहनी पड़ती है। अभी तक मधुमेह रोगियों के लिए इंसुलिन सूई का उपयोग करना अपरिहार्य हो गया था। इस दोहरे कष्ट से निजात दिलाने के लिए विश्वभर के वैज्ञानिक व चिकित्सक काफी दिनों से प्रयास कर रहे हैं। हालाँकि उनके प्रयासों से सफलता की उम्मीदें बढ़ गयी हैं। 7 अप्रैल 2016 की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग छः करोड़ बीस लाख मधुमेह रोगी हैं, मात्र एक वर्ष में लगभग बीस लाख रोगी बढ़े हैं। चीन, जहाँ 9 करोड़ 23 लाख मधुमेह रोगी हैं, के बाद भारत दूसरे स्थान पर हैं। सन् 2030 तक भारत में यह संख्या दस करोड़ से अधिक हो जाने की संभावना व्यक्त की गयी है।

यकृत में बनेगा इंसुलिन

जर्मनी में मधुमेह पर एक ऐसा शोधकार्य चल रहा है जिससे भविष्य में मधुमेह का इलाज बिना इंसुलिन के संभव हो सकेगा। बर्लिन के एक उपनगर बूख में जर्मन शोध संस्था हेल्महोल्स सोसायटी के अधीन एक ऐसी परियोजना चल रही है, जिसका लक्ष्य मधुमेह के उपचार की एक नई विधि विकसित करना है। इटली की डॉ0 फ्रांचेस्का स्पियानोली इस शोधकार्य की संचालक हैं। वे जानने की कोशिश में लगी हैं कि क्या यकृत (लीवर) की कोशिकाओं को ऐसी बीटा कोशिकाओं में बदला जा सकता है, जो केवल अग्न्याश्य (पैंक्रियास) में मिलती हैं। यह हमारे पेट में यकृत के पास की एक रसस्रावी ग्रंथि है जिसके दो मुख्य काम हैं। एक है, ऐसे पाचक रस पैदा करना जो भोजन में निहित प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और वसा को इस तरह खंडित करे कि बाद में हमारी आँतें उन्हें सोख सकें, और दूसरा है, कुछ हार्मोन पैदा करना जिनमें इंसुलिन सबसे अधिक प्रसिद्ध है। अग्न्याशय की जो बहुत ही विशिष्ट कोशिकाएँ इंसुलिन बनाती हैं, उन्हें ग्रीक वर्णमाला के बीटा- कोशिकायें (β-cells) का नाम दिया गया है। बीटा-कोशिकाओं के काम नहीं करने पर मधुमेह पैदा हो जाता है। दूसरे शब्दों में, मधुमेह का अर्थ है बीटा-कोशिकाएँ काम नहीं कर रही हैं। अग्न्याशय में इंसुलिन नहीं बन रहा है और उसे अलग से लेना पड़ रहा है।

स्वस्थ यकृत

डॉ0 स्पियानोली यकृत की कुछ कोशिकाओं की कार्य प्रणाली को जीन इंजीनियरिंग की सहायता से बदलने का प्रयास कर रही हैं जिससे इंसुलिन बनाने वाली बीटा-कोशिकाओं का काम वे करने लगें। जब इंसुलिन एक बार फिर शरीर के भीतर ही बनने लगेगा, उसे बाहर से नहीं लेना पड़ेगा। वे जानना चाहती हैं कि वे कौन से जीन हैं, जो अग्न्याशय की कोशिकाओं को बीटा-कोशिकाओं में बदलने के लिए जिम्मेदार होते हैं। दूसरे शब्दों में, वे मधुमेह के रोगी की बेकार हो गयी बीटा-कोशिकाओं की जगह लेने वाली नयी कोशिकाएँ बनाने का रास्ता पाना चाहती हैं।

उल्लेखनीय है कि अग्न्याशय की इंसुलिन निर्माता बीटा-कोशिकाएँ एक बार बेकार, क्षतिग्रस्त या नष्ट हो जाने पर दुबारा नहीं बनतीं, कोशिका प्रतिरोपण या अग्न्याशय प्रतिरोपण भी सफल नहीं हो पाता। इसलिए डॉ0 फ्रांचेस्का स्पियानोली यकृत की कुछ कोशिकाओं से ही जीन तकनीक द्वारा बीटा-कोशिकाओं में बदलने का रास्ता ढूँढ रही हैं। इसे वे यकृत की कुछ कोशिकाओं के जीनों को फिर से प्रोग्रैम करके उन्हें अग्न्याशय के बदले यकृत में ही दुबारा प्रतिरोपित करेंगी। यह यकृत ही इंसुलिन भी पैदा करने लगेगा। डॉ0 स्पियानोली का मानना है कि ऐसा संभव हो सकता है, क्योंकि यकृत और अग्न्याशय की कोशिकाएँ काफी मिलती-जुलती हैं और दोनों भ्रूण अवस्था वाले एक ही हिस्से की स्टेम कोशिकाओं से विकसित होती हैं। उनकी इस सफलता से संसार के करोड़ों मधुमेह पीड़ितों को इंसुलिन की सूई लेने से छुटकारा मिल जायेगा।

तम्बाकू के पौधे से इंसुलिन

किसी शरीर में इंसुलिन हार्मोन का प्रवेश के वैकल्पिक विधि के रूप में मधुमेह चिकित्सा का विकास बहुत ही महत्वपूर्ण है। फ्लोरिडा विश्वविद्यालय के प्रो0 हेनरी डेनियल के निर्देशन में कार्यरत अनुसंधानकर्ताओं के एक

प्रो0 हेनरी डेनियल
सलाद के पौधे के साथ

दल ने अपने अनुसंधान में पाया है कि मधुमेह रोग होने पर अथवा होने से पूर्व ही मधुमेह को नियंत्रित किया जा सकेगा। उन्होंने जैव-अभियांत्रिकी द्वारा इंसुलिन जीनयुक्त तम्बाकू का पौधा बनाया है।

तम्बाकू के पौधे

लिट्यूस सालाद का पौधा

*हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005.

इस प्रयोग में उन्होंने मधुमेह के पाँच सप्ताह पुराने चूहों पर आठ सप्ताह तक इसके ठंडे शुष्क पादप कोशिकाओं के चूर्ण का प्रयोग किया। इसके परिणामस्वरूप, उनमें मूत्र और रक्तशर्करा स्तर सामान्य पाये गये और अब उनकी कोशिकाओं ने इंसुलिन का सामान्य स्तर पर उत्पादन शुरू कर दिया।

सलाद के पौधे से इंसुलिन

तम्बाकू के कुछ दुर्गुणों को देखते हुए वैज्ञानिकों ने इसके स्थान पर इंसुलिन पैदा करने हेतु कम लागत से पैदा होने वाली लिट्यूस पौधे में भी सफलता पायी है। भविष्य में इनके चूर्ण के कैप्सूल का उपयोग कर मधुमेह पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकेगा। इस खोज से वैज्ञानिकों में एक नई उम्मीद पैदा हुई है। इसमें जैव अभियांत्रिकी विधि द्वारा परिवद्धित मुख्य पौध की कोशिकाओं की कोशिकाभित्ति इंसुलिन हार्मोन को अपघटित होने से बचायेगी। मनुष्य की आँत में पादप कोशिकाओं के पहुँचते ही इंसुलिन निकलने लगेगी जहाँ उपस्थित जीवाणु इनकी कोशिकाभित्ति को धीरे-धीरे अपघटित करेंगे। उम्मीद की जा रही है कि जब लेट्यूस से इंसुलिन उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगेगा तब इसे चूर्णरूप में कैप्सूल में भरकर मधुमेह रोगियों पर अधिक सुविधा पूर्वक उपयोग किया जा सकेगा। इसे विश्व के करोड़ों मधुमेह रोगियों द्वारा उपयोग किया जायेगा जिससे उनके चिकित्सा व्यय व अन्य परेशानियों में कमी आयेगी।

शिमला मिर्च से भी होगा बचाव

शिमला मिर्च

मधुमेह और मोटापे से बचने के लिए शिमला मिर्च खाना लाभप्रद बताया गया है। एक शोध में पता चला है कि कच्ची शिमला मिर्च सलाद में डालकर खाने से इस बीमारी की आशंका काफी कम हो जाती है। इस अनुसंधान में यह जानने का प्रयास किया गया है कि यह खाद्य पदार्थ पाचन तंत्र को कैसे प्रभावित करता है तथा इससे ग्लूकोज और वसा का पाचन किस तरह प्रभावित होता है। अनुसंधान में पाया गया है कि शिमला मिर्च ग्लूकोज और वसा की पाचन प्रक्रिया को मंद और बेहतर बना देते हैं।

स्टेम कोशिकाओं से मधुमेह का उपचार

मधुमेह रोगियों की चिकित्सा स्टेम सेल (स्टेम सेल ट्रीटमेंट) द्वारा करने का कार्य काफी आगे बढ़ चुका है। इससे दवा का उपयोग किये बिना टाइप वन और टाइप टू, दोनों प्रकार के मधुमेह रोग की चिकित्सा संभव है। इस चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य जीवन अवधि को बढ़ाना, लक्षणों में कमी करना, मधुमेह से जुड़ी जटिलताओं (जैसे अंधापन, हृदय रोग, वृक्क (किडनी) खराब होना, हाथों या किसी अंग का विच्छेदन) से बचाव करना है। इनके साथ ही गोलियों के प्रयोग द्वारा रक्त शर्करा स्तर में होने वाली गिरावट को नियंत्रित करना भी है।

इस चिकित्सा हेतु उन मरीजों का चयन किया जायेगा। जिनका रक्त शर्करा स्तर अनियंत्रित हो, टइप वन या टाइप टू मधुमेह रोगी हो तथा मधुमेह के कारण जटिलता उत्पन्न हो गयी हो। इस चिकित्सा की सफलता के बाद उम्मीद की जा रही है कि इससे इंसुलिन लेना पूरी तरह से बन्द हो जायेगा अथवा मात्रा घट जायेगी। उम्मीद यह भी की जा रही है कि समय के साथ ही रक्त शर्करा स्तर भी नियंत्रित हो जायेगी।

शाकाहारी इंसुलिन

एक भारतीय दवा कंपनी ने मधुमेह के मरीजों के लिए एक ऐसी इंसुलिन बनाई है जिसके बारे में उसका दावा है कि यह एशिया की पहली शाकाहारी इंसुलिन है। कंपनी का कहना है कि यह इंसुलिन खमीर (यीस्ट) से बनाई जाती है। इस इसुंलिन के आने से कीमतों में लगभग 40 फीसदी तक की कमी आएगी। यह शाकाहारी इंसुलिन उन भारतीयों के लिए एक अच्छी खबर है जो शाकाहारी प्रवृत्ति के है।

मधुमेह की पहली आयुर्वेदिक दवा बीजीआर ३४

सीएसआईआर ने 03 फरवरी, 2016 बुधवार को देश की पहली आयुर्वेदिक मधुमेहरोधी दवा बीजीआर 34 लाँच की। इस दवा को औपचारिक रूप से पेश करते हुए प्रधान वैज्ञानिक डॉ ए.के.एस. रावत ने कहा कि बीजीआर 34 को सीएसआईआर की अनुसंधान इकाई राष्ट्रीय वानस्पतिक अनुसंधान संस्थान और केन्द्रीय औषधीय एवं सुगंधित पौधा संस्थान (सीमैप) द्वारा संयुक्त रूप से विकसित की गयी है। इसकी कीमत पाँच रुपये प्रति टेबलेट रखी गई है। अब यह दवा देश के लगभग सभी हिस्सों में उपलब्ध है।

ब्लड शुगर की जाँच पाँच रुपये में

मधुमेह रोगियों के लिए एक महत्वपूर्ण खोज यह भी है कि अब उनके ब्लड शुगर की जाँच सस्ती और आसान होगी। उन्हें बार-बार लैब जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी और न ही 50-100 रुपये हर बार खर्च करने पड़ेंगे। मात्र पाँच रुपये की एक स्ट्रिप से वे घर बैठे खुद ही ब्लड शुगर जाँच सकेंगे। जल्द ही इसके दवा की दुकानों पर उपलब्ध होने की उम्मीद है।

देशभर में मधुमेह की जाँच के लिए दो साल पूर्व सरकार ने सस्ती जाँच किट लाने का एलान किया था। मधुमेह के क्षेत्र में कार्य कर रही दवा कंपनियों से कहा गया था कि वे सस्ता ग्लूकोमीटर और स्ट्रिप विकसित करें। इस कड़ी में बिरला इंस्टीट्यूट ऑप टेक्नोलॉजी (बिट्स), पिलानी के हैदराबाद कैंपस के विशषज्ञों ने एक नई तकनीक की सस्ती किट विकसित कर स्वास्थ्य मंत्रालय को सौंपी है। इसके बाद मंत्रालय ने उपकरण को बनाने की जिम्मेदारी 'सूत हेल्थकेयर' को दी है। अब सूत हेल्थकेयर ने इसे तैयार कर लिया है और जल्द ही यह किट बाजार में उपलब्ध हो जायेगी। कंपनी के प्रबंध निदेशक साहिल धारिया के अनुसार यह विश्व की सबसे सस्ती और भरोसेमंद जाँच किट होगी। इस समय बाजार में उपलब्ध किट की कीमत - ग्लूकोमीटर रु. 2500 तथा प्रति स्ट्रिप रु. 25 है, जबकि नई किट की कीमत - ग्लूकोमीटर रु. 1000 तथा प्रति स्ट्रिप रु. 5 की होगी।

कहाँ मिलता है बेरूज?

डॉ0 विजय कुमार उपाध्याय*

बेरुज पत्थर

बेरूज हरीतिमायुक्त नीले रंग का एक प्रमुख रत्न है जिसे संस्कृत में हरितनील, अरबी तथा फारसी में बेरूज तथा अंग्रेजी में ऐक्वामेरीन कहा जाता है। अंग्रेजी का 'ऐक्वामेरीन' शब्द लैटिन भाषा से आया है जिसका अर्थ होता है 'समुद्र के पानी के समान'।

प्राचीनकाल के दौरान सुमेरिया (यूफ्रेट्स नदी घाटी क्षेत्र के निचले भाग में स्थित एक प्राचीन देश), मिस्त्र, यूनान तथा रोम के लोग बेरूज को प्रसन्नता तथा लंबी जवानी का प्रतीक मानते थे। यूनान तथा रोम के निवासी बेरूज को समुद्र यात्रियों के मित्र के रूप में महत्व देते थे। उनकी मान्यता थी कि समुद्र यात्रा के दौरान बेरूज धारण किये रहने से यात्रा निर्बाध तथा सुरक्षित रहती है। उनका विश्वास था कि मार्च में जन्म लेने वाले व्यक्ति के लिये यह रत्न बहुत ही अनुकूल रहता है। कई यूरोपीय देशों में विवाह की उन्नीसवीं वर्षगाँठ पर बेरूज धारण करना शुभ माना जाता था। मध्य काल के दौरान उन देशों में बेरूज को नशा दूर करने वाला तथा विष के प्रभाव से बचाने वाला माना जाता था। वे यह भी मानते थे कि कोई योद्धा यदि बेरूज धारण कर युद्ध के मैदान में जाता है तो वह अजेय बना रहता है। उनकी मान्यता के अनुसार बेरूज धारण करना पति-पत्नी के बीच प्रेम को प्रगाढ़ बनाता है।

खनिज विज्ञान के दृष्टि से पन्ने (इमराल्ड) के समान बेरूज भी बेरिल का एक रूप है। बेरिल के कुछ अन्य प्रमुख रूपों में शामिल हैं मौर्गानाइट तथा हेलियोडौर (या गोल्डेन बेरिल)। बेरूज का रासायनिक संघटन है Be3Al2S2O4। इसके अलावा नगण्य परिमाण में कुछ अन्य तत्व भी पाये जाते हैं। मानक जेमोलौजिकल विधियों, रमन स्पेक्ट्रम विश्लेषण, इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोस्कोपी तथा इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप द्वारा जाँच से पता चला है कि बेरूज में सूक्ष्म परिमाण में कार्बन डाईऑक्साइड, जल के अणु, अल्कली मेटल तथा लोहा पाये जाते हैं। बेरूज की रवा प्रणाली (क्रिस्टल सिस्टम) षटकोणीय (हेक्सागोनल) है। मो के पैमाने पर इसकी कठोरता 7.5 से 8 के बीच, वर्तनांक 1.57 से 1.58 के बीच तथा विशिष्ट घनत्व 2.74 है। विदलन (क्लिवेज) तीनों दिशाओं में मौजूद रहता है तथा चमक (लश्चर) काँचाम (विट्रियस) होती है। बेरूज का रंग नीला, हल्का नीला तथा हरीतिमायुक्त नीला पाया जाता है। हल्का नीला रंग वाले बेरूज प्रकृति में अधिक पाये जाते हैं। हल्का रंग वाले बेरिल को यदि 400 डिग्री सेल्शियस तक तपाया जाय तो वह बेरुज में परिवर्तित हो जाता है। कहीं-कहीं हरीतिमायुक्त नीले रंग का बेरूज पाया जाता है जिसे यदि तपाया जाय तो हरे रंग की छटा समाप्त हो जाती है। हल्के नीले रंग के बेरुज को यदि लम्बे समय तक तीव्र प्रकाश के सम्पर्क में रखा जाय तो उसका रंग धीरे-धीरे धुँधला होने लगता है।

बेरिल के समान ही बेरूज के भी कभी-कभी काफी बड़े रवे (क्रिस्टल) पाये जाते हैं जिन पर तरह-तरह की नक्काशी की जा सकती है। इसके रवे कभी-कभी एक फुट से अधिक लम्बे पाये जाते हैं। इन बड़े रवों से काटे गये फलक (कैसेट) पूर्णतः पारदर्शी पाये गये हैं। डाइक्रोस्कोप से देखने पर ये फलक किसी दिशा में रंगहीन तो किसी अन्य दिशा में गहरे नीले रंग के मालूम पड़ते हैं। बेरूज एक कठोर तथा टिकाऊ रत्न है, परन्तु इस पर यदि जोर से चोट की जाये तो उसमें आन्तरिक दरार पैदा हो सकती है। कभी-कभी बेरूज के वैसे पारभासक (ट्रांसल्युसेंट) क्रिस्टल पाये जाते हैं जिनमें विड़ालाक्ष (कैट्स आई) प्रभाव या तारक गुण (ऐस्टेरिज्म) दिखाई पड़ता है। परन्तु इस प्रकार के बेरूज बहुत कम पाये जाते हैं।

बेरूज की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु उसे तपाने की प्रक्रिया अपनायी जाती है। प्राकृतिक बेरूज सामान्यतौर पर हल्के नीले रंग का तथा हरीतिमायुक्त आभा वाला होता है। तपाने पर इसका रंग नीला हो जाता है जो देखने में अधिक आकर्षक मालूम पड़ता है। रत्न-बाजार में बिकने वाले अधिकांश बेरूज तपाने के बाद ही विक्रय हेतु लाये जाते हैं। हालाँकि,

*राजेन्द्र नगर हाउसिंग कालोनी, के.के. सिंह कालोनी, पो.- जमगोड़िया, वाया- जोधाडीह (चास), जि.- बोकारो- 827 013.

बेरूज

प्रकृति में गहरे नीले रंग के बेरूज भी पाये जाते हैं, परन्तु वे कम संख्या में उपलब्ध रहते हैं।

बेरूज क्रिस्टल की तराश अनेक फलकों (फैसेट्स) में की जा सकती है। बेरूज का उपयोग मुख्यरूप से अँगूठियों, कनबालियों (इयर रिंग्स) तथा नेकलेस इत्यादि के निर्माण हेतु किया जाता है। छपहले (सिक्स साइडेड) क्रिस्टल के रूप में उपलब्ध बेरूज का उपयोग गले के चेन में लटकाये जाने वाले लॉकेट या पेंडेंट के रूप में व्यापक स्तर पर किया जाता है। कम पारदर्शिता वाले सस्ते बेरूज से मनके (बीड्स) बनाये जाते हैं जिनका उपयोग गलेहार या ब्रेसलेट निर्माण हेतु किया जाता है। चूँकि, बेरूज प्रायः हल्के रंग में पाये जाते हैं, अतः इनके रवों की तराश कैसे की जाये, यह काफी महत्वपूर्ण है। अच्छी तरह से तराशे गये रवे काफी सुन्दर एवं आकर्षक दिखायी पड़ते हैं तथा उनमें हीरे के समान चमक-दमक दिखायी पड़ती है। भूपटल में बेरूज काफी अधिक पाया जाता है, परन्तु वे प्रायः हल्के रंग के होते हैं। गहरे रंग वाले बेरूज अधिक आकर्षक दिखायी पड़ते हैं तथा वे अधिक मूल्यवान भी होते हैं। कहीं-कहीं बेरूज के काफी बड़े आकार वाले रवे पाये जाते हैं जिनसे हजारों कैरेट के आकर्षक फलक तराश कर प्राप्त किये जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि बेरूज प्रकृति में कहाँ पाया जाता है। सबसे अधिक बेरूज ब्राजिल में पाया जाता है। यहाँ बेरूज के काफी छोटे तथा काफी बड़े सभी प्रकार के क्रिस्टल पाये जाते हैं। सन् 1910 में ब्राजिल के मिनास गिरैस क्षेत्र के माराम्बिया नामक स्थान पर 110 किलोग्राम का एक क्रिस्टल पाया गया था। इस देश में बेरूज प्राप्ति की दृष्टिकोण से अन्य प्रमुख स्थानों में शामिल हैं एसपिलितो सान्तो तथा बाहिया। रियो डि जनाइरो के निकट ग्रेनाइट नीस में मौजूद शिराओं (वेन्स) में बेरूज पाया जाता है। रूस में यूराल पर्वतीय क्षेत्र के मुरसिंका तथा सैतांका नामक स्थानों पर एवं साइबेरिया में बेरूज पाया जाता है। वैसे तो बेरूज के रवे (क्रिस्टल) संसार के कई देशों में बिखरे पड़े हैं, परन्तु वियेतनाम में मिलने वाला बेरूज सुविकसित क्रिस्टल्स वाला तथा बहुत ही सुन्दर एवं आकर्षक पाया गया है। वियेतनाम के यान्ह लोआ प्रान्त के हुओंग जुआन जिले में पाया जाने वाला बेरूज का भंडार व्यवसायिक दृष्टिकोण से सर्वोत्तम पाया गया है। यहाँ पर बेरूज तथा टौपेज के रवे ग्रैनिटिक पेगमेटाइट तथा साथवाली जलोढ़ मिट्टी में पाये जाते हैं। बेरूज प्राप्ति के दृष्टिकोण से कुछ अन्य प्रमुख देशों में शामिल हैं– अंगोला, केन्या, सेंट्रल मैडागास्कर, मलावी, नाइजीरिया, मोजाम्बिक, पाकिस्तान, तंजानिया, कोलोरैडो (संयुक्त राज्य अमेरिका) तथा जाम्बिया।

समान्यतौर पर बेरूज जिन शैलों में पाया जाता है उनमें प्रमुख हैं ग्रैनाइट, पेगमेटाइट, ग्रैनाइट नीस तथा कभी-कभी ग्रैनोडायोराइट। कहीं-कहीं जलोढ़ मिट्टी (ऐल्युवियल स्वायल) में भी बेरूज पाया जाता है। बेरूज के साथ प्राप्त होने वाले कुछ अन्य प्रमुख रत्नों में शामिल हैं वैदूर्य (क्राइसोबेरिल), पुखराज तथा यदा-कदा हीरा।

बेरूज के आभूषण

बेरूज की पहचान में प्रायः लोगों से गलती हो जाती है। उदाहरण के तौर पर हल्के नीले पुखराज को लोग बेरूज समझ बैठते हैं। इन दोनों रत्नों के रंग एक समान रहते हैं तथा अन्य भौतिक गुणों में भी समानता पायी जाती है। परन्तु इन दोनों के विशिष्ट घनत्व में काफी अन्तर पाया जाता है। बेरूज का विशिष्ट घनत्व जहाँ 2.74 हैं, वहीं पुखराज का 3.53 है। सामान्यतौर पर पुखराज बेरूज की तुलना में सस्ता रहता है। यही कारण है कि बेईमान दुकानदार बेरूज के नाम पर नीले पुखराज को ही ग्राहकों को बेच देते हैं। पन्ने (इमराल्ड) के समान ही बेरूज भी प्रायः धब्बारहित पाया जाता है।

बाजार में नकली बेरूज भी बिकते पाये जाते हैं। ऐसा ही एक नकली रत्न है 'ब्राजिलियन बेरूज'। यह वस्तुतः बेरूज न होकर नीला पुखराज है। एक अन्य नकली रत्न भी बेरूज के नाम पर बाजार में बिकता पाया जाता है। यह वस्तुतः रंगीन काँच है जिसे बेरूज शक्ल में काट दिया जाता है। इसे 'मास ऐक्वामेरिन' के नाम पर बेचा जाता है। एक अन्य नकली बेरूज है 'स्याम ऐक्वामेरीन' जो वस्तुतः तपाया हुआ जिरकन है।

उपयोगी कचनार

जगनारायण*

भारतीय मूल के उपयोगी वृक्षों में कचनार का एक विशेष स्थान है। जहाँ इसके कली की सब्जी अत्यन्त स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्द्धक होती है, वहीं इसके समस्त अंगों को अनेक रोगों के निवारण में औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। बसन्त ऋतु में सफेद, गुलाबी और पीले फूल लगते हैं। आधुनिक युग में वनस्पति वैज्ञानिकों ने अपने प्रयास से कचनार की कई सजावटी प्रजातियों का भी विकास किया है। कचनार की ये आधुनिक प्रजातियाँ जहाँ बारहमास फलती-फूलती हैं, वहीं इनकी ऊँचाई भी कम होती है। यद्यपि औषधीय प्रयोग इनके गुलाबी, पीले और सफेद फूलों वाले वृक्ष की ही अधिक हैं। इस श्रेणी के कचनार के स्वजात पीत वर्णीय पुष्प वाले वृक्ष हिमालय की तराई के वनों में बहुलता से पाये जाते हैं। फूलों एवं प्रयोग के अनुसार कचनार को तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है। लाल फूलों वाला कचनार, सफेद और पीले फूलों वाला कचनार। पर्वतीय क्षेत्रों में पाये जाने वाले कचनार वृक्ष के पत्तों और फूलों का आकार भी बड़ा होता है। रोगों के उपचारार्थ अधिकतर लाल फूल वाले कचनार का ही प्रयोग होता है। इसके अभाव में अन्य प्रजातियों के कचनार का प्रयोग किया जाता है। विशेषज्ञों के मतानुसार सभी श्रेणी के कचनारों में गुण-धर्म समान होते हैं।

कचनार का वृक्ष

परिचय

सीसेल्पिनियेसी (Caeselpiniaceae) कुल के इस वृक्ष का वानस्पतिक नाम *बाबूलिनिया वारिगेटा* 'एल' (*Babulinia variegata* L.) है। अंग्रेजी में इसे बूंहीनिया (Bauhinia) कहते हैं। हिन्दी में इसे कचनार, कंचनाल और लाल कचनार कहते हैं। संस्कृत में चमरिक, कुद्दाल, युग्मपत्र आदि नामों से इसकी चर्चा मिलती है। गुजराती में इसे पंचाकटी, मराठी में कोरल और कांचन कहते हैं। बांग्ला में इसे कांचन कहा जाता है। पंजाबी में इसे कचनाल और कुलाड़ कहते हैं। तेलगू में देवकांचनम्, मलयाली में यह चुबन्न मंदारम् कहलाता है।

कचनार पुष्पयुक्त वृक्ष

सामान्यतया कचनार के वृक्ष 15 से 20 फीट ऊँचाई वाले होते हैं। इसकी डालें झुकी हुई, तने का छिलका एक इंच मोटा, खुरदरा, सफेद सतह वाला होता है। इसके पत्ते सफेदी लिए हुए हरे होते हैं। इनकी पत्तियाँ सामान्य रूप से देखने पर ऐसी लगती हैं मानो दो पत्ते आपस में जुड़े हुए हों। एकान्तर पत्ता दो से छः इंच लम्बा और तीन से सात इंच तक चौड़ा होता है। इसका पत्ता देखने में हृदय के आकार जैसा लगता है। इसके फूल बड़े आकार के सफेद बैंगनी तथा गुलाबी और पीले रंग के होते हैं। इसके पुष्प में एक अंतर्दल कुछ पीलापन लिए हुए होता है। कचनार की फलियाँ सेम की तरह चपटी, छः इंच से लेकर एक फीट एक लम्बी, पतली और मुड़ी हुई होती हैं। फरवरी-मार्च में जब इसका वृक्ष पत्तों से रहित हो जाता है उसी समय इसकी डालों में फूल आते हैं। अप्रैल-मई के महीने में इसमें फल लगते हैं।

*विज्ञान संचारक, श्री विश्वनाथ मन्दिर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221 005.

आयुर्वेद में कचनार

भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में कचनार के उपचारक गुणों पर विशेष चर्चा मिलती है। भावप्रकाशनिघण्टु में कचनार के उपचारक विशेषताओं के ऊपर प्रकाश डालते हुए लिखा गया है -

कांचनारो हिमोग्राही तुवरः श्लेष्मतित्तनुत। कृमिकुष्टगुदभ्रंश-गण्डमाला व्रणापहः।। कोविदारोडपि तद्वतस्यात तयोः पुष्पंलघु स्मृतम्। रक्षं संग्राहि पित्तास्त्रप्रदरक्षयकासनुत।। अर्थात्, कचनार के वृक्ष की विभिन्न भागों में व्रणरोधक, रोपण, स्तम्भन, मूत्र संग्रहणीय, मेदरोग नाशक, कुष्ट, प्रमेह, रक्तपित्त, गण्डमाला एवं लसिका ग्रन्थिशोथनाशक गुण पाये जाते हैं।

सुश्रुत संहिता में - कोविदारपुष्पाणि मधुराणि मधुर विपाकानि रक्तपित्तहराणिच। अर्थात्, कचनार का फल हल्का, रुखा, ग्राही, पित्त, प्रदर, क्षय, कॉस तथा रक्तविकार का शमन करने वाला है।

कचनार का तना व छाल

रोगों में कचनार का प्रयोग

कचनार की छाल के क्वाथ, फांट या हिम से मुख प्रक्षालन (कुल्ला) करने से मुख शुद्धि होती है। कचनार के वृक्ष की छाल और अनार के फूल से बने क्वाथ से मुख प्रक्षालन करने से मुख के छाले (निनावॉ) से मुक्ति मिलती है। कचनार के वृक्ष की पचास ग्राम अंतः छाल को आधा लीटर पानी में तब तक उबालें जब तक आधा पानी न रह जाये। इस जल से मुख प्रक्षालन (कुल्ला) करने से स्त्रियों में प्रसूतिका रोग के छालों के अलावा पुरुषों के मुख के छाले भी ठीक हो जाते हैं। कचनार की छाल के क्वाथ के सेवन से कंठमाला से मुक्ति मिलती है। इनकी कलियों से बने गुलकन्द की पाँच से दस ग्राम की मात्रा सुबह-शाम लेने से कब्जियत दूर होती है। खूनी बवासीर में जामुन, रीठा और कचनार को उबालकर गुदा को धोने से आराम मिलता है। कचनार की कलियों से बने गुलकन्द के सेवन से खूनी और बादी बवासीरों में लाभ होता है।

कचनार की कलियाँ शीतल और ग्राही होती हैं। इनके सेवन से अतिसार मिट जाता है। कचनार छाल के पाँच ग्राम रस में 20 ग्राम जीरे का चूर्ण या 250-500 मिलीग्राम कपूर के साथ दिन में दो बार लेने से दाह मिट जाती है। इनके सूखे फूलों के 2-5 ग्राम चूर्ण को एक चम्मच शहद में मिलाकर लेने से रक्त-पित्त मिटता है। कचनार की जड़ को चावल के धोवन में पीसने पर बने लेप की पुल्टिस बाँधने से फोड़े जल्दी पक जाते हैं। इसकी छाल को पीसकर घाव और अर्बुद पर बाँधने से लाभ मिलता है। इनकी कलिकाओं से बना क्वाथ खाँसी, खूनी बवासीर, पेशाब के मार्ग से आने वाले रक्त को रोकने के साथ ही अत्यधिक रक्तस्राव में भी उपयोगी है।

कचनार की अलग-अलग प्रजातियों के उपचारक प्रयोग

सफेद कचनार - दूषित जलवायु और सड़े हुए फल के खाने से पैदा हुए ज्वर से शिर में होने वाले दर्द में सफेद कचनार के 10 से 20 ग्राम पत्तों का चार सौ ग्राम जल में बने काढ़े के सेवन से लाभ होता है।

कचनार के पुष्प

पीले पुष्प वाले कचनार

इसके सूखे फल के पाँच से दस ग्राम चूर्ण को स्वच्छ जल के साथ दिन में दो बार लेने से मूत्रकृच्छ से मुक्ति मिलती है। इसके जड़ की छाल के क्वाथ को सुबह-शाम सेवन से जिगर के शोथ से छुटकारा मिल जाता है। इसके सूखे पत्तों के पाँच ग्राम चूर्ण को फाँक कर अनुपान में दो चम्मच सौंफ का अर्क लेने से आमातिसार मिटता है। इसके सूखे फल के दो से पाँच ग्राम चूर्ण को जल के साथ दिन में तीन से चार बार लेने पर अतिसार से मुक्ति मिलती है। इसके दस ग्राम अधखिले फूलों को उबालकर बने काढ़े को दिन में दो बार पिलाने से आमातिसार मिट जाता है। इसकी 20 ग्राम छाल को चार सौ ग्राम पानी में उबालें। जब सौ ग्राम जल शेष रहे तो उसे पीने से पेट की कृमि से मुक्ति मिलती है। इसके बीजों को सिरके के साथ पीसकर लेप करने से घाव के अन्दर के कीड़े खत्म हो जाते हैं। इसकी सूखी टहनियों को जलाने से प्राप्त राख या कोयले को घिसकर बने मंजन से दाँत का दर्द कुछ दिन में ठीक हो जाता है।

लाल पुष्प वाले कचनार

लाल पुष्प वाले कचनार की 20 ग्राम छाल से बने क्वाथ में एक ग्राम शुंठी चूर्ण छिड़कर सुबह-शाम लेने से कंठमाला में लाभ होता है। इसके फूल या छाल को उबालकर क्वाथ में शहद मिलाकर लेने से कंठमाला से मुक्ति मिटती है और रक्त स्वच्छ होता है। इसकी सूखी कलियों के साथ समान मात्रा में मिले मिश्री चूर्ण को दिन में तीन बार सेवन से रक्तार्श से छुटकारा मिलता है।

औषधीय उपयोगिताओं के अतिरिक्त वनांचलों में स्वजात कचनार के वृक्षों से वनप्रान्तों की समृद्धि और विकास होता है। पर्यावरणीय दृष्टि से भी कचनार अत्यन्त उपयोगी वृक्ष है। पर्वतीय क्षेत्रों में पाये जाने वाले कचनार वृक्षों की आयु अत्यन्त लम्बी होती है।

गणित के महान उन्नायक और विलक्षण विद्वान : पं0 लक्ष्मीशंकर मिश्र

डॉ0 राकेश कुमार दूबे*

पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र

भारतीय पुनर्जागरण काल में ज्ञान-विज्ञान से जुड़े अनेक विलक्षण व्यक्तित्व ऐसे हुए जो आम पाठक तो क्या, शोधार्थियों और विद्वानों की दृष्टि से भी ओझल ही रहे। इसके कारण उन्हें न तो बंगाल के वैज्ञानिकों एवं विज्ञान संचारकों जैसे महेन्द्रलाल सरकार, पी0एन0 बोस, जगदीशचन्द्र बसु, प्रफुल्लचंद राय, रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, सर आशुतोष मुखर्जी इत्यादि के समान प्रसिद्धि मिली और न ही उत्तर भारत में राजा शिवप्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, सर सैयद अहमद खां, बाबू नवीनचन्द्र राय, बाबू तोताराम सदृश लोगों के समान ख्याति और पहचान। ऐसे विलक्षण व्यक्तियों में से पं0 लक्ष्मीशंकर मिश्र एक हैं जो पुनर्जागरण काल में एक महान गणित उन्नायक एवं कुशल विज्ञान-लेखक के रूप में उदित हुए।

आदित्यराम भट्टाचार्य

आज तक न तो उनके समस्त कार्यों का पूरी तरह सर्वेक्षण हुआ है और न ही वे प्रकाश में आये। वे पुरानी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, विविध संस्थाओं एवं सरकार की रिपोर्टों तक सीमित हो गये, जबकि मिश्र जी ने गणित और विज्ञान के क्षेत्र में अद्भुत कार्य कर देशवासियों के मध्य देशभाषा में गणित और विज्ञान के संचार का उल्लेखनीय कार्य किया था।

पं0 लक्ष्मीशंकर मिश्र (1849 ई0 से 02 दिसम्बर, 1906 ई0) का जन्म बनारस में हुआ था और वे बनारस संस्कृत कालेज में आचार्य पं0 रामजसन मिश्र के चार पुत्रों- लक्ष्मीशंकर मिश्र, रमाशंकर मिश्र, उमाशंकर मिश्र एवं ब्रह्मा शंकर मिश्र में सबसे श्रेष्ठ थे। पं0 रामजसन मिश्र के चारो पुत्र 1888 ई0 तक एम0ए0 पास थे जबकि 1890 ई0 में पश्चिमोत्तर प्रदेश एवं अवध में एम0ए0 पास करने वालों की संख्या मात्र 12 थी।

गणित की ओर झुकाव

लक्ष्मीशंकर मिश्र बचपन से ही गंभीर, सुशील और कुशाग्र बुद्धि थे। 8 वर्ष की आयु में उनको बनारस संस्कृत कालेज में अंग्रेजी पढ़ने के लिए भेजा गया परन्तु मिश्रजी का झुकाव गणित की ओर अधिक था। साहित्य की अपेक्षा गणित अधिक क्लिष्ट है और इस कारण बहुत से छात्र गणित को छोड़ साहित्य की ओर झुक जाते हैं। परन्तु लक्ष्मीशंकर मिश्र का गणित पर विशेष प्रेम था। यह उनकी मस्तिष्क शक्ति के बलवती होने का प्रमाण था। पं0 आदित्य राम भट्टाचार्य, जिन्हें पं0 मदनमोहन मालवीय जी अपना गुरू मानते थे, और जिन्होंने 1874 ई0 में 'बीजगणित' नामक एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी थी, लक्ष्मीशंकर मिश्र के ही सहपाठी थे जो आगे चलकर साहित्य की ओर झुक गये। परन्तु मिश्र जी ने एम0ए0 में भी गणित ही लिया और नेकनामी (आनर्स) के साथ 1870 ई0 में उत्तीर्ण किया।

हिन्दी भाषा में लिखित विज्ञान की कुछ आरम्भिक पुस्तकें

आर.टी.एच. ग्रिफिथ

बनारस संस्कृत कालेज में गणित के प्रोफेसर राजर्स, जो मिश्र जी को गणित पढ़ाते थे, उनकी विलक्षण बुद्धि की बड़ी ही प्रशंसा किया करते थे। लक्ष्मीशंकर मिश्र की योग्यता और प्रतिभा से प्रभावित होकर बनारस संस्कृत कालेज के 1861-1878 ई0 तक प्रधानाचार्य रहे आर0टी0एच0 ग्रिफिथ ने 1870 ई0 में उनके एम0ए0 उत्तीर्ण करते ही उन्हें कालेज में ही गणित का आचार्य नियुक्त कर दिया। मिश्रजी प्रधानाचार्य के विश्वास पर सौ प्रतिशत खरे उतरे। उनकी पढ़ाने की शैली इतनी अच्छी थी कि कठिन से कठिन बातों को भी वे सहजता से समझा देते थे। उनके पढ़ाये हुए विद्यार्थियों जैसे सैयद महमूद, ज्वाला प्रसाद इत्यादि ने उनका नाम काफी उज्जवल किया।

*डॉ0 एस0 राधाकृष्णन पीडीएफ, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

ISSN 2231 - 2455

ग्रंथ	ग्रंथकर्ता	प्रकाशन	प्रकाशन वर्ष
ज्योतिष चंद्रिका	ओंकार भट्ट ज्योतिषी	आगरा स्कूल बुक डिपो	1840 ई0
माप प्रबंध	वंशीधर	सिकंदर प्रेस, आगरा	1853 ई0
रेखामिति तत्व	कुंजबिहारी लाल	सिकंदर प्रेस, आगरा	1854 ई0
रेखागणित भाग-1	पं0 मोहनलाल	मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस	1859 ई0
हिंदी बीजगणित भाग-2	पं0 मोहनलाल	मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस	1859 ई0
गणित प्रकाश भाग-1	श्रीलाल	लखनऊ	1873 ई0
गणित प्रकाश भाग-1	वंशीधर	लखनऊ	1873 ई0
बीजगणित	आदित्यराम भट्टाचार्य	गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग	1874 ई0
पाटी गणित भाग-1	पालीराम पाठक	नार्मल स्कूल मेरठ	1874 ई0
रेखागणित बुक-1	जीवानंद विद्यासागर	संस्कृत कालेज, कलकत्ता	1874 ई0
व्यक्त गणित	बापूदेव शास्त्री	मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस	1875 ई0
सुलभ बीजगणित	कुंज बिहारी लाल	गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग	1875 ई0

श्रोत : विज्ञान-परिषद और हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य; आर्यभाषा पुस्तकालय का सूचीपत्र।

हिन्दी में लिखित गणित की कुछ आरंभिक पुस्तकों के आवरण पृष्ठ/छायाचित्र

सन् 1873 ई0 में लक्ष्मीशंकर मिश्र ने 'सरल त्रिकोणमिति की उपक्रमणिका' नामक पुस्तक लिखी। इससे पूर्व त्रिकोणमिति में कोई पुस्तक ही नहीं थी। मिश्रजी की पुस्तक की प्रस्तावना तत्कालीन समय में देशज भाषाओं में गणित और विज्ञान-लेखन की अवस्था का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है जिसमें उन्होंने लिखा ''वर्तमान समय को निश्चित रूप से हिन्दी भाषा के पुनरुत्थान का समय समझा जाना चाहिए। वर्तमान में पश्चिमोत्तर प्रदेश में देशी भाषाओं में विविध विषयों में मौलिक और अनुवादित सामग्री का बड़ा अभाव है, किन्तु हिन्दी का संघर्षरत् भविष्य यह है कि वैज्ञानिक क्षेत्र में यह और भी दयनीय है।'' स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस प्रकार के प्रयास की सराहना अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' के जून, 1874 ई0 के अंक में की और लिखा कि ''हिन्दी भाषा में विज्ञान, दर्शन, अंकादि के ग्रंथ बहुत थोड़े हैं और जो दस-पाँच छोटे-मोटे हैं भी उनका श्रेय न तो सरकार को है, न ही किसी आंदोलन को।'' मिश्र जी की यह पुस्तक इतनी महत्वपूर्ण थी कि उसकी महत्ता और उत्तमता पर प्रसन्न होकर पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड) के लेफ्टिनेंट गवर्नर विलियम म्योर ने उन्हें एक हजार रुपये का पारितोषिक दिया था।

सन् 1885 ई0 का वर्ष इस संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण रहा क्योंकि इसी वर्ष लक्ष्मीशंकर मिश्र ने 'स्थिति विद्या' और 'गतिविद्या' नामक दो अतिमहत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं जो कि चंद्रप्रभा प्रेस, बनारस से छपीं। ये दोनों ही पुस्तकें किसी अन्य भाषा की पुस्तकों का अनुवाद नहीं थीं बल्कि मौलिक थीं और किसी भी भारतीय भाषा में इस विषय की पहली पुस्तकें थीं। इन पुस्तकों के लेखन में उन्होंने सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग किया और साथ ही अपनी बातों को अनेक उदाहरणों द्वारा समझाने एवं सरलीकृत करने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए 'गतिविद्या' में क्या होता है? गति क्या है? वेग क्या है? वेग का अंतर क्या है? इत्यादि बातों को अत्यंत सरल शब्दों में रेखांकित करते हुए लिखा कि ''किसी दृढ़ द्रव्य की गति के नियमों का वर्णन गतिविद्या में होता है। यह स्पष्ट है कि यदि कोई द्रव्य स्थिति दशा में न हो तो उसके स्थान में प्रतिक्षण अंतर होता जायेगा। उसी स्थान के बदलने से गति होती है। गति को वेग के द्वारा मापते हैं। जिस हिसाब से कोई वस्तु चलती है व अपने स्थिति में अंतर पैदा करती है उसे उसका वेग कहते हैं। निश्चित काल में यदि कोई सूक्ष्माणु अधिक दूर जावे तो वेग अधिक और यदि कम दूर जावे तो वेग कम होता है।

सन् 1876 ई0 से बाबू बलेश्वर प्रसाद ने काशी से जिस 'काशी-पत्रिका' को पाक्षिक निकालना आरंभ किया था लक्ष्मीशंकर मिश्र ने 1882 ई0 में उसका संपूर्ण भार ग्रहण कर उसे साप्ताहिक कर अपने चंद्रप्रभा प्रेस से निकालने लगे। इस पत्रिका में गणित, विज्ञान, साहित्य, नीति और शिक्षा आदि विषयों पर उपयोगी सामग्री का प्रकाशन होता था। पत्रिका के मुख पृष्ठ पर ही अंग्रेजी, नागरी और उर्दू में विशेष वाक्य छपा रहता था- ''ए वीकली एजूकेशनल जर्नल ऑफ साइंस, लिटरेचर ऐंड न्यूज इन हिन्दुस्तानी।'' इस पत्रिका की उपयोगिता को देखकर पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर ह्वाइट ने इसे पाठशालाओं में जारी कर दिया था जिसे उनके परिवर्ती डाइरेक्टर लिविस ने भी जारी रखा।

काशीपत्रिका अपने ढंग की निराली थी जिसकी समता पूरे देश की

(Vol. XVIII.)

THE KASIPATRIKA

A WEEKLY EDUCATIONAL JOURNAL OF SCIENCE, LITERATURE AND NEWS IN HINDUSTANI

EDITED BY

RAI BAHADUR LAKSHMI SANKAR MISRA, M. A.

FELLOW OF THE UNIVERSITIES OF CALCUTTA & ALLAHABAD.

काशीपत्रिका

हिंदुस्तानी जबान, इल्म और खबर का रिसाला

BENARES:

THE CHANDRAPRABHA PRESS COY. LD.

1895.

काशी पत्रिका (भारत कला भवन के सौजन्य से साभार प्राप्त)

मि. जार्ज थीबो की दुर्लभ छायाचित्र

कोई भी हिन्दी पत्रिका नहीं कर सकती थी। 1878 ई0 से ही यह पूर्णतः सरकारी पत्रिका हो गयी थी और शुद्ध हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी में छपती थी जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों को गणित और विज्ञान विषयों में काफी लाभ मिलता था। छात्रों के हितचिंतक मि0 हिल, मि0 जार्ज थीबो, पं0 रमाशंकर मिश्र, बाबू आत्माराम, पं0 पिंडीशंकर, बाबू सीताराम एवं बाबू पुरुषोत्तमदास इस पत्रिका में नियमित लिखा करते थे। प्रतिवर्ष गणित के प्रश्न इस पत्रिका में प्रकाशित होते थे और उनको उत्तम क्रिया से हल करने वाले विद्यार्थियों को 20 रुपये के चार पारितोषिक इस पत्रिका द्वारा प्रदान किये जाते थे जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों की तार्किक शक्ति को बढ़ाना था।

कुशल शिक्षा सुधारक

लक्ष्मीशंकर मिश्र एक कुशल शिक्षक के साथ ही एक सफल शिक्षा सुधारक भी थे। 1882 ई0 में जब लार्ड रिपन ने डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर की अध्यक्षता में एक 'शिक्षा आयोग' नियुक्त किया तो उस समय इस प्रांत से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और सर सैयद अहमद खाँ सदृश कुछ खास व्यक्तियों की गवाही ली गयी और इस प्रांत की तरफ से साक्षी देने के लिए लक्ष्मीशंकर मिश्र ही नियत किये गये थे। मिश्र जी ने कमीशन के पूछे गये प्रश्नों का उत्तर बड़ी बुद्धिमत्ता और योग्यता से दिया था जिसे सुनकर कमीशन ने भी उनकी योग्यता की प्रशंसा की थी।

उनके कार्यों से प्रभावित होकर पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकार ने मदरसों की दशा सुधारने के लिए 1885 ई0 में उन्हें बनारस डिविजन का स्थानापन्न इंस्पेक्टर नियुक्त किया। उन्होंने अपनी लगन और कार्यकुशलता से थोड़े ही समय में मदरसों की अवस्था एकदम सुधार दी जिससे प्रभावित होकर सरकार ने 1888 ई0 में उन्हें इलाहाबाद डिविजन का भी स्थानापन्न इंस्पेक्टर नियुक्त किया। मिश्रजी ने दोनों डिविजनों का कार्य बड़ी योग्यता से संभाला और एक मिशाल कायम की जिसे प्रदेश सरकार ने भी अपने प्रशासनिक विवरण में स्वीकार किया और लिखा- ''इस वर्ष वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों में सफलता की सर्वाधिक प्रतिशतता अवध, बनारस और झाँसी डिविजनों द्वारा प्राप्त किया गया और इन डिविजनों में से प्रथम दो डिविजनों में सफलता की अभूतपूर्व वृद्धि का अधिकांश श्रेय दो इंस्पेक्टरों मि0 नेस्फील्ड और पं0 लक्ष्मीशंकर मिश्र को है।''

विश्वविद्यालयों से संबंध

लक्ष्मीशंकर मिश्र के समय उत्तर भारत में दो ही विश्वविद्यालय थे - कलकत्ता और इलाहाबाद और वे दोनों ही विश्वविद्यालयों के 'फेलो' थे। वे अपने अधीन कर्मचारियों की योग्यता और कार्यदक्षता पर पैनी दृष्टि रखते थे और उसके अनुसार ही उनकी पदोन्नति और वेतनोन्नति करते थे। परीक्षा लेने का ढंग इनका ऐसा निराला था कि जिसे देखकर अध्यापकों को सहज में ही शिक्षा देने की प्रणाली का अनुभव हो जाता था।

बंगाल सरकार का आमंत्रण

लक्ष्मीशंकर मिश्र की प्रबंध-दक्षता और योग्यता की प्रशंसा सुनकर बंगाल के शिक्षा विभाग के 1877-97 ई0 तक डाइरेक्टर रहे अल्फ्रेड क्राफ्ट ने उन्हें बिहार सर्किल के इंस्पेक्टर पद के लिए आमंत्रित किया। इस पर जब मिश्रजी ने अपने डाइरेक्टर ह्वाइट से सम्मति माँगी तो उनका उत्तर था-'मैं आपको यहीं इंस्पेक्टर बनाऊँगा। मैं अपने सुयोग्य और अनुभवशील कर्मचारियों को अन्यत्र भेजना अनुचित समझता हूँ।' इसका

ISSN 2231 - 2455

कारण यह था कि डाइरेक्टर ह्वाइट मिश्रजी की योग्यता से इतना प्रभावित थे कि शिक्षा संबंधी सुधार के सभी कामों और शिक्षा संबंधी नियम-पुस्तक (कोड) बनाने में उनसे सम्मति लिया करते थे, फलस्वरूप मिश्रजी ने बिहार जाना अस्वीकार कर दिया। 1892 ई0 में ह्वाइट महोदय ने मिश्रजी को अवध प्रांत का स्थानापन्न इंस्पेक्टर बना भी दिया था।

ब्रिटिश नस्लवादी नीति का प्रतिरोध

लक्ष्मीशंकर मिश्र को भी अंग्रेजों की भेदभावपूर्ण नीति का सामना करना पड़ा। मिश्रजी जिस पद पर थे उससे बड़ा पद शिक्षा विभाग में भारतीयों को नहीं दिया जाता था। इसीलिए जब ह्वाइट महोदय की जगह नेस्फील्ड शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर हुए तो उसके थोड़े ही दिनों बाद उनकी मिश्रजी से अनबन हो गयी। मिश्रजी को अवध से पुनः बनारस स्थानापन्न इंस्पेक्टर के पद पर भेज दिया गया और कुछ समय बाद तो नेस्फील्ड ने यह पद ही तोड़ दिया और 1895 ई0 में मिश्रजी को असिस्टेंट इंस्पेक्टर का पद दे दिया गया।

अंग्रेजों की भेदभावपूर्ण नीति के प्रबल विरोधी मिश्रजी ने इतना होने पर भी कभी अपने लिए सिफारिश नहीं की और न ही अंग्रेजों के सामने कभी झुके। असिस्टेंट इंस्पेक्टर के पद पर रहते हुए भी मिश्रजी इंस्पेक्टरों के अधीन कभी नहीं रहे बल्कि स्वयं ही यूरोपियन इंस्पेक्टरों की तरह सीधे डाइरेक्टर महोदय से लिख-पढ़ी करते थे। 1903 ई0 में जब लक्ष्मीशंकर मिश्र का स्थानांतरण रूहेलखंड डिविजन में कर दिया तो उन्होंने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया और पेंशन ले ली और मृत्युपर्यन्त बनारस में ही रहे। यहीं पर 2 दिसम्बर, 1906 ई0 को उनका स्वर्गवास हो गया। उनके स्वर्गवासी होने पर विद्वत् समाज द्वारा अत्यंत दुख प्रकट किया गया और यह उक्ति प्रचलित हो गई :

श्री लक्ष्मीशंकर प्रवर, विद्वज्जन आधार।
हाय कासिका धाम तजि, गये ब्रह्म आगार।।

पुरस्कार एवं सम्मान

लक्ष्मीशंकर मिश्र बनारस की अधिकांश सभा-सोसाइटियों यथा बनारस इंस्टीट्यूट, काशी सुजन समाज इत्यादि के सम्मानित सभासद एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पहले निर्वाचित सभापति थे। 1874 ई0 में उनकी पुस्तक के लिए उन्हें 1000 रु0 का पुस्कार मिला था। वे कलकत्ता और इलाहाबाद दोनों ही विश्वविद्यालयों के 'फेलो' चुने गये थे और पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकार ने उनकी योग्यता और प्रबंध दक्षता से प्रसन्न होकर 1889 ई0 में उन्हें ''रायबहादुर'' की पदवी से विभूषित किया था।

निष्कर्षतः लक्ष्मीशंकर मिश्र अपने जीवन के आरंभिक काल से ही विज्ञान और विशेषकर गणित के उन्नयन पर बल दिया। बड़े-बड़े पदों पर रहते हुए और अपने व्यस्त कार्यक्रमों के दौरान भी उन्होंने लेखन कार्य किया। जिस समय उन्होंने हिन्दी भाषा में लेखन कार्य आरंभ किया उस समय हिन्दी स्वयं अपना स्थान पाने के लिए संघर्ष कर रही थी। ऐसे समय में देशभाषा में गणित के साथ ही विज्ञान के क्षेत्र में भी मौलिक कार्य कर मिश्रजी ने उसके महत्व को जनता में प्रचारित किया। काशीपत्रिका के माध्यम से उन्होंने विज्ञान एवं विशेषकर गणित का जो उपकार किया वह अविस्मरणीय रहेगा।

प्रवाल

शैलेन्द्र कुमार गुप्ता*

मानव तुझसे एक सवाल
संकट में है क्यूँ प्रवाल!
करो विकास पर रखो ख्याल
मैं हूँ छोटा सा प्रवाल।
स्वच्छ जल सागर उथले
वंश विकास के द्वारा खुले।
मुझे प्रिय स्वादिष्ट चूना
बिन इसके जीवन सूना।
संग मेरे अनेक जीव-जन्तु
चाह सभी की जीवन शांति परन्तु
औद्योगिक क्रांति ने किया प्रदूषण
मानव बन गया खर-दूषण।
हिंद, अटलांटिक या हो प्रशांत
सब सागर अब अशांत।
क्यूँ करते मेरे अस्तित्व पर
नित्य नये-नये आघात।
मिलेगा निश्चित, प्रकृति का दंड
देगा ऐसा प्रतिघात।
ध्रुव चेतावनी है ये
सुन ले हे मानव जात।
मत समझ तू इसे
छोटी मुँह बड़ी बात।
संकट में है अब तो
मेरा ग्रेट बैरियर रीफ
ढूँढे से न मिलेगा फिर
क्या मोती क्या द्वीप।

सर्वोत्तम था मेरा भूतकाल
वर्तमान में हूँ हाल-बेहाल।
तुम ही बताओ हे मानव
होगा कैसा भविष्य काल?
क्यूं देता जगत को धोखा
ओढ़ ये भेड़िये की खाल।
सदियों से प्रेम का भूखा
मैं हूँ छोटा सा प्रवाल।

तुम दानवीर, तुम शूरवीर
तुम हो सर्वकालीन बुद्धिमान
दूर रखो हे मानव तुम
अति महत्वाकांक्षा, निज अभिमान।
कुछ जतन करो, कुछ यतन करो
दो सबको ज्ञान का दान।
निज स्वार्थ तजकर
रखो कर्म का इतना ध्यान।
करो नियंत्रित वैश्विक कोष्णता
तभी सुरक्षित जैविक सम्पूर्णता।
करता हूँ मैं ये प्रार्थना
सुन लो मेरी ये आराधना।
हे ईश्वर की श्रेष्ठ रचना
मेरा भी तुम ध्यान रखना।
हे अहिंसा के पुजारी
कर दो कुछ ऐसा कमाल।
विनम्र विनती करता तुझसे
मैं हूँ छोटा सा प्रवाल।
मैं हूँ छोटा सा प्रवाल।।

*अनुपम वेरायटीज, भगत सिंह चौक, खूँटी, जिला-खूँटी - 835 210 (झारखंड).

सहस्त्र चक्र का वैज्ञानिक प्रारूप - पीनियल ग्रन्थि

प्रो० चन्दना हालदार*

सरस्वती साधक पं० महामना मदन मोहन मालवीय जी ने ज्ञानयोग (विज्ञान), कर्मयोग एवं भक्ति योग (दार्शनिकता) को एक साथ मिलकर सर्वविद्या की शोधशाला, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में सन् 1915 में स्थापित किया। उनका सदैव अपने संस्कृति के आधार वेद एवं शास्त्रों में विशेष रुचि थी। उनका यह स्वप्न एवं निरंतर चेष्टा थी कि हमारे वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों में वर्णित ज्ञान एवं विज्ञान की दार्शनिकता को आधुनिक युग में वैज्ञानिक शोध द्वारा पुनः स्थापित किया जा सके। मालवीय जी का योग के प्रति विशेष प्रेम था (योगः कर्मषु कौशलम्) जिसके आधार पर ही विश्वविद्यालय की आधारशिला रखी गयी। योग एक ऐसी धारा है जो सदियों से चली आ रही है। योग एवं योगियों का वर्णन ऐतिहासिक है और बताया गया है कि योग सिद्धियों द्वारा एक साधारण मनुष्य 'विशेष' बन सकता है। योग द्वारा शरीर में स्थित चक्रों पर ध्यान केंद्रित करके अतुलनीय शक्तियाँ अर्जित की जा सकती हैं। शरीर के इन चक्रों में सहस्त्र चक्र का स्थान सर्वोच्च है। सहस्त्र चक्र अन्य सभी चक्रों की क्रियाओं को संचालित एवं समन्वित करता है। सहस्त्र चक्र का संचालन सायंकाल के ऊर्जा स्रोत द्वारा होता है।

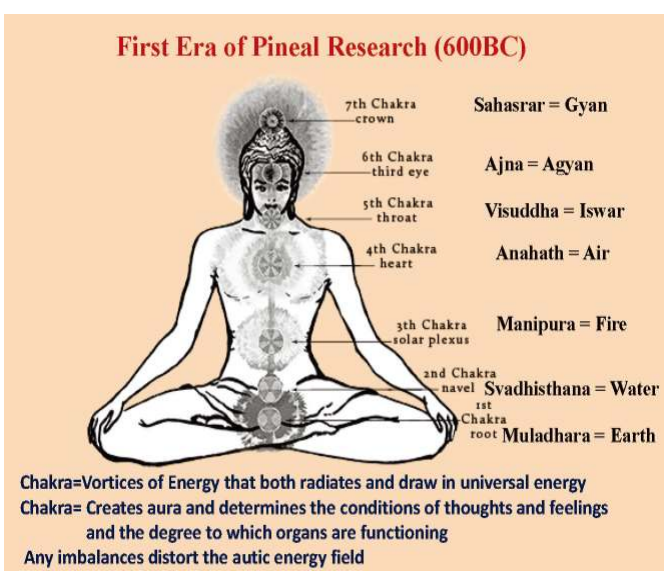

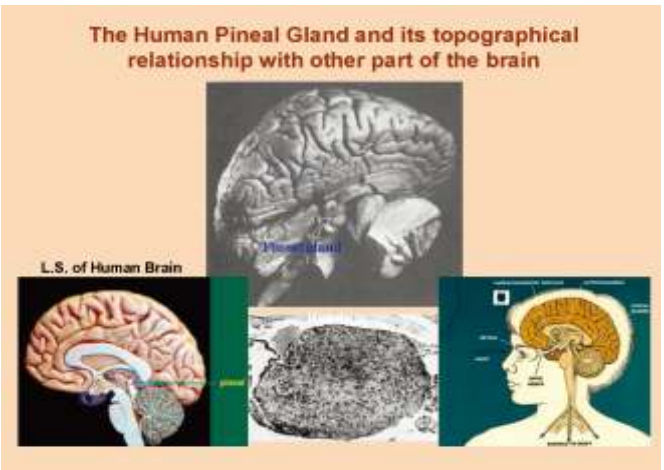

आधुनिक युग के शोध कार्यों द्वारा यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि मानव मस्तिष्क में एक ऐसी ग्रन्थि है जिसकी कार्यप्रणाली भी प्रकाश द्वारा संचालित होती है। इस ग्रन्थि को पीनियल ग्रन्थि कहा जाता है। पीनियल ग्रन्थि का संचालन अंधकार बेला में होता है। हमारे आँख की रेटिना प्रकाश की संवेदना की सूचना मस्तिष्क को देती है। प्रकाश पीनियल ग्रंथि में स्थित एंजाइम की क्रियाशीलता का संचालन करता है जिसके द्वारा पीनियल हार्मोन 'मेलाटोनिन' का स्रावण सुनिश्चित होता है। अंधकार बेला में मेलाटोनिन का स्रवाण हमारे रुधिर परिसंचरण तंत्र में होता है जिसके द्वारा विभिन्न शारीरिक अंगों तक पहुँचाया जाता है। योग एवं साधना द्वारा जिस प्रकार विभिन्न सिद्धयों की प्राप्ति की जा सकती है उसी प्रकार यदि पीनियल ग्रन्थि के संचालन पर ध्यान दिया जाय जो विभिन्न प्रकार की बिमारियाँ जो हमारी आधुनिक जीवन शैली के कारण उत्पन्न होती हैं, पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

आधुनिक शैली के अनुसार रात्रि के समय कृत्रिम प्रकाश में कार्य करने से तनाव उत्पन्न होता है। तनाव एक ऐसा उत्प्रेरक है, जो अकेले ही शरीर के विभिन्न अवयवों को क्षीण करता है। कृत्रिम प्रकाश के कारण मेलाटोनिन का स्तर रक्त में घटना एवं तनाव का बढ़ना ही विभिन्न बिमारियों का कारण है। अतः हम योग एवं विज्ञान के समन्वय द्वारा आधुनिक जीवन शैली में अपने प्रजाति एवं अन्य जीव-जन्तुओं की शारीरिक प्रतिरक्षा तंत्र प्रणाली का संतुलित समन्वय कर सकते हैं।

सहस्त्र चक्र (पीनियल ग्रन्थि) की कार्य प्रणाली

दार्शनिकता एवं विज्ञान का समायोजन मानव शरीर में स्थित कुंडलिनी शक्ति में चक्रों की संख्या छः एवं कहीं-कहीं सात बताई गयी है।

*विभागाध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग, विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

इन चक्रों के विषय में समयान्तराल पर अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हो रही हैं। कुंडलिनी शक्ति का जागरण बहुत ही कठिन तपस्या है, परन्तु इनके द्वारा संचालित चक्रों पर ध्यान दिया जाये तो मानसिक स्वास्थ्य एवं सुदृढ़ता प्राप्त की जा सकती है। कुंडलिनी चक्रों के विषय में संक्षिप्त जानकारी निम्नवत् है-

मूलाधार चक्र- इस चक्र को आधार चक्र भी कहा जाता है। यह गुदा एवं लिंग के बीच स्थित होता है।

स्वाधिष्ठान चक्र- छः पंखुड़ियों वाला यह चक्र लिंग मूल में स्थित होता है।

अनाहत चक्र- यह चक्र बारह पंखुड़ियों वाला है तथा हृदय स्थान पर स्थित है।

विशुद्धि चक्र- इस चक्र का स्थान कण्ठ में बताया गया है। जो कि सरस्वती का भी स्थान है। यह चक्र सोलह पंखुड़ियों वाला है। इसके द्वारा ही सोलह विभूतियों का निर्धारण ज्ञान होता है।

आज्ञा चक्र- भूमध्य (भृकुटी के मध्य में) आज्ञा चक्र का स्थान बताया गया है।

सहस्त्रार चक्र- सहस्त्रार चक्र का स्थान मस्तिष्क के मध्य भाग में बताया जाता है। इस स्थान पर अनेक महत्वपूर्ण विद्युतीय और जैविक विद्युत का संग्रह, शारीरिक संरचना के अध्ययन द्वारा बताया गया है।

पौराणिक कथाओं में तीसरी आँख का उल्लेख है जो संभवतया भगवान शिव में जागृत तीसरी आँख है। योग एवं तंत्र ग्रंथों में इसे सहस्त्र चक्र कहते हैं, जो साधना की चरम परिणति पर कुंडलिनी आकार आध्यात्मिक ऊर्जा फैलाती है। आधुनिक विज्ञान के विद्यार्थी इसे मस्तिष्क के मध्य में स्थित एक छोटी सी ग्रन्थि 'पीनियल' के रूप में पहचानते हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक पीनियल को एक निष्क्रिय ग्रन्थि मानकर प्रायः इसकी उपेक्षा की जाती थी। नवीन अनुसंधानों एवं प्रमाणों द्वारा वैज्ञानिकों ने इसे मानव शरीर की सर्वप्रमुख ग्रन्थि के रूप में स्वीकार किया है।

इस लेख द्वारा सहस्त्रार चक्र या पीनियल ग्रन्थि द्वारा स्रावित हार्मोन 'मेलाटोनिन' के प्रवाह का संतुलन एवं नियंत्रण तथा प्रतिरक्षा तंत्र प्रणाली के अवयवों के नियंत्रण पर विशेष रूप से वर्णन किया गया है। पीनियल ग्रन्थि द्वारा स्रावित हार्मोन को मेलाटोनिन कहते हैं। यह हार्मोन अमिनो एसिड ट्रिप्टोफान का एमिनेशन एवं ऐसिटलाईजेशन द्वारा बनता है। इसके संरचना का संचालन विशेष इंजाइम्स करते हैं। मेलाटोनिन की खोज प्रो0 ए.बी. लरनर ने सन् 1958 में अपने शोध छात्रों के साथ की थी। प्रो0 लरनर एवं अन्य वैज्ञानिकों ने बताया कि मेलाटोनिन की संरचना एवं स्रावण रात्रि के समय होता है और दिन के समय यह हार्मोन एक निम्न स्तर पर रक्त में पाया है और रक्त द्वारा पूरे शरीर में पहुँचाया जाता है। इसके खोज के लगभग एक दशक बाद यह बताया गया कि मेलाटोनिन न ही केवल पीनियल ग्रन्थि द्वारा स्रावित होता है बल्कि इसकी सरंचना एवं स्रावण शरीर के अन्य कोशिकाओं एवं प्रणालियों द्वारा भी होता है। जिनमें आँत, रेटिना, श्वेत रुधिर कणिकाओं द्वारा भी होता है। श्वेत रुधिर कणिकाओं द्वारा इनका स्रावण प्रतिरक्षा प्रणाली में मुख्य भूमिका निभाता है।

इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ तक जैव-वैज्ञानिक प्रतिरक्षा प्रणाली तंत्र को एक सुनियोजित एवं व्यवस्थित तंत्र बताते थे जिन पर साइटोकाइन्स के असर के अलावा और किसी परितंत्र का प्रभाव नहीं बताया गया था। अस्थिमज्जा कोशिकाओं का संवर्धन द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि प्रतिरक्षा तंत्र पर कपाल में ऊपरी भाग में स्थित पीनियल ग्रन्थि तथा उसके द्वारा स्रावित हार्मोन मेलाटोनिन का प्रभाव है जो कि उम्र, आयु, काल समय तथा लिंग भेद पर आश्रित है। भारतीय प्रजापति के जन्तुओं जैसे लावा, बटेर, गिलहरी, उल्लू इत्यादि पर शोध ने यह स्थापित किया है कि जन्तुओं पर वातावरणीय परिवर्तनों का प्रभाव प्रतिरक्षा प्रणाली पर पीनियल ग्रन्थि तथा मेलाटोनिन द्वारा ही नियंत्रित होता है। किसी भी संवेदनशील पक्षी या छोटे स्तनधारियों में मेलाटोनिन प्रतिरक्षा तंत्र पर उत्प्रेरक का कार्य करता है। यह भी स्थापित किया गया है कि प्रतिरक्षा तंत्र में मुख्य भूमिका निभाने वाली श्वेत रुधिर कणिकाओं सा प्रभाव डालता है। अस्थिमज्जा, प्लीहा, थाइमस इत्यादि पर मेलाटोनिन का विशेष प्रभाव डालता है। विभिन्न शोधकार्यों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि मेलाटोनिन प्रतिरक्षा तंत्र पर एक नियमित प्रभाव डालता है। इस प्रभाव द्वारा मेलाटोनिन शारीरिक कार्य प्रणाली का संचालन करता है जिसमें प्रतिरक्षा तंत्र, प्रजनन एवं कर्क रोग पर मुख्यरूप से जानकारी में है।

मेलाटोनिन एक सुनियोजक

मेलाटोनिन हारमोन बहुगणी/हारमोन है। जो हाड्रोफिलिक एवं हाड्रोफोबिक गुण प्रस्तुत करता है जिसके कारण यह अणुकणिका कोशिकाभिति द्वारा आसानी से आर-पार जा सकता है। इसके इसी गुण के कारण मेलाटोनिन अन्तः कोशिकीय एवं बाह्य कोशिका स्तर पर कोशिका की कार्य प्रणाली पर प्रभाव डालता है। मेलाटोनिन का बाह्य कोशिकीय नियमन इसके कोशिका पर स्थित दो प्रापको (Receptors) द्वारा होता है जो प्रापक MT1 एवं MT2 रूप में उल्लेखित है। मेलाटोनिन के अन्य नामकिय प्रापक भी उल्लेखित है, परन्तु इनके विषय में विशेष जानकारी उपलबध नहीं है। मेलाटोनिन अपने प्रापकों द्वारा कोशिकाओं की विभिन्न कार्य प्रणालियों का संवाहन करते है। जिसमें प्रतिरक्षा तंत्र प्रणाली के विभिन्न अवयवों का संचालन प्रमुख है। मेलाटोनिन के प्रापक शरीर के विभिन्न उत्तकों पर शोध द्वारा उल्लेखित हैं। जिनमें प्रमुख रूप से इनके प्रापक लसिकाव अंगों (तिल्ली एवं थाइमस) पर प्राप्त किये गये हैं। मेलाटोनिन प्रापक श्वेत रुधिर कणिकाओं पर भी पाये गये हैं। मेलाटोनिन का इसके प्रापक से जुड़कर विभिन्न प्रतिरक्षा प्रणाली के अवयवों जैसे साइटोकाइन (Cytokines) के स्रावण पर भी प्रभाव डालता है और इनके स्रावण प्रतिरक्षा प्रणाली में संदेशवाहक का कार्य करते हैं, जो इसके अन्य अवयव जैसे मैक्रोफाज (Macrophage), मोनोसाइट (Monocytes), लिम्फोसाइट (Lymphocytes) को प्रभावित करते हैं।

मेलाटोनिन का स्रावण रात्रि के समयान्तराल पर निर्भर करता है अर्थात रात्रि जितनी लम्बी या छोटी होगी, मेलाटोनिन का स्रावण उतना ही अधिक या कम होता। अतः मेलाटोनिन के स्रावण ऋतुओं द्वारा भी प्रभावित होता है। ग्रीष्म ऋतु में रात्रि के छोटे होने के कारण इसका स्राव कम होता है एवं शीत ऋतु के जब रात्रि लम्बी होती है तो इसका स्राव

ज्यादा होता है। मेलाटोनिन के ऋतुओं के अनुरूप संश्लेषण एवं स्राव के कारण इसका प्रभाव प्रतिरक्षा प्रणाली एवं प्रजनन पर भी ऋतुओं के अनुरूप होता है। मेलाटोनिन का ऋतु अनुसार स्राव एवं संश्लेषण के प्रभाव का प्रतिरक्षा तंत्र प्रणाली पर अध्ययन विभिन्न जीवों में किया गया है एवं शोध कार्य जारी है जिनमें (विज्ञानरत्न सम्मानित प्रो0 चन्दना हालदार का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं)।

मेलाटोनिनः एक प्रतिउपचायक

मेलाटोनिन हारमोन के बहुप्रभावी गुणों में प्रतिउपचायक (Antioxidant) क्षमता का विशेषरूप से अध्ययन किया गया है और बताया गया है कि मेलाटोनिन एक प्रबल प्रतिउपचायक है, जो कि अपचायक से प्रतिक्रिया करके उन्हें संतुलित रखता है। मेलाटोनिन अन्य प्रतिउपचायक जैसे विटामिन सी और ई से कहीं अधिक प्रबल प्रतिउपचायक है, क्योंकि शोध द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि मेलाटोनिन और इसके उपापचय भी प्रतिउपचायक की तरह ही प्रभाव डालते हैं और अपचायक पर नियंत्रण रखते हैं।

इतना ही नहीं मेलाटोनिन हार्मोन विभिन्न प्रतिउपचायक एंजाइम की सक्रियता को भी प्रभावित करता है। मेलाटोनिन के प्रभाव का प्रतिउपचायक एंजाइमों की सक्रियता पर अध्ययन किया गया है और बताया गया है कि विभिन्न प्रतिउपचायक एंजाइमों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। मेलाटोनिन इन एंजाइमों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। उम्र के साथ पीनियल ग्रन्थि के कार्य क्षमता कम होती जाती है तथा मेलाटोनिन संरचना और उसका स्रावण दोनों ही घट जाती है। इसलिए उम्र के साथ प्रतिरक्षा प्रणाली तंत्र भी कमजोर हो जाती है तथा विभिन्न प्रकार के व्याधि और संक्रमण होने लगते हैं।

यह ग्रन्थि मानव शरीर को केवल दिन और रात का अंतर ही नहीं, बल्कि यह शरीर के हर अंग से आन्तरिक रूप से जुड़ी है। यह शरीर के रोग प्रतिरोधक प्रणाली की मूल है तथा शरीर में ट्यूमर वृद्धि और वृद्धावस्था की प्रक्रिया में भी नियंत्रण करने में भूमिका निभाती है। अमेरिकी वैज्ञानिक प्रो0 रसेल जे. रियटर (1998) के अनुसार पीनियल ग्रन्थि में बनने वाला मेलाटोनिन हार्मोन पूरे शरीर में विद्यमान रहता है तथा प्रत्येक अंग को प्रभावित करता है। इटली के जीव वैज्ञानिक डॉ0 पी. लिसोनी (1986) जिन्होंने भारतीय योग एवं तंत्र के परिप्रेक्ष्य में भी पीनियल का अध्ययन किया है और बताया कि पीनियल ग्रन्थि कैंसररोधी प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा कर्क रोग के नियंत्रण में भी मेलाटोनिन प्रभावशाली है। डॉ0 लिसोनी ने रोगियों पर किये गये परीक्षणों में पाया कि मेलाटोनिन हारमोन कुछ खास किस्म के ट्यूमरों के उपचार में कारगर है जिनके लिए इस समय कोई औषधि उपलब्ध नहीं है। उन्होंने बताया कि मेलाटोनिन की ट्यूमर विरोधी गुणवत्ता तथा इसके विषहीन प्रभाव के बावजूद कर्क रोग चिकित्सा में इसका उपयोग शुरुआती दौर में है।

डॉ0 लिसोनी के अनुसार विभिन्न यौगिक क्रियाओं का लक्ष्य पीनियल ग्रन्थि को सकारात्मक दृष्टि से प्रभावित कर शरीर की रोग-प्रतिरोधक शक्ति को नये करने वाली तथा एड्स जैसी बीमारियों के उपचार में योग एवं साधना की उपयोगिता का पता लगाने के लिये वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता बतायी। स्विट्जरलैंड के डॉ0 जार्ज मैस्ट्रोनी (2003) के नवीन अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है, कि मेलाटोनिन शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाता है। यह थाइमस ग्रन्थि को प्रभावित करता है, जो रोग प्रतिरोध प्रणाली का एक केन्द्रीय अंग है। मेलाटोनिन रोग प्रतिरोधहीनता तथा कैंसर की चिकित्सा में बहुत उपयोगी बताया गया है। डॉ0 मेसट्रोनी के अनुसार दिन और रात के परिवर्तन, रोगाणुओं के आक्रमण तथा अन्य अवांछनीय तत्वों का पता लगाने तथा उनका सामना करने के लिये आवश्यक उपाय करने में पीनियल ग्रन्थि कारगार भूमिका निभाती है।

बुढ़ापा रोकता है- मेलाटोनिन हार्मोन

शरीर में संतुलित अवस्था में रहने पर मेलाटोनिन सदा जवान बने रहने का करिश्मा कर सकता है। मेलाटोनिन हार्मोन इंसान की जैविक घड़ी को नियंत्रित करने में अहम भूमिका निभाता है और उसके प्रतिरक्षा तंत्र को संतुलित बनाये रखता है। इसी हार्मोन से पर्यावरण के अनुरूप शरीर के संबंधित अवयवों को अपेक्षित कार्य करने का संदेश मिलता है। यदि यह हार्मोन संतुलित स्थिति में रहे तो बुढ़ापे की ओर जाने की रफ्तार कुछ समय के लिये थम जाती है। यह ऐसा हार्मोन है जो कि निद्रावस्था में प्राणी की पीनियल ग्रन्थि से उत्सर्जित होता है।

एक शोध अध्ययन से पता चला है पीनियल ग्रन्थि से बाइस तरह के रसायन निकलते हैं जिनमें प्रमुख मेलाटोनिन है। नींद के दौरान बनने वाला यह हार्मोन अनिद्रा के शिकार लोगों में बनना कम हो जाता है। इसी वजह से अनिद्रा के शिकार लोग बुढ़ापे की ओर तेजी से बढ़ जाते हैं। यह हार्मोन जुकाम, खाँसी, बुखार, चर्म रोग में शरीर के निदान के रूप में प्रतिरोधक क्षमता पैदा करता है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है वैस-वैसे इस तत्व का स्राव कम होने लगता है। इसके कारण अनिद्रा व तंत्रिका तंत्र (नर्वस सिस्टम) से संबंधित बिमारियाँ होने लगती हैं। विभिन्न जन्तुओं पर किये गये अनुसंधान द्वारा उन्होंने बताया कि यह स्राव शरीर की प्रतिरोधक क्षमता, प्रजनन क्षमता नियंत्रित करने के साथ ही तनाव आदि को भी कम करता है। आँखें बंदकर खुद को आराम देने की प्रक्रिया में भी इस ग्रन्थि से निकलने वाला स्राव ही आराम की अनुभूति कराता है। आँख बंद करना खुद को रात से जोड़ने जैसा है। पत्ते वाली सब्जियाँ जैसे पत्ता गोभी, पालक, टमाटर, गाजर आदि में मेलाटोनिन अधिक पाया जाता है। पीली सरसों में मेलाटोनिन की मात्रा सबसे अधिक पायी गयी है। अगर बुजुर्ग इन पत्तियों वाली सब्जियों का सेवन करें तो उनकी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ायी जा सकती है।

प्रकाशीय जैविक विज्ञान एवं पीनियल ग्रन्थि

सौर विकिरण के पराबैंगनी किरणों के ए तथा बी तरंगदैर्ध्यों के मानव त्वचा पर हानिकारक प्रभाव वर्णित है। ये पराबैंगनी तरंगदैर्ध्य आन्तरिक प्रतिरक्षा प्रणाली को कमजोर करती हैं तथा गुणसूत्रों में परिवर्तन भी उत्पन्न करती हैं जिससे त्वचा में कर्क रोग जैसी घातक बीमारी उत्पन्न होती है। जर्मनी के वैज्ञानिक डॉ0 डी. गुप्ता ने मेलाटोनिन की कार्यप्रणाली की तुलना रेडियो तरंगों से की है जो संदेश भेजने एवं संदेश प्राप्त करने की दोहरी क्षमता रखती हैं। मेलाटोनिन की सूचनाएँ मुख्य नियंत्रण कक्ष पीनियल में एकत्र होती है तथा वहाँ नये हालात के अनुरूप संभालने और समायोजित होने के निर्देश प्राप्त होते हैं।

डॉ0 गुप्ता के अनुसार मेलाटोनिन हार्मोन वह भाषा है जिसके माध्यम से पीनियल ग्रन्थि शरीर के विभिन्न अंगों से वातावरण के अनुसार संवाद करती है। तनाव केवल मनुष्यों में ही नहीं, जानवरों में भी होता है। उनमें भी यह भाव होता है कि केवल उनके ही नहीं, बल्कि उनकी प्रजाति का भी अस्तित्व बना रहे। उनके इसी भाव को मजबूती देता है मस्तिष्क में उपस्थिति पीनियल ग्रन्थि से निकलने वाला मेलाटोनिन का स्राव। लेखक के नवीन शोध से स्पष्ट हुआ है कि यह स्राव जानवरों में अस्तित्व रक्षा के प्रति चेतना भी पैदा करता है। बात तापमान, ऋतु परिवर्तन, प्रजनन, रक्षा आदि से उत्पन्न होने वाले तनाव की हो तो ऐसे में मेलाटोनिन स्राव इन्हें नियंत्रित करता है।

मस्तिष्क सिर्फ शरीर को संचालित ही नहीं करता बल्कि इसकी कुछ ग्रन्थियाँ शरीर को स्वस्थ रखने में भी मदद करती हैं। शोध द्वारा यह बात सामने आयी है कि इगर मस्तिष्क में इस स्राव की मात्रा बढ़ा दी जाये तो तमाम रोग होने की दर घट जाती है। इससे उम्र के प्रभावों को कम करने में भी मदद मिलती है। यह प्रजनन पर रोक लगाता है लेकिन इसके विपरीत गर्भवती व भ्रूण के विकास में भी मदद करता है। मेलाटोनिन का स्राव बढ़ाने से दैनिक कार्य क्षमता बढ़ती है। प्रजनन जीवविज्ञान अथवा अंतःस्रावी ग्रन्थि विज्ञान भारत में प्राचीनकाल से ही विकसित है। कृषि एवं पशुपालन के क्षेत्र में इनका सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। अन्तःस्रावी विज्ञान के क्षेत्र में ज्ञान का विस्तार तेजी से हो रहा है तथा अनेक दिशाओं में लक्षित है।

गर्भधारण एवं भ्रूण विकास

इस हारमोन का एक बड़ा योगदान गर्भाधान की प्रक्रिया और भ्रूण के विकास में होता है। गर्भावस्था में मेलाटोनिन हार्मोन माँ के रक्त से भ्रूण को मिलता है और बच्चे के जन्म के बाद यह माँ के दूध से बच्चे के विकास में भी भूमिका निभाता है। गर्भवती महिलाओं की कोख में पल रहे भ्रूण के बेहतर विकास में मदद करता है मेलाटोनिन। मस्तिष्क की पीनियल ग्रन्थि से होने वाले मेलाटोनिन नामक तत्व का स्राव यदि प्रचुर मात्रा में हो तो यह भ्रूण के विकास के लिये वरदान जैसा होता है। स्वास्थ्य के लिये ही गुणकारी-मेलाटोनिन में ऐसे गुण मिले हैं जो मानव के लिये उपयोगी हैं। शोध द्वारा मानसिक रोगों, स्मृति ह्रास व पार्किसन रोग पर भी नियंत्रण के संकेत मिले हैं। स्तन व गर्भाशय के कर्क रोग में मेलाटोनिन के प्रभाव पर अनुसंधान जारी है।

कृत्रिम रोशनी घटा रही है प्रतिरोधक क्षमता

बल्ब या ट्यूबलाइट की रोशनी में अधिक समय बिताना रोगों को न्योता देने जैसा है। इससे लोगों की प्रतिरोधक क्षमता कम होती जा रही है। यह हार्मोन अंधेरे में समुचित मात्रा में निकलता है। आज बड़ी तादाद में लोगों के बीमारी होने की एक वजह यही है कि लोग अंधेरे में बेहद कम समय बिता रहे हैं और प्राकृतिक प्रकाश से दूर होते जा रहे हैं। इससे मेलाटोनिन हार्मोन बेहद कम हो जाता है। रात में भी बल्ब या सीएफएल जलाकर सोना बीमारियों को न्योता देना है। शाकाहारी बनकर और मक्के की रोटी, पत्ता गोभी आदि का खाने में इस्तेमाल कर रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाई जा सकती है।

वर्तमान समय में मेलाटोनिन के प्रभाव का आणविक स्तर पर अनुसंधान विभिन्न जन्तुओं में चल रहा है तथा इसके प्रभाव का प्रतिरक्षा तंत्र प्रणाली एवं उसके अवयवों के संचालन पर आणविक स्तर पर शोध चल रहे है। शोधकार्यों के विवेचनानुसार मेलाटोनिन को एक औषधि के रूप में प्रयोग कर प्रतिरक्षा तंत्र को सुदृढ़ करने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है एवं अनुसंधान प्रगति पर है।

धन्यवाद ज्ञापन : लेखिका, डॉ0 बी.बी. विश्वास, पूर्व निदेशक, भारतकला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा डॉ0 गोविन्दम् एवं श्रीमान् अमरेश कुमार सिंह, जन्तु विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा दिये गए विविध सहयोगों के प्रति आभार व्यक्त करती हैं।

पेसमेकर से पार्किंसंस का इलाज

मस्तिष्क के पेसमेकर से पार्किंसंस की बीमारी का इलाज किया जा सकता है। डॉक्टरों ने तीन बच्चों की माँ को मस्तिष्क का पेसमेकर लगाकर पार्किंसंस की बीमारी का इलाज किया। इससे पार्किंसंस से पीड़ित हजारों मरीजों के लिए भी उम्मीद की एक नई किरण जगाई है। 19 फरवरी, 2016 को प्रकाशित खबर के अनुसार, 55 वर्षीय शशिकला शुक्ला एक महीने पहले तक अपने हाथ-पैर बिना सहायता के नहीं हिला पाती थीं। लेकिन अब उनकी पार्किंसंस की बीमारी में सुधार दिख रहा है।

पर्यावरण संरक्षण एवं स्थायी विकास

प्रो० गिरीश चन्द्र चौधरी*

स्थायी विकास दुनियाभर में बुद्धिजीवियों, सरकारों, पर्याविदों, पर्यावैज्ञानिकों, करोबार समूहों के मध्य पर्यावरणीय और आर्थिक साहित्य में चर्चा का विषय बना हुआ है। स्थायी विकास के निर्धारित लक्ष्यों को हासिल करने के लिए स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर परिचर्चाओं, कार्यक्रमों, परियोजनाओं, सभाओं एवं सम्मेलनों का निरंतर आयोजन किया जा रहा है। निश्चित रूप से स्थायी विकास का विचार और महत्ता समकालीन दुनिया में निरंतर लोकप्रिय हो रही है, क्योंकि स्थायी विकास मानव समुदाय के साथ-साथ पर्यावरण के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। विकास में अस्थिरता उस समय आती है जब प्राकृतिक संसाधनों तथा वातावरण का लंबी अवधि तक क्षय होता रहा हो। इस स्थिति में मानवीय जीवन अस्थिर हो जाएगा और वैश्विक स्तर पर सम्पूर्ण जैव तंत्र नष्ट होने की संभावना बलवती होगी। स्थायी विकास को प्राप्त करने के लिए नीति निर्माण में व्यापक जनभागीदारी और सामाजिक उत्तरदायित्व को मूलभूत आधार माना गया है।

स्थायी विकास की अवधारणा

स्थायी विकास, संसाधनों के उपयोग करने का एक आदर्श मॉडल प्रस्तुत करता है जिसमें पर्यावरण के संरक्षण के साथ-साथ वर्तमान मानवीय जरूरतों को पूरा करते हुए आने वाली भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को भी पूरा करना सुनिश्चित किया जाता है और यह भविष्य की आवश्यकताओं, स्थिर आर्थिक विकास के साथ-साथ पारिस्थितिकीय व्यवस्था की सुरक्षा को भी महत्व देता है। विश्व आयोग जो कि ग्रो हरलेन ब्रुंडलैंड की अध्यक्षता में गठित हुआ था, के द्वारा दी गई सतत् विकास की

परिभाषा सर्वमान्य बन गई है। यह इस प्रकार से है- 'स्थायी विकास वह अवधारणा है जिसमें भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को पूरा करते हुए एवं उनकी क्षमताओं में किसी तरह के समझौते किए बगैर वर्तमान जरूरतों को पूरा करना ही स्थायी विकास है।'

दरअसल, स्थायी विकास मानव जाति के समक्ष चुनौतियों, प्राकृतिक तथा पारिस्थितिकीय तंत्र को एक साथ लेकर चलने की चिंता है। यह वर्तमान परिस्थितियों एवं सामाजिक चुनौतियों को भी मद्देनजर रखता है। 1970 के दशक के प्रारम्भिक काल में ही स्थायी विकास को एक ऐसे अर्थतंत्र को साकार करने के लिए लाया गया, जिसमें कि मूलभूत पर्यावरणीय सहयोग तंत्र कायम रहे। संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित वैश्विक शिखर सम्मेलन-2005 दस्तावेज में स्थायी विकास को आर्थिक विकास, सामाजिक विकास एवं पर्यावरणीय संरक्षण से पारस्परिक रूप से जोड़कर देखा गया।

स्थायी विकास एक अवधारणा है, जो अपने अंतर्गत विचारों एवं धारणाओं को एक विस्तृत क्षेत्र में शामिल करता है। स्थायी विकास, विकासशील दुनिया को विकास की सीमा निर्धारित करने के लिए कहता है। विकसित देशों ने विकास कार्यों के दौरान बड़े स्तर पर प्रदूषण फैलाया है और वही तीसरी दुनिया के देशों को प्रदूषण कम करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, जबकि वे स्वयं प्रदूषण विस्तार में बहुत बड़े कारक हैं। लेकिन कुछ स्वदेशी मंचों जैसे संयुक्त राष्ट्र स्वदेशी स्थायी मंच एवं जैव वैविध्य सभा के माध्यम से स्थायी विकास के वर्तमान तीन स्तंभों पर

*पूर्व आचार्य, भौमिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी - 221 005; आवास-भारतेन्दु भवन, चौखम्भा, वाराणसी – 221 001.

सवाल उठाया और इसमें संस्कृति को चौथे स्तंभ के रूप में शामिल करने की वकालत की।

संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को, 2001) ने इस धारणा को आगे विस्तार करते हुए यह कहा कि ''सांस्कृतिक वैविध्य मानव जाति के लिए ठीक उसी तरह जरूरी है जैसे कि जैव विविधता प्रकृति के लिए।'' स्थायी विकास को समझने के लिए केवल आर्थिक उन्नति ही पैमाना नहीं है बल्कि स्थायी विकास में संतोषजनक बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक अस्तित्व भी पैमाने हैं। इसी दर्शन को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक वैविध्यता, स्थायी विकास की योजना क्षेत्र का चौथा स्तंभ है।

स्थायी विकास के क्षेत्र को चार सामान्य आयामों - सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय और संस्थागत में विभक्त किया गया है। इनमें से प्रथम तीन आयाम स्थायित्व के प्रमुख सिद्धांत हैं जबकि अंतिम संस्थागत नीति और क्षमता विषयों से संबंधित है।

शब्द उत्पत्ति : 'सस्टेनेबल'

'सस्टेनेबल डेवलपमेंट' मूलतः दो शब्दों क्रमशः 'सस्टेनेबल' व 'डेवलपमेंट' से मिलकर बना है। हिन्दी भाषा में सस्टेनेबल के लिए 'स्थायी', 'स्थायित्व', 'सतत', 'समग्र', 'सम्पूर्ण', 'निरंतर' शब्द प्रचलित हैं। 'सस्टेनेबल' शब्द 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में यूरोपीय वन-अधिकारियों द्वारा प्रायः प्रयोग में लाया गया। इसके बाद इसका उपयोग सम्पूर्ण दुनिया में बहुतायत होने लगा। 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में यूरोप में वनों को वाणिज्यिक उद्देश्यों से काटा जाने लगा था क्योंकि उन दिनों वनों से प्राप्त लकड़ी और संसाधन वहाँ के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने में उल्लेखनीय भूमिका निभा रहे थे।

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और सतत् विकास

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय बहुपक्षीय पर्यावरणीय करारों के लिए भारत सरकार की एक नोडल एजेंसी है। इसमें ओजोन परत के संरक्षण के लिए विएना सम्मेलन, ओजोन परत में छेद करने वाले पदार्थ पर मांट्रियल समझौते, जैविक विविधता पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन, जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का फ्रेमवर्क कन्वेंशन, मरुस्थलीकरण को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन, क्योटो प्रोटोकाल, खतरनाक पदार्थों के एक देश की सीमा से दूसरे देश की सीमा में प्रवेश पर बासेल सम्मेलन, चिरस्थायी आर्गेनिक प्रदूषण वाले कारक पर स्टॉकहोम सम्मेलन इत्यादि सम्मिलित हैं। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और स्थायी विकास प्रभाग, रेमसर सम्मेलन, आर्गेनिक प्रदूषकों पर रोटरडम सम्मेलन भी इसमें शामिल है। यह संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी), यूएलडीपी, विश्व बैंक, यूएनआईओ, सतत् विकास के लिए यूएन आयोग (सीएसडी), ग्लोबल इन्वायरमेंट फैसिलिटी (जीईपी) तथा क्षेत्रीय सहयोग के लिए दक्षिण एशिया एवं पैसिफिक के लिए आर्थिक एवं सामाजिक आयोग (ईएसपीएपी), क्षेत्रीय सहयोग के लिए दक्षिण एशिया समन्वय पर्यावरण कार्यक्रम (एसएसीईपी) एडीबी और यूरोपियन यूनियन (ईयू) के लिए नोडल संस्था है। प्रभाग पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के क्षेत्र में द्विपक्षीय सहयोग को भी देखता है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की शासकीय परिषद, ग्लोबल मिनिस्ट्रियल इन्वायरमेंटल फोरम का विशेष सत्र 20-22 फरवरी, 2008 को मोनाको में आयोजित हुआ था। सत्र का मुख्य मुद्दा 'वैश्वीकरण तथा पर्यावरण' चुनौतियों का मुकाबला करने लिए वित्तीय संसाधन जुटाना था।

श्रद्धांजलि

भूगर्भ विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्य एवं विज्ञान-गंगा के लेखक प्रो. गिरीश चन्द्र चौधरी जी का लगभग 75 वर्ष की अवस्था में गत 01 अक्टूबर, 2016 को निधन हो गया। प्रो. चौधरी जी हिन्दी प्रकाशन समिति से लम्बे समय तक जुड़े रहे और यहाँ के कार्यक्रमों में विशेष रुचि के साथ सहभागिता करते थे। विज्ञान-गंगा परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि।

संरक्षण की आस में हैं कुछ अन्य जलधाराएँ

डॉ0 श्याम बाबू पटेल*

मानव समाज का विकास नदी के किनारे हुआ है। भारत में ज्यादातर नगर नदियों के किनारे बसे हैं, क्योंकि वहाँ मानव जीवन संचालित करने की अधिकांश सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं। आज भारत की बड़ी-बड़ी नदियों में उनके किनारे बसे धार्मिक व औद्योगिक शहरों के कारण जल प्रदूषण की समस्या अधिक गंभीर होती जा रही है। भारत की अनेक नदियाँ जल की कमी और प्रदूषण से पूरी तरह आक्रांत हो चुकी हैं। यह समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। परिमणामस्वरूप, जल की गुणवत्ता गिरती जाती है और इसका स्वाद, रंग, गंध तथा तापमान परिवर्तित हो जाता है। ''जल ही जीवन है'' को जीवन सूत्र मानने वाले मानव ने विकास के नाम पर प्राकृतिक संपदा का जिस तरह से क्षरण किया है वह कल की पीढ़ी को 'जल बिन सब सून' से रू-ब-रू होने के लिए मजबूर कर देगा।

लखनिया दरी

कहा जाता है कि हिन्दुस्तान की आत्मा गाँवों में बसती है और विकास की यात्रा पगडंडियों से होकर गुजरती है। आज गाँवों में भी जल, मिट्टी और वायु जो जीवन के आधार हैं, संकट में आ गये हैं। ये अपने अस्तित्व की लड़ाई स्वयं लड़ रहे हैं। आज का ग्रामीण परिवेश संक्रमण के दौर में है जिससे गाँव न तो गाँव ही रह पाया और न ही पूरा शहर बन पाया है । इस परिपेक्ष्य में कुछ करने के उद्देश्य से मैंने एक छोटा प्रयास करने की कोशिश की है। इन स्थानों पर मैं व्यक्तिगत रूप से पहुँचकर इन्हें समझने का प्रयास किया है।

वाराणसी जनपद में चुरामनपुर (निकट साधो-माधो पुल) के पास गंगा नदी में मिलने वाली जलधारा सहवा, बिजुरियाबीर के पास गंगा नदी में मिलने वाली जलधारा, नगवा में मिलने वाली असि नदी (जो पूर्व में असि घाट पर जहाँ वर्तमान में आरती स्थल है), वरुणा-गंगा संगम स्थल सरायमोहना तथा मिर्जापुर जनपद के अहरौरा के पास स्थित लखनिया दरी से आगे बढ़ने वाली गड़ई नदी, चन्दौली जनपद के राजदरी-देवदरी और चान पत्थर झरनों से आगे बढ़ने वाली चन्द्रप्रभा नदी तथा नौगढ़ झील, मूसाखाँड एवं लतीफशाह से आगे बढ़ने वाली करमनाशा नदी के आस-पास के क्षेत्रों का भ्रमण किया। मैंने पाया कि जो जलधाराएँ कभी जीवन का स्रोत हुआ करती थीं वो आज स्वयं संरक्षण की आस में हैं।

राजदरी

देवदरी

वाराणसी से सटा चन्दौली जिला है। इसे भौगोलिक रूप से मुख्यतः दो भागों- उत्तरी मैदानी भाग तथा दक्षिणी पठारी भागों में विभक्त किया जा सकता है। मैंने पूर्व दिशा से चन्दौली जिले में प्रवेश करने वाली उपरोक्त तीन मुख्य जलधाराओं के पथ के साथ चलने का अधिकतम प्रयास किया।

कर्मनाशा नदी मध्य भारत वर्ष के उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों से होकर बहती है। यह गंगा की सहायक नदियों में से एक है। यह बिहार के कैमूर जनपद में प्रारम्भ होकर उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों में बहती है। भूगर्भीय दृष्टि से यह बिहार राज्य के कैमूर शृंखला व कैमूर जनपद से होते हुए समुद्र तल से 350 मीटर (1148 फुट) की ऊँचाई पर बहते हुए उत्तर

चन्द्रप्रभा नदी

*वित्त अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

ISSN 2231 - 2455

करमनाशा नदी

प्रदेश के चौसा के पास गंगा में मिल जाती है। इस स्थान की भौगोलिक स्थिति 25^0 30' 54" N83^0 52' 30" है। इसकी लम्बाई 192 किमी. है। जिसमें से 116 किमी. उत्तर प्रदेश में बहती है और 76 किमी. बिहार में।

वर्णित जलधाराओं का यात्रा पथ

अहरौरा चकिया मार्ग पर आगे बढ़ने पर गड़ई नदी सड़क मार्ग से गुजरती है जहाँ ओवरब्रिज निर्माणाधीन है। यह नदी मिर्जापुर व चन्दौली जिले के गाँवों से होते हुए मुगलसराय-चकिया मार्ग पर शिवनाथपुर गाँव में सड़क मार्ग को पार करते हुए पैतुआ चुरमुली गाँव के पास चन्द्रप्रभा नदी में मिलती है। चन्द्रप्रभा की मुख्य सहायक नदी गड़ई मिर्जापुर की पहाड़ियों से निकलकर परगना धूस के दक्षिण में शिवनाथपुर के पास से इस जिले में घुसती है और कुछ दूर तक मझवार और धूस की सीमा बनाती हुई बाद में मझवार होती हुई पूर्व की ओर विलीन हो जाती है। चन्द्रप्रभा नदी पहाड़ी क्षेत्र से आगे बढ़ने पर शिकारगंज से आगे बाबा जोगेश्वरनाथ चकिया मुगलसराय मार्ग के समानांतर बहते हुए बबुरी के नजदीक सड़क को पार करके पैतुआ-चुमुली गाँव जहाँ गड़ई नदी चन्द्रप्रभा में विलीन हो जाती है और आगे बढ़ते हुए उरगाँव के समीप करमनाशा नदी में मिल जाती है जिसके आगे करमनाशा पर चन्दौली धरौली मार्ग पर पुल बना है। करमनाशा नदी आगे चौसा के पास गंगा नदी में मिल जाती है ।

यहाँ पर मध्यकाल में हिन्दुओं का यह विश्वास था कि करमनाशा का जल के स्पर्श से पुण्य नष्ट हो जाता है और इसी के कारण इसका यह नामकरण भी हुआ है। यह जिले को ककरैत में छोड़ती हुई फतेहपुर से

नौगढ़ बाँध

चौंतीस मील पर चौसा में गंगा में मिल जाती है। नौबतपुर में इस नदी पर पुल है और यहीं से ग्रैंड ट्रंक रोड और गया की रेलवे लाइन जाती है।

जिन क्षेत्रों में भ्रमण किया गया वे गंगा घाटी क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं जो एक तरफ विंध्य की पहाड़ियों से घिरे हैं तो दूसरी तरफ नदी तट एवं नदी तलछट से बने मैदान हैं। ये क्षेत्र खेती के लिये उपयुक्त होने की वजह से जनसंख्या की दृष्टि से सघन हैं। इन क्षेत्रों में मुख्यरूप से खेती हेतु उपजाऊ भूमि होने की वजह से धान गेहूँ, चना, तिलहन की बहुतायत खेती होती है। इनके अतिरिक्त विभिन्न सब्जियों व फलों की भी यहाँ पर अच्छी पैदावार है।

एक तरफ जहाँ लखनिया दरी, चूना दरी, राजदरी, देवदरी, लतीफशाह बाँध, मूसाखाँड़ जलाशय, नौगढ़ झील, चन्द्रप्रभा जलाशय जैसे पिकनिक स्पॉट हैं वहीं दूसरी तरफ बरसात के दिनों में गड़ई, चन्द्रप्रभा और करमनाशा नदियाँ जीवन के लिये संकट पैदा कर देती हैं। इनसे व्यापक पैमाने पर जनधन की क्षति होती है। पशुओं के लिए चारा संकट उत्पन्न हो जाता है। इनके अतिरिक्त इन क्षेत्रों को विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ अपने आगोश में ले लेती हैं। यातायात, बिजली, पानी और संचार व स्वास्थ्य की समस्याएँ यहाँ के जनजीवन को अस्त-व्यस्त कर देती हैं जो अन्ततः विकास को प्रभावित करते हैं। इन नदी क्षेत्रों का भ्रमण और सर्वेक्षण करने पर यहाँ की समस्याओं का आभास होता है। इस परिपेक्ष्य में हमारा सुझाव है यदि इन जलधाराओं को ड्रेजिंग के जरिये गहरा किया जाये तो बाढ़ के दिनों में न सिर्फ इन नदियों में जल रुका रहेगा बल्कि बरसात के महीनों के अतिरिक्त महीनों में भी इस क्षेत्र को तालाबों और कुंडों के जरिये जल उपलब्धता बनी रहेगी जिससे जनमानस और पशुधन को जल प्राप्त होता रहेगा और ये क्षेत्र और भी समृद्ध हो जायेंगे।

इन क्षेत्रों में गहन भ्रमण करने पर पाया गया कि यहाँ पर हाईस्कूल तक के शिक्षण संस्थान तो उपलब्ध हैं, परन्तु डिग्री कॉलेज काफी कम हैं एवं विश्वविद्यालय का तो पूर्णतया अभाव है। बाढ़ की विभीषिका से ग्रस्त यह क्षेत्र पूर्वोक्त वर्णित बिंदुओं पर ध्यान आकर्षित करती है क्योंकि अगर इन बिन्दुओं पर सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से प्रयास किया गया तो न सिर्फ शैक्षिक स्थिति में सुधार आयेगा, अपितु जलधाराओं, जलकुण्डों एवं जलकूपों के संरक्षण एवं संवर्धन से पर्यटन के नवीन क्षेत्र उपजेंगे और आर्थिक प्रगति के साथ-साथ पारिस्थितिक तंत्र भी मजबूत होगा, जो मानव समाज को नवजीवन प्रदान करेगा।

ध्वनि विज्ञान के शीर्ष विज्ञानी : डॉ0 अमर गोपाल बोस

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव एवं मंजुलिका लक्ष्मी*

डॉ. अमर गोपाल बोस

''मेरे परम मित्र डॉ0 अमर गोपाल बोस का आज देहान्त हो गया। उनका अपनी कुशाग्र मेधा और अति विनम्रता के लिए सर्वत्र सम्मान किया जाता था। उनके रूप में विश्व ने एक महान पुरुष को खो दिया है।'' यह श्रद्धांजलिपूर्ण शब्द हैं देश के अग्रणी उद्योगपति श्री रतन टाटा के जो उन्होंने अपने मित्र की मृत्यु (2 जुलाई, 2013) पर 'ट्वीट' में लिखे।

डॉ0 बोस द्वारा सन् 1972 में प्रथम बार संगीत का कार्यक्रम देने वाले ध्वनि विस्तारकों का निर्माण किया गया। डॉ0 बोस के स्पीकर आज घरों, कारों और व्यवसायिक स्थानों तक भारी संख्या में प्रयुक्त हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त ध्वनिकी में आधारभूत शोध के क्षेत्र में भी इन स्पीकरों की बड़ी माँग और महत्व है। उनके द्वारा प्रस्तुत अकाउस्टीमास स्पीकर (Acoustimass) की तकनीकी ने स्पीकरों के आकार और ध्वनि के मध्य सानुपातिक संबंध के सिद्धान्त को निर्मूल ठहरा दिया था। अब हथेली में समा जाने वाले स्पीकर भी अपेक्षाकृत उच्च ध्वनि उत्पादित कर रहे थे।

ध्वनि विज्ञान के प्रख्यात आविष्कारक डॉ0 अमर गोपाल बोस भारतीय मूल के एक ऐसे वैज्ञानिक थे जिनके पिता उनके जन्म से कई वर्षों पूर्व ही संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में जाकर बस गये थे। वस्तुतः उनके पिता श्री नोनी गोपाल बोस कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के छात्र थे जिन्हें अपने देशभक्ति समर्थक विचारों के लिए ब्रिटिश सरकार ने कारावास में डाल दिया। देशभक्ति के इस कटु परिणाम और कारावास के जीवन से विक्षुब्ध होकर नोनी गोपाल वर्ष 1920 में जेल से भाग गये और यू.एस. के फिलाडेल्फिया पेन्सिल्वेनिया में जाकर बस गये। कुछ समय पश्चात् वहीं की एक स्कूल अध्यापिका शॅरलॉट से उन्होंने विवाह कर लिया। जर्मन और फ्रांसीसी मिश्रित मूल वाली शॅरलॉट के विषय में आगे चलकर अमर बोस ने लिखा कि ''वे मुझसे कहीं अधिक भारतीय थीं। वे अपने खानपान में पूर्णतः शाकाहारी थीं तथा भारतीय दर्शन और वेदान्त में उनकी गहरी रुचि थी।'' विवाहोपरान्त वह दम्पत्ति फिलाडेल्फिया के उपनगरीय क्षेत्र में रहने लगा और वहीं 2 नवंबर, 1929 को ध्वानिकी विज्ञान में युगांतरकारी परिवर्तन लाने वाले डॉ0 अमर गोपाल बोस ने जन्म लिया। वे जहाँ रह रहे थे वहाँ रंगभेद की काली छाया से पूरा परिवेश ग्रस्त था परन्तु इन सबसे दूर बालक अमर ने बड़ी छोटी आयु में ही अपने लिए ऐसे 'व्यसन' ढूँढ़ लिए थे जिन्होंने उनके लिए अपना जीवन उद्देश्य निर्धारित करने की राह प्रशस्त कर दी।

मात्र 13 वर्ष की आयु में द्वितीय महायुद्ध के समय एक छात्र स्काउट के रूप में उन्होंने एक रेडियो ट्रांसमीटर की सहायता से ध्वनि विज्ञान से अपना प्रथम परिचय स्थापित किया। शीघ्र ही उन्हें यह ज्ञान हो गया कि वे किसी भी इलेक्ट्रॉनिक उपकरण को सुधार कर ठीक कर सकते हैं। उन्होंने फिलाडेल्फिया की रेडियो मरम्मत वाली दुकानों से बिगड़े रेडियो लेकर उनकी मरम्मत करना शुरू कर दिया और इसी बहाने अपने लिए जेब खर्च अर्जित करने लगे। रेडियो के अतिरिक्त उन्होंने छोटी मॉडल ट्रेनों के सुधार का कार्य भी किया और अपने परिवार की आर्थिक आय में भी सहायक बने।

अपनी प्रारंभिक हाईस्कूल तक की शिक्षा डॉ0 बोस ने एबिंगटन सीनियर हाईस्कूल, एबिंगटन (पेन्सिल्वेनिया) से प्राप्त की। उनकी प्रवृत्ति आरंभ से ही शिक्षण और शोध की तरफ थी। पचास के दशक में डॉ0 बोस ने इंजीनियरिंग के विश्वविख्यात केन्द्र मैसाचूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी से स्नातक, स्नातकोत्तर और शोध की उपाधियाँ प्राप्त कीं। यहीं डॉ0 बोस ने इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग (विद्युत अभियांत्रिकी) में नॉन लीनियर सिस्टम के जटिल विषय पर प्रो0 नॉबर्ट वीनर तथा प्रो0 मुक विंग के निर्देशन में शोध उपाधि अर्जित की थी। यही प्रो0 वाई. डब्ल्यू ली आगे चलकर उनके औद्योगिक सहयोगी तथा जीवनपर्यन्त मित्र, सहायक और पथ निर्देशक बने रहे। इस औपचारिक शिक्षा के उपरान्त डॉ0 बोस ने एक वर्ष का समय ईन्डोवेन, नीदरलैंड स्थित एन वी फिलिप्स इलेक्ट्रॉनिक्स की अनुसंधान प्रयोगशाला में व्यतीत किया।

इसके उपरान्त उन्होंने फुलब्राइट छात्रवृत्ति पर भारत की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला, नई दिल्ली में शोधकार्य किया और उसके पूर्ण करके वापस लौटने पर एक असिस्टेंट प्रोफेसर के तौर पर अपनी ही मातृ संस्था मैसाचूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी (एम.आई.टी.) में सेवारत हो गये। एम.आई.टी. के साथ उनका यह संबंध पैंतालीस वर्षों तक अविच्छिन्न बना रहा। भारत में अपने शोधकार्य काल में ही उनकी मैत्री आगामी वर्षों में उनकी पत्नी बनने वाली श्रीमती प्रेमा बोस से हुई। दुर्भाग्य से उनका यह संबंध जीवनपर्यन्त नहीं चला और आगे चलकर उनके मध्य संबंध-विच्छेद हो गया। अपने एम.आई.टी. के कार्यकाल में प्रोफेसर के रूप में ही 1956 में डॉ0 बोस ने एक उच्च श्रेणी का स्टीरिओ स्पीकर

*'अनुकम्पा', वाई-2 सी, 115/6 त्रिवेणीपुरम, झूँसी, इलाहाबाद-211 019.

ISSN 2231 - 2455

सिस्टम खरीदा। उन्हें यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि जिन उल्लेखनीय तकनीकी विशिष्टताओं का विक्रेता दावा कर रहे थे वे सब उनमें अनुपलब्ध थीं। जीवन्त प्रदर्शन के समय उसकी ध्वनि गुणवत्ता किसी प्रकार वास्तविकता से न्याय करने योग्य या संतोषजनक नहीं थी। तकनीकी की कमियों ने डॉ0 बोस के भीतर के आविष्कारक को बहुत आन्दोलित किया। उन्होंने इन स्पीकरों की गुणात्मक न्यूनता को दूर करने के विषय में अपने कदम बढ़ाये।

एम.आई.टी. के छात्र के रूप में उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि किसी संगीत समारोह वाले हॉल में सुनी जाने वाली 80 प्रतिशत ध्वनि अप्रत्यक्ष होती हैं- अर्थात् ध्वनि सीधे-सीधे मंच से श्रोता के कानों तक न आकर हॉल की भीतरी दीवारों और छतों से उठ्ठाल खाकर तब श्रोता तक पहुँचती है।

उस समय के उपलब्ध स्पीकरों की असंतोषजनक कार्यक्षमता से प्रेरित होकर उन्होंने स्पीकर के आकार, रूप और मनोध्वानिकी (साइकोएकाउस्टिक्स-Psychoacoustics) पर गहन शोध आरंभ किया। इसके फलस्वरूप उन्होंने कुछ ऐसे नये स्पीकर आकारों की परिकल्पना की जिनकी सहायता से संगीत का मंच पर होने वाला समक्ष कार्यक्रम अपने पूरे भावनात्मक सौन्दर्य के साथ कानों तक पहुँचता था। डॉ0 बोस ने इस संकल्पना को ही आधार बनाया और 901 डाइरेक्ट/रिफ्लेक्टिंग स्पीकर सिस्टम (1968) का आविष्कार किया। यह प्रथम त्रिविम ध्वनि विस्तारक यंत्र (स्टीरिओ लाउड स्पीकर) था जो चतुर्दिक के संपूर्ण विस्तार का उपयोग करता था और जिसमें ऐसा नहीं प्रतीत होता था कि ध्वनि का उत्पादन शून्य से हो रहा है। ये स्पीकर 25 वर्षों तक ध्वनि विस्तारकों के बाजार में शीर्ष पर बने रहे। मनोध्वानिकी या साइकोएकाउस्टिक्स पर उनके द्वारा दिए जाने वाले बल ने स्पीकरों के जगत में क्रांति ला दी और उनकी कंपनी के ध्वनिविस्तारक उच्च गुणवत्ता का मापदंड बन गए।

डॉ0 बोस के ऐसे युगान्तरकारी आविष्कार को भी मान्यता मिलने में देर लगी। लोग उनके विचारों से सहमत तो होते थे पर उन पेटेन्टों का विक्रय करना नितान्त कठिन सिद्ध हो रहा था। ऐसे समय में उनकी संस्था एम.आई.टी. के पूर्वोल्लिखित प्रो0 वाई.डब्ल्यू. ली ने उनकी बड़ी सहायता की। उन्होंने न केवल डॉ0 बोस को अपना व्यक्तिगत व्यापारिक प्रयास करने का परामर्श दिया अपितु अपनी संपूर्ण जीवन की 10,000 डॉलर की पूँजी डॉ0 बोस के विचार को मूर्तरूप देने के लिए आहुति दे दी। उनका यह संयुक्त प्रयास सफल हुआ और जब छः वर्षों के उपरान्त डॉ0 ली के निवेश का मूल्यांकन किया गया तो वह 2,60,000 डॉलर की विशाल राशि बन चुकी थी। यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि फोर्ब्स कंपनी के सर्वे में सन् 2007 में अमर गोपाल बोस का विश्व के सर्वाधिक धनी चार सौ लोगों की सूची में 271वाँ स्थान था। उस समय उनकी संपूर्ण सम्पत्ति का आंकलन 1.8 बिलियन डालर्स किया गया था। यद्यपि 2009 की प्रकाशित सूची में उनका नाम बिलियनेयर उद्योगपतियों की सूची में नहीं था किन्तु 2011 में वे 1.0 बिलियन डालर के मूल्यांकन के साथ सूची में पुनः अपना स्थान सुरक्षित करने में सफल रहे।

साठ के दशक में डॉ0 बोस द्वारा ध्वनि विज्ञान के क्षेत्र में किए जाने वाले नवीनतम शोधों की परिणति थी विश्वप्रसिद्ध कॉर्पोरेशन जो 1964 में स्थापित किया गया था। इस संस्थान का श्रीगणेश ही उनके क्षेत्र में नवीन शोधों और नव आविष्कारों के निर्देशक सिद्धांतों के आधार पर किया गया था। इस कंपनी के नामकरण में भी उनके सहयोगी और समर्थक डॉ0 वाई.डब्ल्यू. ली की प्रेरणा थी। उनकी ही राय थी कि कंपनी का नाम छोटा हो और ऐसा हो जिसके उच्चारण में अमेरिकी जनता कठिनाई का अनुभव न करे। अंततः उनके अपने ही नाम पर नामकरण हुआ 'बोस कार्पोरेशन'। प्रारंभिक काल में इस कंपनी ने उच्च क्षमता वाले ध्वनि प्रवर्धकों का निर्माण किया जो यू.एस. मिलिट्री के साथ एक अनुबन्ध के अन्तर्गत बनाये गये थे। इसके पश्चात् बारी आई 901 डाइरेक्ट/रिफ्लेक्टिंग ध्वनि विस्तारकों की (1968) जिनका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। अपनी अत्युच्च गुणवत्ता के कारण ही किसी उत्पाद के छः सात वर्षों की सामान्य जीवनावधि के स्थान पर इन स्पीकरों की माँग बाजार में 25 वर्षों तक बनी रही। उस काल में डॉ0 बोस को जो दो महत्वपूर्ण पेटेंट अपनी कंपनी के लिए प्राप्त हुए वे लाउडस्पीकरों की डिजाइन तथा नॉन लीनियर-टू स्टेट माड्यूलेटेड क्लास-डी पावर प्रासेसिंग के क्षेत्र में थे।

डॉ0 बोस शोध के गिरते स्तर और सरकारों द्वारा शोध के प्रति आर्थिक अनुदानों में कमी से असन्तुष्ट रहते थे। वास्तविकता यह है कि आगे निकलकर जीतने वाले और साथ दौड़ने वालों में एक को छोड़कर अन्य के पीछे रह जाने में मात्र अभिवृत्ति का ही अन्तर होता है। डॉ0 बोस में वह अतिरिक्त जुझारूपन पर्याप्त मात्रा में था। जब उन्हें अपने इच्छानुकूल उच्च गुणवत्ता वाले स्पीकर (ध्वनि विस्तारक यंत्र) नहीं मिल सके तो वह स्वयं आगे बढ़े और उन्होंने आवश्यकतानुरूप एक यंत्र बना डाला। इसके बाद एकाग्र रूप से उन्होंने ध्वनि अभियांत्रिकी संबंधी आविष्कारों के प्रति अपना संपूर्ण ध्यान केन्द्रित किया।

सन् 1964 में गिनती के व्यक्तियों के साथ प्रारंभ की गई कंपनी कुछ वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त संस्था बन गई थी। आज इस कंपनी में पूरे विश्व में नौ हजार से अधिक लोग कार्यरत हैं। अपने अन्तिम वर्षों में डॉ0 बोस कारों के उपयोग के लिए एक आश्चर्यजनक नये संस्पेंशन के निर्माण में संलग्न थे। परंतु उनका यह नवीनतम आविष्कार कभी बाजार तक नहीं पहुँच पाया क्योंकि वह उसकी लागत को कभी उस स्तर तक नहीं ला पाये जहाँ वह उपयोग योग्य सिद्ध हो सके। डॉ0 बोस ने कभी अपनी व्यक्तिगत कंपनी के स्टॉकों को बाजार में बेचकर अपनी कंपनी को पब्लिक लिमिटेड बनाने का प्रयत्न नहीं किया। यही कारण था कि वे अपने शोधकार्य और नव आविष्कार स्वतंत्र और निश्चित रूप से कर सके और उन पर स्टॉकहोल्डर्स का कोई अवांछित दबाव नहीं रहा। तथापि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने अपनी व्यक्तिगत कंपनी के अधिकांश स्टॉक अपनी मातृसंस्था एम.आई.टी. को दान कर दिए। अपने इस दान को डॉ0 बोस ने एम.आई.टी. द्वारा किए जा रहे शोध और शिक्षण के निमित्त रखा था साथ ही उनकी यह भी शर्त थी कि ये स्टॉक कभी बेचे नहीं जा सकेंगे। यह वह संस्था थी जो डॉ0 बोस का उतना ही सम्मान करती थी जितना डॉ0 बोस उस संस्था के प्रति समर्पित थे।

यही कारण था कि वे इतनी बड़ी कंपनी के स्वामी होने के बावजूद अंत तक अपनी संस्था से जुड़े रहे। उनके आविष्कारों के अतिरिक्त उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी उनके अपने छात्र जिन्होंने आगे चलकर यश

कमाया। वे अपने छात्रों को ध्वानिकी पढ़ाते थे और स्नातक तथा स्नातकोत्तर छात्रों के शोध प्रबंधों का परीक्षण करते थे। इसके अतिरिक्त वे अपने छात्रों को ऐसे चुनौतीपूर्ण लक्ष्य दिया करते थे जिनमें उनकी पूरी क्षमता बाहर आ सके। उनका कहना था कि मनुष्य सौ सिलिंडरों वाला इंजन है पर दुर्भाग्य है कि वह उपयोग केवल एक का ही करता है। उनके छात्र सुहास पाटिल द्वारा खोली गई कंपनी 'साइरस लॉजिक' इस कथन की साक्षी है। उनके एक अन्य छात्र डॉ0 विलयम ब्रॉडी ने उनके शिक्षण और व्यक्तित्व के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा है- ''उनकी (डॉ0 बोस की) कक्षायें बड़ी से बड़ी समस्याओं को सुलझाने का साहस देती थीं। डॉ0 अमर बोस ने ही मेरे अन्दर विचार क्षमता उत्पन्न की।''

उनकी मृत्यु पर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भारतीय उद्योगपति हर्ष गोयनका ने उनको ध्वनि जगत का 'एप्पल' (कम्प्यूटर जगत् का प्रख्यात नाम) कहा। उद्योगतंत्र के श्रेष्ठतम ज्ञाताओं में से एक डॉ0 बोस ने अपने समय में पूरे संसार के तकनीकी विशेषज्ञों और ध्वनि प्रेमियों के कल्पनाजगत को सम्मोहित कर लिया था। छोटे आकार वाले बोस वेव रेडियो से लेकर बाहरी शोर से मुक्ति प्रदान करने वाले ईयरफोनों और कार के संस्पेंशनों तक के आविष्कर्ता डॉ0 बोस यद्यपि पूरे जीवनकाल में यू.एस. में ही निवास करते रहे, परन्तु अपने भारतीय मूल पर उन्हें गर्व था। अपनी फुलब्राइट छात्रवृत्ति के अन्तर्गत जब वे एक वर्ष के लिए भारत में रहे थे तभी बंगलूरु स्थित रामकृष्ण मिशन के एक साधक से बात करते हुए उन्हें यह बोध हुआ कि उनके सारे आविष्कार जिन्होंने मूर्तरूप धारण किया वे एक लंबी विश्लेषणात्मक प्रक्रिया का प्रतिफल न होकर अधिकांशतः एक क्षण में मन में उद्भासित होने वाले विचार का

आज डॉ0 बोस सभी भारतीय उद्यमियों के लिए एक अनुसरण योग्य महामानव हैं। उन्होंने सफलता की एक ऐसी कथा रची है जिसे भारतीयों को विश्वसनीयता प्राप्त हुई। उन्होंने शोध की उच्चस्तरीयता और व्यवहारिका का अद्भुत सम्मिश्रण प्रस्तुत किया। उनकी मृत्यु पर एम.आई.टी. के अध्यक्ष रैफेल रीफ द्वारा श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हुए कहा गया- ''उन्होंने स्तरीय निर्देशन और उत्कृष्टता के लक्ष्य, विचारों और संभावनाओं को अपने कार्यकारी जीवन का मापदंड बनाया। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा और हर बार उनसे मिलने पर मुझे कुछ न कुछ प्रेरणादायक सीखने को मिला।''

संगीत-मर्मज्ञ बड़े संगीत समारोह हालों वाली ध्वनि गुणवत्ता को घर के कमरों तक पहुँचाने के डॉ0 बोस के अभिनव योगदान को कभी विस्मृत नहीं कर सकेंगे। अपनी वैज्ञानिक और उद्यमिता वाली क्षमताओं के अतिरिक्त डॉ0 बोस तैराकी और बैडमिंटन जैसी क्रीड़ाओं के भी बड़े प्रेमी थे। वे एक अति विशिष्ट और असाधारण व्यक्तित्व के साथ-साथ अद्भुत नेतृत्व क्षमता वाले व्यक्ति थे।

सन् 2004 में एक लोकप्रिय विज्ञान पत्रिका को दिए गये अपने एक साक्षात्कार में डॉ0 बोस ने पूरी स्पष्टता से इस तथ्य को स्वीकारा कि यदि वे अपनी व्यक्तिगत कंपनी के माध्यम से अपनी इच्छानुसार शोध के मार्ग पर न चलते तो कभी सफल न हो पाते। उनका कहना था- ''एमबीए पास प्रबंधकों द्वारा संचालित कंपनी से तौ मैं कम से कम सौ बार निकाला गया होता। मैं तो व्यापार के क्षेत्र में धनार्जन के लिए गया ही नहीं था। मैं व्यापार के क्षेत्र में इसलिए गया था कि अपनी इच्छानुसार ऐसे रोचक कार्य कर सकूँ जो मैंने इसके पहले नहीं किए थे।'' कुछ नया करने की इसी आन्तरिक प्रेरणा और अदम्य लगन ने उन्हें विश्व के श्रेष्ठतम उद्यमियों के मध्य स्थान दिलाया तथा इन्हीं विशेषताओं के आधार पर वे स्वयं को विद्युत अभियांत्रिकी के क्षेत्र में एक सुयोग्य अनुसंधानकर्ता के रूप में स्थापित कर सके।

डॉ0 अमर गोपाल बोस को अपने कार्यों के लिए अनेक सम्मानों से अलंकृत किया गया। सन् 1972 में उन्हें ध्वनि विस्तारक उपकरणों की डिजाइन, टू-स्टेट एम्प्लीफायर-मॉडूलेटर तथा नॉन लीनियर सिस्टम के लिए सम्मानित करते हुए 'आई ई ई ई' की सदस्यता प्रदान की गई।

1985 में उन्हें 'ऑडियो इंजीनियरिंग सोसाइटी' की मानद सदस्यता से सम्मानित किया गया। पुनः 2010 में उन्हें ध्वनि उत्पादन के क्षेत्र में उपभोक्ता उपयोगी इलेक्ट्रॉनिक, उद्यमिता नेतृत्व तथा अभियांत्रिकी शिक्षण के क्षेत्र में असाधारण योगदान के लिए आई ई ई ई तथा आर एस ई द्वारा प्रदत्त 'वोल्फन जेम्स क्लार्क मैक्सवेल अवार्ड' भी दिया गया। सन् 2011 में उन्हें नवीनतम संकल्पनाओं और नवाचारों को प्रदर्शित करने वाली एम आई टी-150 की सूची में नवम् स्थान प्रदान किया गया। इनके पूर्व 2003 में उन्हें इकॉनॉमिक टाइम्स के 'ग्लोबल इंडियन' अवार्ड से भी अलंकृत किया गया था। ये वह सम्मान थे जिन्होंने डॉ0 बोस के व्यक्तित्व को समादृत करने के साथ-साथ ऐसी असाधारण क्षमता वाले व्यक्ति को सम्मानित करने के कारण स्वयं भी महत्ता पाई।

डॉ0 बोस ने अपनी भारतीय प्रथम पत्नी से संबंध विच्छेद करने के उपरान्त उर्सुला बोल्तहॉजर नामक एक विदेशी महिला से विवाह कर लिया था। उनकी दो संतानों में एक पुत्र वानु गोपाल बोस हैं और दूसरी पुत्री माया बोस हैं। उनके पुत्र वानु गोपाल वर्तमान में अपने द्वारा संस्थापित कंपनी 'वानु इन्कार्पोरेशन' के सी ई ओ हैं। यह कंपनी साफ्ट्वेयर आधारित रेडियो तकनीकी संबंधित उत्पादों के लिए विख्यात है।

तिरासी वर्ष की आयु में गत 2 जुलाई, 2013 को डॉ0 अमर गोपाल बोस का वेलैण्ड, मैसाचूसेट्स में निधन हो गया। भारतीय मूल के इस महान ध्वानिकी विशेषज्ञ की मृत्यु से भारत के सम्मान और विश्वसनीयता दोनों को धक्का लगा है क्योंकि भारतीयों की उद्यमिता योग्यता को विश्वस्तर पर पहचान दिलाने में डॉ0 बोस का बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। टक डार्टमाउथ के एक भारतीय प्रोफेसर श्री विजय गोविंदराजन के अनुसार- ''डॉ0 बोस सभी भारतीयों के लिए एक अनुकरणीय नायक की भूमिका में थे। वे सफलता की एक ऐसी अभूतपूर्व कहानी के अग्रणी निर्माता थे जिसने भारतीयों को विश्वसनीयता दिलाई। उन्होंने शोध और उसके व्यवहारिक रूप के सम्मिश्रण में सफलता पाई। आविष्कर्ता के रूप में वे अत्युत्कृष्ट थे। उनके कार्यों के प्रभाव को अनेक पीढ़ियों तक अनुभव किया जाएगा।'' डॉ0 बोस द्वारा विनिर्मित एक सॉफ्वेयर प्रोग्राम की सहायता से ध्वानिकी विशेषज्ञ किसी भवन के निर्माण के पूर्व ही किसी बड़े हाल की हर सीट से ध्वनि व्यवस्था का अनुरूपण कर सकने में समर्थ थे। आज डॉ0 बोस की कुशाग्रता के साक्ष्य लॉस ऐंजील्स के स्टेपिल्स सेन्टर, सिस्टीन चेपल तथा मक्का स्थित मस्जिद-अर-हरम जैसे केन्द्रों में ध्वनि उपकरणों के रूप में विद्यमान हैं। ध्वनि उपकरणों के अत्यधिक प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण विश्व बाजार में स्वयं को इतनी सुदृढ़ता से स्थापित करने वाले इस महान ध्वनि वैज्ञानिक के लिए इससे बड़ी श्रद्धांजलि क्या हो सकती है कि आज अपने आविष्कृत उपकरणों के रूप में वह ध्वनितरंगों की ही भाँति विश्व के कोने-कोने में व्याप्त हैं।

भारत माँ के महान सपूत - डॉ. कलाम

संजय गोस्वामी*

वे थे गुदरी के लाल
पढ़ने में थे बहुत विपुल
भारत माँ के लिए बनाया
बेजोड़ मिसाइल विविध विविध
कोमल हृदय, इरादे मजबूत
भारत माँ के महान सपूत।।
साल चौरासी होने थे पूरे
'रहने योग्य ग्रह' पर, दे रहे थे व्याख्यान,
एकाएक थम गयी साँस औ रुकी जुबान
आँखें रोयीं और बोलीं हर एक जुबान
क्या पैदा होगा फिर ऐसा इंसान?
अन्तिम क्षण तक कर्तव्य निभाया
विद्यार्थियों को विज्ञान पढ़ाया
बहुत प्यारी थी मधुर मुस्कान,
दुनिया भी हुई कुर्बान
पाया भारत रत्न, देश का सर्वोच्च सम्मान
डॉ0 कलाम साहब प्रणाम।।

सपनों का मतलब समझाया
जो न सोने दे, उसे सपना बतलाया
परमाणु परीक्षण में, निर्णायक भूमिका निभाया
'पृथ्वी' और 'अग्नि' मिसाइल से
भारत का मान बढ़ाया
अंतरिक्ष कार्यक्रमों और सैन्य मिसाइलों का
इनके प्रयासों से हुआ विकास
फिर भी डॉ0 कलाम को, नहीं छू सका कभी गुमान
डॉ0 कलाम को है प्रणाम।।
पहला था बच्चों से प्यार
शिक्षण में थी पैनी धार
बच्चे जैसी मासूमियत विचार
बड़े-छोटे सबको दी मान
बसी थी दिल में आत्मीयता, प्यार
राष्ट्रपति भवन भी धन्य हुआ ऐसे को पाकर
विनम्रता की थे वे खान
डॉ0 कलाम जी को प्रणाम।।

युवाओं के थे प्रेरणापुंज
नहीं किसी से था कोई रंज
नहीं कोई भी सोए भूखा
बस एक ये था दिल में सपना
तकनीक में भारत हो अपना ऊँचा
मेक इन इंडिया का स्वप्न हो पूरा
कोई न रहे भारत में भूखा
अंतरिक्ष, रक्षा, परमाणु और कृषि में
भारत देश हो सबसे ऊँचा
ऐसा देश भक्त महान
हम सब झुककर करें प्रणाम।
डॉ0 कलाम साहब प्रणाम।।

*यमुना जी/13, अणुशक्तिनगर, मुंबई - 400 094.

मन के बहुरुपिए

डॉ0 श्रीगोपाल काबरा*

डॉ0 वी.एस. रामचन्द्रन ने फेंटम लिम्ब्ज (फंतासी अंग) के कारण और निवारण पर मौलिक कार्य किया है। फेंटम लिम्ब। वर्षों पूर्व खोये हाथ पॉव का छायाभाष, उसकी अनुभूति, व्यक्ति की स्मृति में यथावत है, भूत सी विद्यमान है, निकाले नहीं निकलती। उसे दिख रहा है कि अंग नहीं है, लेकिन वह विवश है क्योंकि उसे अंग वास्तव में महसूस हो रहा है। प्रारम्भ में फंतासी अंग की अनुभूति सामान्य अंग की होती है, लेकिन समयोपरांत अंग से अपेक्षित संवेगों के अभाव में यह अनुभूति विकृत रूप ले लेती है; तब यह बीच में आने वाला अड़ंगा या लकवाग्रस्त या बेकाबू या असहनीय वेदना का स्रोत महसूस होता है। असहनीय वेदना उस अंग से जो है ही नहीं। लेकिन उसके लिए वेदना एक अनुभूत सच है, वह उसे सचमुच महसूस करता है, उससे व्यथित है। उपचार करवाता है; दवायें असर नहीं करती। इस सोच के आधार पर कि हाथ या पांव को जहाँ से काट कर हटाया गया था, हो सकता है वहाँ की कटी हुई नर्वस के सिरे से दर्द संवेग उठते हों, स्टम्प कर छोटा किया गया, लेकिन लाभ नहीं, वेदना यथावत। दर्द के संवेग ले जाने वाली नाड़ियों को काटने पर भी लाभ नहीं। अंग का छायाभूत, उससे होने वाला दर्द दिमाग में वैसा का वैसा।

हमारे मस्तिष्क में हर अंग की, विशेषकर हाथ और पाँव की, एक छवि अंकित होती है। इसी छवि के आधार पर उस अंग से आते संवेदों के अनुरूप मस्तिष्क की प्रतिक्रिया होती है। हाथ या पाँव के कटने या हटने के तुरंत बाद इस छवि में बदलाव होता है, लेकिन उस तत्कालीन बदलाव के बाद छवि या अंग का छायाचित्र मस्तिष्क में स्थाई हो जाता है, अगर विकृत हो गया है तो अपने विकृत रूप में। अंग की स्मृति आधारित अनुभूति इसी के अनुरूप होगी। ज्ञानेन्द्रियों से सतत् आती संवेदना जनित अनुभूति और अंग की स्मृति जनित अनुभूति में विरोधाभाष होता है। इन विरोधाभाषी अनुभूतियों से मानसिक द्वंद उत्पन्न होता है। द्वंद से उबरने और मानसिक संतुलन बनाये रखने के लिए व्यक्ति की प्रतिक्रिया बड़ी असंगत होती है जैसे लकवाग्रस्त व्यक्ति का यह कहना कि वह हाथ उसका नहीं है।

अंग फंतासी के अतिरिक्त भी अनेक अन्य विलक्षण केस का विस्तृत विवरण डॉ0 रामचन्द्रन ने अपनी पुस्तक 'फेंटम्स इन द ब्रेन' में दिया है। टेम्पोरल लोब एपिलेप्सी के केस। टेम्पोरल लोब, पेराइटल लोब में क्षति के केस।

मस्तिष्क की कार्यप्रणाली, कौन सा भाग क्या कार्य करता है, इसकी प्रारंभिक और मौलिक जानकारी न्यूरोलोजिस्ट (तंत्रिका विज्ञानी) को, एकाकी उन रोगियों के अध्ययन से मिली जिनमें मस्तिष्क का विशेष भाग क्षतिग्रस्त हो गया था। यथा 'एच एम' नाम से चिन्हित वह व्यक्ति जिसके सर में लोहे की छड़ घुसने से उसके दोनों ओर के फ्रंटल लोब क्षतिग्रस्त हो गये थे। इस व्यक्ति के व्यापक अध्ययन से ही फ्रंटल लोब की कार्यप्रणाली उजागर हुई। इसी प्रकार वह रोगी जिसके भयंकर मिरगी के दौरों का इलाज करने के लिए उसके दोनों टेम्पोरल लोब के हिप्पोकेम्पस निकाल दिये गये थे। उसी के अध्ययन से मेमोरी-स्मृति संकलन की प्रक्रिया उजागर हुई। हिप्पोकेम्पस की क्षति से तत्कालिक स्मृति संकलित ही नहीं होती थी। ध्यान हटा और उस समय घटित हुई सारी स्मृति लोप। इसी प्रकार वे रोगी जिनमें दोनों गोलार्ध को जोड़ने वाला कार्पसकेलोसम क्षतिग्रस्त हुआ। उससे उजागर हुआ कि दायें और बायें गोलार्ध के क्या विशिष्ट कार्य हैं और उनका आपस में सम्पर्क कट जाने पर क्या होता है। इन एकाकी केस से मस्तिष्क के विभिन्न भागों की कार्यक्षमता के बारे में जो मालूम हुआ वह पहले नहीं था। इन्हीं के आधार पर आगे अनुसंधान हुए।

फंतासी अंग

विश्वयुद्ध में घायल हुए अनेक सैनिकों के चिकित्सकों को हाथ या पाँव काटने पड़े थे। कुछ सैनिक घर लौटने पर कहते थे उनके हाथ पाँव अब भी हैं, वे उन्हें महसूस करते हैं। शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति जिसे साफ दिख रहा कि अंग नहीं है, फिर भी वह विश्वास के साथ कहता है कि उसके वह अंग हैं। यही नहीं, उस अदृश्य अंग से होने वाली असहनीय वेदना के लिए वे डाक्टर से उपचार मांगते। इस विकृत मानसिक आभास को फैन्टम लिम्ब की संज्ञा दी गई। कारण खोजे गए, बातये गये। पुख्ता कुछ नहीं इसलिए अनेक व्याख्यायें सामने आई। इन्हीं में से एक व्याख्या कि यह एक प्रकार का मानसिक विकार है, को प्रतिपादित करने के लिए एक किस्सा बड़ा प्रचलित था।

एक व्यक्ति का सर्जन को हाथ काटना पड़ा। व्यक्ति ठीक होकर घर चला गया। कुछ दिन बाद जब अस्पताल दिखाने आया तो कहने लगा उसे महसूस होता है उसका हाथ है। उसे बताया गया कि आपका हाथ तो गेंग्रीन होने के कारण काटा गया था। आपसे स्वीकृति लेकर ही काटा गया था। उन्हें स्वीकृति पत्र दिखाया गया। देखकर कहने लगे उन्हें मालूम है, याद है हाथ काटा गया था। लेकिन उन्हें अब भी लगता है उनका हाथ है, वे उसका होना महसूस करते हैं, उसे देख पाते हैं।

*15, विजय नगर, डी-ब्लॉक, मालवीय नगर, जयपुर-302 017.

उन्हें समझाया गया कि हो सकता है पुरानी स्मृति अभी भी बनी हुई है, समय के साथ ठीक हो जायेगा। लेकिन कुछ ठीक नहीं हुआ। कुछ समय बाद जब दिखाने आये तो बताया कि अब तो उन्हें अपने अदृश्य हाथ में भयंकर पीड़ा होने लगी है, टीस चलती है। दर्दनाशक दवाओं का असर भी अब नहीं होता। उन्होंने डाक्टर से असरकारक दर्दनाशक दवा लिखवाई। लेकिन जब उससे भी आराम नहीं मिला तो फिर डाक्टर के पास आये। उन्हें मनोचिकित्सक के पास भेजा गया। मनोचिकित्सक ने पाया कि वे मानसिक रूप से स्वस्थ हैं।

बाद में जब उन्होंने पूछा कि मेरे कटे हाथ का आपने क्या किया तो उन्हें सर्जन के पास भेज दिया गया। सर्जन ने बताया कि सर्जरी द्वारा हटाया गया अंग या टिश्यू पैथोलॉजी विभाग में परीक्षण के लिए भेजा जाता है। जिस रिक्विजीसन के साथ हाथ भेजा गया था उसकी प्रति दे दी गयी। प्रति लेकर वे पैथोलॉजी विभाग पहुँचे। अपने रिकार्ड में चैक कर पैथोलॉजी विभाग के डाक्टर ने बताया कि वह कटा हाथ आया था और उसके टुकड़े लेकर बायोप्सी परीक्षण किया गया था। हिस्टोपेथोलाजी रिपोर्ट की प्रति उन्हें दे दी। जब पूछा कि फिर उस हाथ का क्या किया, अब वह कहाँ है, तो रिकार्ड देखकर बताया कि कुछ दिन पहले ही उसे जमीन में गाड़ कर डिस्पोज ऑफ किया गया है। वे देखना चाहते थे। गड्ढ़ा खुदवाकर निकाला गया। उसमें लगे टैग से अपने हाथ को पहचाना। मेगोट्स-लटे-कुलबुला रही थी। देखकर बोले ''अब समझा मेरे हाथ में टीसें क्यों चलती हैं, इन कुलबुलाती लटों के काटने से ही ऐसी व्यथा हो रही है।'' उन्होंने उस हाथ को इन्सिनरेटर में जलवा दिया। दर्द ठीक हो गया। आभास गायब हो गया। बड़ा रोचक किस्सा है। कितना सच्च है आज कहना मुश्किल है। लेकिन तब इसे बड़े विश्वास से सुनाया जाता था।

मिरगी से कवि

इनसे मिलिए। ये स्वयं न्यूरोलोजिस्ट हैं। न्यूयार्क में प्रेक्टिस। 60 साल की उम्र में मिरगी के दौरे आने लगे। दौरे गंभीर और दिखने में भयभीत करने वाले लेकिन उनको सुखद आश्चर्य कि वे जीवन में पहली बार कविता की ओर आकर्षित हुए। आकर्षण भी ऐसा कि उनका सोच-विचार सब गीत और कवितामय हो गया। हर वक्त छन्दबंद्ध कविता में सोचना और लिखना। सोचना, भावविह्वल होना और लिखते रहना। अनेक किताबें लिख डाली, छपी और सराही गई। स्वयं को आत्म संतोष, अपार आनन्द। जब दौरा पड़ता दुखी होते। चिकित्सकीय परीक्षण करवाये। टेम्पोरल लोब में मिरगी के उद्वेलन का केन्द्र था। यहीं से उठती तीव्र तरंगें, भाव मस्तिष्क और माँसपेशी संचालन केन्द्रों पर पहुँचती तो ऐठन और झटकों से सारा शरीर जकड़ जाता और कुछ समय के लिए बेहोशी आ जाती। लेकिन दौरों के बीच लम्बा काल कविता मय, आनन्द मय। जीवन के संध्याकाल में उन्हें तो नया आनन्दकारी जीवन मिल गया।

मिरगी से गंध उद्वेलन

टेम्पोरल लोब एपिलेप्सी के विचित्र और विलक्षण लक्षण होते हैं। इन साहब को जब दौरा पड़ता है तो इनको तीव्र गंध महसूस होती है। ''सड़े हुए जानवर की बदबू आ रही है। सर भन्ना रहा है। उल्टी आ रही है।'' आप पास खड़े हैं कही कोई बदबू नहीं है। हटात् उन्हें कहाँ से यह बदबू आने लगी। बदबू नहीं है लेकिन उनको महसूस हो रही है क्योंकि मिरगी का उद्वेलन केन्द्र घ्राण केन्द्र के पास है जिसके उत्तेजित होने से बदबू की स्मृति जाग उठती है और उन्हें सचमुच महसूस होती है।

मस्तिष्क में ट्रांजिस्टर

इन साहब को जब दौरा पड़ता है तो उन्हें आवाजें सुनाई देती हैं। कैसी आवाज आ रही है, वे बताते हैं। आपको वैसी कोई आवाज सुनाई नहीं देती, वैसी आवाज है ही नहीं। लेकिन उन्हें सुनाई दे रही है, विचलित कर रही है। कारण उनके मिरगी का उद्वेन केन्द्र श्रवण केन्द्र के पास है। श्रवण केन्द्र के उद्वेलित होने पर पुरानी स्मृति स्वतः ही जाग्रत हो जाती है, उसे वही आभास, महसूस होता है जो बाहर से आवाज सुन कर हुआ था। यह भ्रम नहीं उसे सचमुच सुनाई देता है।

सिनेमा स्कोप

और इनको जब दौरा पड़ता है तो दृश्य दिखाई पड़ते हैं। कभी देखा हुआ दृश्य मानस पटल पर साक्षात हो उठता है। गाँव में खड़े हैं और बता रहे है कि कोलकता की ट्राम से उनका दोस्त उतर रहा है, जिसके हाथ में उनके लिए फूलों का गुलदस्ता है। कारण इनके टेम्पोरल लोब का उद्वेलन केन्द्र दृश्य केन्द्र के पास है। उद्वेलित होने पर पुराने दृश्यों की स्मृति पुनः साकार हो उठती है।

आध्यात्म जागरण

टेम्पोरल लोब में स्थित हिप्पोकेम्पस और एमग्डेलॉइड के उद्वेलित होने पर तो और भी विलक्षण लक्षण उत्पन्न होते हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक, वैचारिक और भावनात्मक उद्वेलन, लेखन। व्यक्तित्व ही बदल जाता है। साधारण व्यक्ति संत, महापुरुष, लेखक और कवि के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। आडम्बर या दिखावा नहीं, सही अर्थों में, अपनी पूरी विकसित क्षमता के साथ। कारण हिप्पोकेम्पस और एमेग्डेलाइड, भाव मस्तिष्क लिम्बिक सिस्टम और वैचारिक मस्तिष्क, प्रिफ्रंटल कॉर्टेक्स से जुड़े होते हैं फ्रंटल लोब आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र होता है।

ये साहब डॉक्टर से मिलने आये हैं। सलीके से पहने हुए कपड़े, गले में सोने की चैन से लटका काफी बड़ा हीरे जड़ा क्रॉस, चमकती आँखें, आत्मविश्वासी अंदाज, सामने कुर्सी में बैठे डाक्टर को बताते हैं कि दिव्य दर्शन के बाद कैसे उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान हुआ और संसार का गूढ़ रहस्य समझ में आया। अब उन्हें सर्वत्र ईश्वर नजर आते हैं, उनकी कृपा, उनका आशीर्वाद प्राप्त है। जग आलोकित है, उनकी आत्मा की लौ दिव्य लौ में समा गई है, प्रकाश पुंज का हिस्सा बन गई है। दिव्य वाणी सतत् सुनाई देती है। डाक्टर उनकी केस फाइल देखते हैं। उन्हें किशोर अवस्था से

मीडियल टेम्पोरल लोब एपीलेप्सी के दौरे पड़ते हैं। आध्यात्मिक व धार्मिक उद्वेलन भी तभी से शुरू हुआ है। तो क्या उनका आध्यात्मिक ज्ञान, उनका धार्मिक उत्थान मिरगी के दौरे हैं? या उनके उत्कृष्ट अध्यात्मिक चिंतन के वशीभूत कुछ लक्षण डाक्टरों को मिरगी के दौरे का भ्रम देते हैं? या मिरगी की शक्तिशाली तरंगों से आध्यात्मिक केन्द्र अतिशः जाग्रत हो उठते हैं।

बहरुपिये माँ-बाप

इनसे मिलिये। ये तो और भी अजीब हैं। इनको कार एक्सीडेन्ट में गंभीर दिमागी चोट लगी थी। ठीक होने पर कहने लगे कि उनके माता-पिता बदल गये हैं। जो हैं, वे देखने में तो हूबहू उसके माता-पिता जैसे ही हैं लेकिन वे उसके असली माँ-बाप नहीं, कोई उनके डुप्लीकेट हैं। मस्तिष्क में चेहरों को पहचानने और उसके साथ जुड़ी भावनात्मक व अन्य स्मृतियों को पुनः स्मरण करने का एक विशिष्ट केन्द्र होता है। इस केन्द्र के क्षतिग्रस्त होने पर यह संवेदना गड़बड़ा जाती है।

स्प्लिट ब्रेन - विभाजित मस्तिष्क - एलियन हैन्ड सिन्ड्रोम

इस महिला को उसके चिकित्सकों ने वरिष्ट न्यूरोलोजिस्ट के पास भेजा है। उनको इनका रोग पागलपन लगता है। यह कैसे हो सकता है कि आपका अपना बायाँ हाथ आपका ही गला घोटने का प्रयास करे और आप चाहकर भी उसे रोक न पायें। जबकि सामान्यतया आप उस हाथ से अपनी इच्छानुरूप सभी काम करते हैं। न्यूरोलोजिस्ट ने महिला का पूर्ण परीक्षण किया। सर्वथा नार्मल। किसी मनोरोग के लक्षण नहीं। दायाँ गोलार्द्ध जो बायें हाथ की माँसपेशियों का ऐच्छिक नियंत्रण करता है, वह कर रहा है। गला दबाने के संवेग दाँये गोलार्द्ध से ही गये हैं। यह गलत हानिकारक संदेश है, दायाँ गोलार्द्ध यह क्यों नहीं समझ पा रहा? क्योंकि यह काम बॉयें गोलार्द्ध का है। बायाँ गोलार्द्ध तार्किक मस्तिष्क (रेशनल ब्रेन) होता है। गलत सही का निर्णय यही गोलार्द्ध करता है, यही कार्पस केलोसम के माध्यम से दॉयें गोलार्द्ध को वर्जनात्मक संवेग भेजता है। साफ था कि बायाँ गोलार्द्ध ऐसा नहीं कर पा रहा है, क्योंकि कार्पस केलोसम सम्पर्क पथ बाधित है, क्षतिग्रस्त हो गया है। महिला में यही था। ऐसा होता है मिडलाइन में ट्यूमर होने पर या वहाँ कि धमनियों में रुकावट होने पर। महिला की कुछ समयोपरांत मृत्यु पर जब पोस्टमार्टम किया गया तो धमनियों में रुकावट से सामने का कार्पस केलोसम क्षतिग्रस्त मिला। मस्तिष्क का बायाँ गोलार्द्ध तार्किक ब्रेन, सही और गलत को परिभाषित कर गलत काम को करने से रोकने के निषेधात्मक संवेग कार्पस केलोसम के माध्यम से दॉयें गोलार्द्ध को नहीं पहुँचा पा रहा था। कार्पस केलोसम के क्षतिग्रस्त होने पर ऐसा ही होता है।

अपना हाथ जगन्नाथ

ये साहब नाम खिलाड़ी हैं। एक मोटर साइकिल एक्सीडेन्ट में अपना एक हाथ गॅवा बैठे लेकिन उस हाथ का आभास अभी भी उन्हें है। हाथ नहीं है यह साफ है लेकिन उन्हें उसका होना महसूस होता है यह भी सच है। वे बताते हैं कि उनके वह हाथ अब भी हैं और वे उससे मन चाहा काम करते हैं, करते हुए महसूस करते हैं। अगर सामने रखे कप को उन्होंने अपने अदृश्य हाथ से पकड़ रखा है और आप जबरन उसे खींच लेते हैं तो वे दर्द से कराह उठते हैं, उनके चेहरे के भाव में सचमुच में दर्द दिखता है। मस्तिष्क में हर अंग की एक व्यापक छवि-इमेज-स्मृति में संकलित होती है। इस स्मृति केन्द्र के अन्यत्र से आये संवेगों से उद्वेलित होने पर अंग की छवि चेतना में साकार हो उठती है।

ये स्कूल टीचर हैं। पक्षाघात से उनके बायें हाथ पाँव लकवाग्रस्त हो चुके हैं। लेकिन कहती हैं, मानती हैं और महसूस करती हैं कि उनका हाथ ठीक है, काम करता है। अजीब बात है कि जब उनसे पूछा गया कि फिर यह जो आपके पास हाथ पड़ा है वह किसका है तो जवाब मिला कि वह तो उसके भाई का है। बाकी सब तरह से बात-चीत, सोच-विचार, व्यवहार, सब में नार्मल, समझ में ही नहीं आता कि वे ऐसी बेतुकी बात कैसे करती हैं।

इनमें से कोई भी पागल नहीं है। उनको मनोचिकित्सक के पास भेजना व्यर्थ होता है। केस उनकी समझ के बाहर होते हैं। डॉ0 रामचन्द्रन ने ऐसे केस चुनौती के रूप में स्वीकार किये। इन असाधारण केस के विस्तृत अध्यन व अनुसंधान से मस्तिष्क के विभिन्न भागों के कार्य करने के गूढ़ रहस्य अनावृत हुए है। यह सामने आया कि ये सभी असाधारण केस मस्तिष्क के किसी विशिष्ट भाग के क्षतिग्रस्त होने या विकृत होने के कारण होते हैं। डॉ0 रामचन्द्रन ने इन रोगियों का विस्तृत अध्ययन कर बताया कि ये असाधारण अभिव्यक्तियाँ क्यों और कैसे होती हैं, इनका आधार क्या है।

गणित में फेल

बॉई ओर के एंगुलर जाइरस के क्षतिग्रस्त होने पर व्यक्ति साधारण अंक गणित नहीं कर पाता। वायुसेना के पायलट को कुछ समय पूर्व बॉयें गोलार्द्ध का पक्षाघात हुआ था। उससे उबरकर ठीक हो गए। बात करने पर उन्होंने अपने घर, अपने बच्चों के नाम, उनका काम सब सही बताया। किस तरह के हवाई जहाज वे उड़ाते थे, उनकी तकनीकी विशेषता आदि सब सही बताई। पेचीदा सवालों के भी सही जवाब दिये। लेकिन जब उनसे सौ में सात घटाने को कहा तो वे नहीं कर पाये। सतरह में से तीन भी नहीं घटा पाये। याद्दास्त ठीक, भाषा पर पूरा नियंत्रण, तार्किक सोच भी ठीक, बस अंक गणना में अक्षम।

ISSN 2231 - 2455

प्रकृति, अद्भुत है तेरा संसार

जगदीश प्रसाद तिवारी*

प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।
निराकार होकर भी तूने इस सृष्टि को रूप दिया है साकार।
वात-वाष्पीय योगों से किया
तूने अमृत-जल का निर्माण,
तेरे प्रति आभारी हैं जीव-
जगत और वनस्पतियों के प्राण,
समर्पण में झुका, नमनकर मैं भी मान रहा हूँ तेरा आभार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
कोशिकाओं को बनाने में तूने
किया है कितना अथक जतन,
तेरे प्रबल प्रयास से प्रकट
हुआ है यहाँ अनमोल जीवन,
जल, थल, नभ में फैला हुआ है तेरा सुकृतित्व आकार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
पुष्प - पल्लव और पेड़ों को तूने
प्रदत्त किये हैं विविध सुंदर रंग,
नित दैहिक गति, मति संचालन हेतु
जीवों को दिये हैं तूने सूक्ष्म अंग,
तेरी गूढ़-गहन अभियांत्रिकी का समझ आ रहा है अब सार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
अरबों-खरबों वर्ष पूर्व तेरे सामने
कैसा रहा होगा वह स्वर्णिम क्षण,
अनायास द्रव व भार से पूरित कर
कर दिये थे तूने सभी तरह के कण,
मानव अब पहुँचना चाह रहा है तेरी उस अदृश्य कला के द्वार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
उड़कर तेरे ममत्वीय अंक में ये
मानव होना चाहता है अमर,
मगर क्या करें, तेरे विपरीत होते ही
कट जाते हैं उस बेचारे के पर,
तुझे ही पता है कि कैसे होता है यहाँ पर सृजन और संहार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
तूने ही बनाये-चमकाये ग्रह और तारे
तूने ही सिरजा है सर्वत्र पीत-प्रकाश,
तेरे ही कारण ऊँचा-नीचा और
नीला-पीला दिखता है ये आकाश,
तेरी ही कृपा से अनंत दूर तक फैला, फलीभूत हुआ है अंधकार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
तू न होती तो पैदा नहीं होता
चुंबकीय, विद्युतीय, गुरुत्वाकर्षणीय बल,
आधारहीन होकर यह पृथ्वी ग्रह
भटककर जाने कहाँ जाता निकल,
किसी भी ग्रह-नक्षत्र से टकराकर हो जाता तार-तार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
अरे, कहाँ है, कैसा है डार्क मैटर
और कहाँ पर छिपा है विलोम पदार्थ,
हम तो नहीं बता सकते, लेकिन
तू जानती है पूरा का पूरा यथार्थ,
अगर यह रहस्य उजागर करे तो होगा तेरा बड़ा उपकार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
मानव ने खोजे उससे भी अधिक
तत्व आज भी तेरे गर्भ में हैं समाये,
वह गूढ़ पहेली तेरे बिना शायद
ही भविष्य में कोई बुझा पाये,
हम तो अभिभूत हैं देख-सुनकर कि तेरी महिमा है अपरंपार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।
जिस दिन समझ लेंगे हम कभी
तेरी ये चपल, चमत्कारिक माया,
मृत्यु होगी हमारी इस मुट्ठी में
और अक्षय होगी क्षण-भंगुर काया,
जीवन और मरण की परिभाषा को पुनः मिलेगा नया विस्तार।
प्रकृति, तू तो है सचमुच चित्र-विचित्र, अद्भुत है तेरा संसार।।

*विज्ञान काव्य-कथा लेखक, स्वतंत्र पत्रकार, 2425, गाड़ी अड्डा, हाट मैदान, गोकुलगंज, महू-453 441, इंदौर.

भारत रत्न डॉ0 सीएनआर राव का विशेष व्याख्यान

विज्ञान में प्रगति की पहली शर्त है समय प्रबन्धन

डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी*

प्रधानमंत्री की वैज्ञानिक सलाहकार परिषद के चेयरमैन रहे तथा रसायन शास्त्र और मैटेरियल साइंस के सुप्रसिद्ध विद्वान भारत रत्न डॉ0 सीएनआर राव ने विज्ञान में प्रगति की पहली शर्त समय प्रबंधन बतलाया है। उन्होंने कहा कि लक्ष्य अभी हमसे काफी दूर है और समय काफी कम, इसलिए तेज गति से कार्य करना होगा। सरकार के अलावा मीडिया से भी इस दिशा में सहयोग अत्यंत आवश्यक है।

व्याख्यान प्रस्तुत करते प्रो. सीएनआर राव

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शताब्दी वर्ष समारोह के अन्तर्गत 28 दिसम्बर, 2015 को विज्ञान संकाय के व्याख्यान संकुल में आयोजित 'डूइंग साइंस इन इंडिया' विषयक व्याख्यान में डॉ0 राव ने भारत में विज्ञान की मौजूदा स्थिति पर गहरी चिंता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि आजादी के बाद जब देश स्थायित्व के लिए संघर्ष कर रहा था, तब चीन विज्ञान के क्षेत्र में तेजी से बढ़ रहा था। यही नहीं दक्षिण कोरिया ने भी शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में बजट बढ़ाकर हमारे मुकाबले काफी तरक्की कर ली।

प्रो. राव को स्मृति चिन्ह भेंट करते कुलपति प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी, साथ में हैं कार्यकारिणी के सदस्य प्रो. धनंजय पाण्डेय

उन्होंने कहा कि भारत में विज्ञान के बारे में पहली बार सन् 1985 में सोचना शुरू किया गया। तब तक काफी देर हो चुकी थी। अब हमारे पास दुनिया के मुकाबले में आने के लिए महज 10 से 15 साल का समय बचा है। इतने समय में ही कुछ कर सकें तो बेहतर होगा।

प्रो0 राव ने कहा कि हमारे 60 फीसदी युवा गाँवों में रहते हैं। मेरा अनुभव कहता है कि उनमें विज्ञान के प्रति काफी रुझान है। सरकारों को चाहिए कि गाँवों के युवाओं को विज्ञान पढ़ाने का माहौल बनाए। पूरी उम्मीद है कि यहाँ से निकलने वाले बच्चे देश के लिए कुछ कर सकेंगे। इसके लिए उन्होंने महान वैज्ञानिक माइकल फैराडे का उदाहरण देते हुए बताया कि फैराडे के अभिभावक उन्हें कभी भी पढ़ाने की स्थिति में नहीं रहे। जब वह मात्र नौ साल के थे, तब पिता का देहांत हो गया। आज फैराडे के मुकाबले का कोई विज्ञानी नहीं है।

प्रो0 राव ने कहा कि देश में शिक्षकों का सम्मान कम हुआ है। दूसरी बात यह है कि उन्हें शिक्षक बनने में समय भी काफी लगता है। इसके विपरीत आईएएस बनने के लिए एक परीक्षा पास करनी होती है। यह काफी कम उम्र में ही हो जाता है। शिक्षक के पास ज्यादा से ज्यादा 25 वर्ष का समय बचता है काम करने के लिए। इसके बाद उसे काम को आगे बढ़ाने के लिए दूसरों पर निर्भर होना पड़ता है।

श्रीमती राव को स्मृति चिन्ह भेंट करते हुए कुलपति जी

व्याख्यान के दौरान भारत रत्न प्रो0 राव ने वाराणसी को अपनी साधना स्थल बनाने वाले भारत रत्न उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ की चर्चा की। उन्होंने कहा कि समर्पण का भाव तो खाँ साहब से सीखना चाहिए। एक बार मैंने उनसे पूछा कि आप शहनाई क्यों बजाते हैं। उनका जवाब था कि यह मैं ईश्वर को सुनाने के लिए करता हूँ। जब यह पूछा कि ईश्वर से आप इसके बदले क्या माँगते हैं, बिस्मिल्लाह का जवाब था 'बस उम्र भर यह संगीत मेरे दिलोदिमाग में बसी रहे।'

आरंभ में कुलपति प्रो0 त्रिपाठी ने डॉ0 राव का स्वागत किया। बीएचयू कार्यकारिणी के सदस्य प्रो0 धनंजय पांडेय ने प्रो0 राव का

*हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

परिचय दिया। संचालन भौतिकी विभाग के अध्यक्ष, प्रो0 आर.एस. तिवारी ने तथा आभार विज्ञान संस्थान के निदेशक प्रो0 ए.के. श्रीवास्तव ने किया। प्रो0 राव के व्याख्यान में प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी, डॉ. केपी उपाध्याय, प्रो0 कुमार पंकज, प्रो0 आर.आर. झा, प्रो0 मल्लिकार्जुन जोशी, प्रो0 पी.सी. उपाध्याय, डॉ0 विश्वनाथ पांडेय, प्रो0 प्रियंकर उपाध्याय, प्रो0 डीपी सिंह, प्रो0 कमलेश दत्त त्रिपाठी, प्रो0 वी.के. शुक्ला, प्रो0 आनन्द कुमार, प्रो0 के.के. गुप्ता, अभय ठाकुर, प्रो0 हीरालाल प्रजापति सहित शिक्षा जगत के अनेक सम्भ्रान्त लोग उपस्थित रहे। व्याख्यान कक्ष खचाखच भर गया था और लोगों को बाहर तक खड़े होकर व्याख्यान को सुनना पड़ा।

श्रीमती इंदुमती राव को अनुशासन पसन्द है

डॉ. सीएनआर राव की पत्नी श्रीमती इंदुमती राव अपने पति की बुलंदियों पर गर्व करती है। उनका लगभग साढ़े पाँच दशक कामयाबियों के साथ ही दांपत्य तालमेल का अनूठा उदाहरण है। सोमवार को एक राष्ट्रीय समाचार-पत्र के साथ हुए अनौपचारिक मुलाकात में उन्होंने अपने निजी जीवन के बारे में कहा कि हमारी शादी के 55 साल कैसे बीत गये, पता ही नहीं चला। हमारे बीच कोई समस्या या परेशानी कभी नहीं आयी। हमने एक-दूसरे के काम को समझा और सहयोग किया। बतलाया कि समय का अनुशासन हमारे घर में विज्ञान की तरह ही चलता है। हर काम का जो समय तय है, वह कभी बदलता नहीं। इसी कारण डॉ. राव घर से बाहर रहते हुए कभी यह चिंता नहीं करते कि घर कैसे चलेगा। मेरी कोशिश होती है कि डॉ. राव को घर के बारे में सोचने की जरूरत ही न पड़े। वे मेरे आदर्श हैं। मैं बनारस पहले भी कई बार आ चुकी हूँ, इस शहर में मुझे बड़ी शांति मिलती है। इसीलिए कोशिश रहती है कि साल में कम से कम एक बार जरूर यहाँ आऊँ।

श्रीमती इंदुमती राव

आईआईटी बीएचयू में बनी पहली सोलर कार दौड़ने को तैयार

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मैकेनिकल इंजीनियरिंग विभाग ने सौर ऊर्जा से चलने वाली कार बनायी है। यह सोलर कार ईंधन तो बचाएगी ही और इसमें वातानुकूलन यंत्र भी चलाया जा सकेगा। हालाँकि एसी को कम समय के लिए ही चलाया जा सकेगा।

उम्मीद है कि यह कार जल्द ही बाजार में उपलब्ध हो जायेगी। सोलर कार बनाने वाले दल के प्रमुख प्रो0 एस.के. शुक्ला व प्रोजेक्ट मैनेजर डॉ0 जे.वी. तिर्की के अनुसार अभी कार की इलेक्ट्रिक प्रणाली को सौर ऊर्जा पैनल से जोड़ा गया है। कार की छत पर लगाया गया सौर ऊर्जा पैनल इसकी बैटरियों को ऊर्जा देगा। टाटा मोटर्स के सहयोग से संचालित इस परियोजना हेतु कंपनी द्वारा प्रदत्त इंडिका कार पर ही इसका परीक्षण हुआ है। प्रो0 शुक्ला के अनुसार सोलर पैनल छत पर लगे होने के कारण कार के अंदर गर्मी नहीं होगी। एक बार एसी चलाकर थोड़ी देर में इसे बंद कर दें तो भी ठंढ़क बनी रहेगी।

इस कार को चलाने के लिए फिलहाल सौर ऊर्जा से करीब 180 वाट ऊर्जा ही मिल पा रही है। ऐसे में शेष ऊर्जा के लिए डीजल और बायो-डीजल के मिश्रण का इस्तेमाल किया जायेगा। बाद में सुधार करके उच्च क्षमता वाले पैनलों से इसे पूरी तरह सौर ऊर्जा से चलाया जाएगा। अच्छी बात यह है कि इसकी गति सामान्य कारों जैसी ही रहेगी। जबकि इससे पहले के कई प्रयोगों में कारों की गति बहुत ही कम रही है।

उल्लेखनीय है कि पिछले साल 63 वर्षीय सैयद सज्जन अहमद ने खुद की बनाई सौर ऊर्जा कार से बेंगलुरु से दिल्ली तक की 3000 किलोमीटर की यात्रा तय की थी। हालाँकि उन्हें यह सफर पूरा करने में एक महीने का समय लगा था। उन्होंने अपनी यात्रा एक नवंबर, 2015 को शुरू करके 1 दिसंबर, 2015 को दिल्ली पहुँचे थे।

पुस्तक समीक्षा

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती एक बहुआयामी व्यक्तित्व

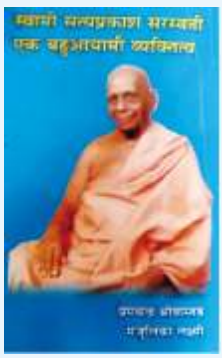

रसायन विज्ञान के आचार्य डॉ0 सत्यप्रकाश जो बाद में स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के रूप में प्रसिद्ध हुए, के बहुआयामी जीवन पर विद्वान लेखकों ने पुस्तक रचना कर एक अतुलनीय कार्य किया है। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती एक प्रकाण्ड वैज्ञानिक, सन्यस्थ परिव्राजक, आर्यसमाज के सन्मूल्यों के प्रचारक, वेदों के अद्भुत टीकाकार, विपुल साहित्य के रचनाकार, मातृभाषा हिन्दी के लिए समर्पित एक असाधारण मानव थे। लोकप्रिय विज्ञान लेखकद्वय श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव एवं सुश्री मंजुलिका लक्ष्मी द्वारा स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी के बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्व का काफी विस्तार से वर्णन किया है। बाल्यावस्था : पिता की छाया में, शिक्षा-दीक्षा, विश्वविद्यालय में शिक्षक के रूप में, गृहस्थ जीवन में, स्वामी जी का विस्तृत लेखकीय कृतित्व, स्वामी जी और आर्यसमाज, स्वामी जी और उनके राजनैतिक विचार, स्वामी जी और विज्ञान परिषद, स्वामी जी के जीवन के बहुरंगी पक्ष और वैज्ञानिक परिव्राजक से एक साक्षात्कार जैसे दस अध्यायों में लेखकद्वय ने बड़े ही विद्वतापूर्ण एवं रोचक तरीके से आचार्य जी के बारे में वर्णन किया। पुस्तक में स्रोत सामग्रियाँ एवं स्वामी जी के प्रकाशित ग्रंथों और निबन्धों की सूची पुस्तक के अन्त में दी गयी है। इनके साथ ही एक अलग भाग चित्रावली नाम से स्वामी जी और उनसे संबंधित देश-विदेश की दुर्लभ छायाचित्र प्रस्तुत किये गये हैं। उम्मीद है कि प्रस्तुत पुस्तक के अध्ययन द्वारा सामान्यजन को ज्ञानार्जन होने के साथ-साथ वास्तविक जीवन के संबंध में उत्तम प्रेरणा भी प्राप्त होगी। लेखकों द्वारा इस पुस्तक को विज्ञान परिषद प्रयाग के प्रधानमंत्री प्रो0 शिवगोपाल मिश्र को समर्पित कर अपने त्याग का परिचय दिया है। लेखक और प्रकाशक इस उत्कृष्ट एवं साफ-सुथरे प्रकाशन हेतु बधाई के पात्र हैं।

पुस्तक नाम : स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती एक बहुआयामी व्यक्तित्व
लेखक : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव एवं मंजुलिका लक्ष्मी
प्रकाशक :
विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211 002.
पृष्ठों की संख्या : रंगीन आवरण सहित कुल 309 पृष्ठ
प्रकाशन वर्ष : 2016.
मूल्य : रु0 300.00 (रुपये तीन सौ मात्र)

खानपान और स्वास्थ्य

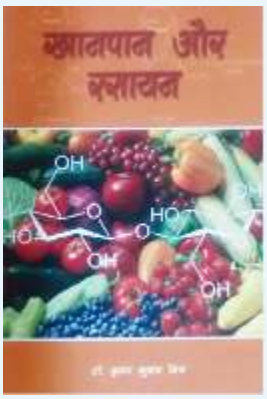

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र (टीआईएफआर), मुम्बई के आचार्य व लोकप्रिय विज्ञान लेखक प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र द्वारा लिखी गयी यह पुस्तक जन-सामान्य के लिए काफी उपयोगी है। पुस्तक के 11 अध्यायों में जल से लेकर मसालों तक हर प्रकार के प्रचलित निरामिष खाद्य पदार्थों की काफी विस्तार से चर्चा की गई है। पुस्तक में विषय पर परिचय के साथ ही अनाज, दालें, वसा और खाद्य तेल, फल और सब्जियाँ, दूध और दुग्धोत्पाद, मसाले, लोकप्रिय बहुपयोगी खाद्य आलू, जल, रसोई के रसायन, स्वाद और सुरुचिता का विज्ञान को एक-एक अध्याय में विस्तृत जानकारियाँ रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। खाद्य सामग्रियों के स्वास्थ्यपरक और रोग निवारक योगदानों को विशेष रूप से सामने लाया गया है। खाद्य पदार्थों के कृष्यन और रख-रखाव से संबंधित जानकारियों का भी उपयुक्त समावेश किया गया है। पदार्थों के ऐतिहासिक पक्ष और शास्त्रीय उल्लेख भी हैं। आम आदमी को अपने खान-पान की उपयोगिता, उसके पीछे के रसायन की जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक का निश्चय ही पाठकगण को लाभ मिलेगा।

पुस्तक नाम : खानपान और स्वास्थ्य
लेखक : डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र
प्रकाशक : विज्ञान प्रसार, ए-50 इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर 62, फेस-II, नोएडा-201 309.
पृष्ठों की संख्या : रंगीन आवरण सहित कुल 164 पृष्ठ, **प्रकाशन वर्ष :** 2014.
मूल्य : रु0 150.00 (रुपये एक सौ पचास मात्र)

प्राचीन भारत, अध्यात्म और विज्ञान

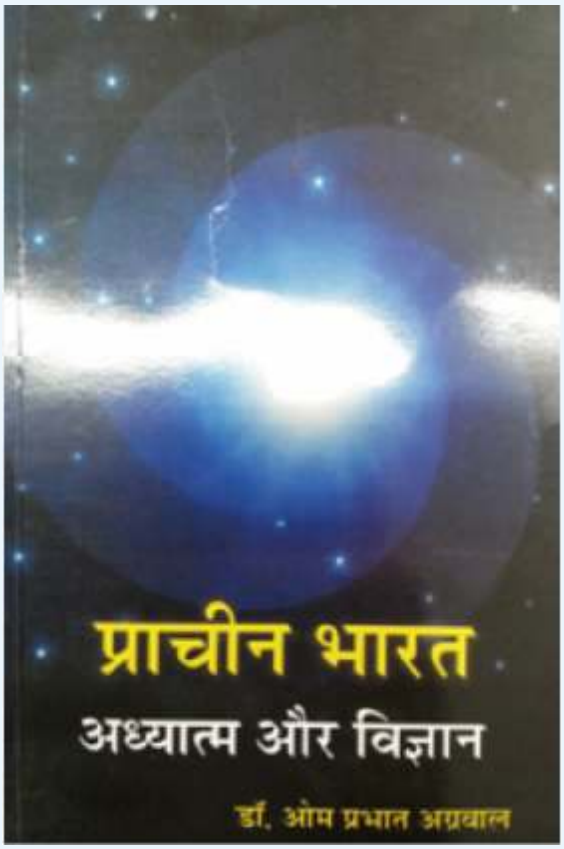

लोकप्रिय विज्ञान लेखक डॉ0 ओम प्रभात अग्रवाल के दस पूर्व प्रकाशित लेखों का संकलन है यह पुस्तक। सभी लेख भारतीय संस्कृति एवं परम्परा की एक सुन्दर झलक प्रस्तुत करते हैं। विज्ञान का दर्शन, विज्ञान बनाम धर्म, शिव तांडव में विज्ञान तथा हिन्दुत्व में विज्ञान जैसे लेख प्रेरणाप्रद हैं। ''शिव तांडव में विज्ञान'' तथा ''हिन्दुत्व में विज्ञान'' में हिन्दुत्व के सिद्धांतों, प्रतीकों और कर्मकांड एवं आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों के मध्य समानता को विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ''प्रभामंडल का वैज्ञानिक सत्यापन'' भी काफी रुचिकर है। प्राचीन भारत में रसायन की परम्परा शीर्षक का लेख प्राचीन भारत के वैज्ञानिक ज्ञान की श्रेष्ठता को दर्शाता है। लेखों की भाषा विद्वत्तापूर्ण, बोधगम्य और विषय के अनुरूप है।

पुस्तक नाम : प्राचीन भारत, अध्यात्म और विज्ञान
लेखक : डॉ0 ओम प्रभात अग्रवाल
प्रकाशक : सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज,
झण्डेवाला, नई दिल्ली-110 055.
पृष्ठों की संख्या : रंगीन आवरण सहित कुल 88 पृष्ठ
प्रकाशन वर्ष : 2013.
मूल्य : रु0 50.00 (रुपये पचास मात्र)

कहार : टिकाऊ विकास के ज्ञान का वाहक (जनसामान्य के लिए बहुभाषाई पत्रिका)

कहार (ISSN : 2394-3912) एक वैज्ञानिक पत्रिका है जिसका प्रकाशन लखनऊ से हो रहा है। अब तक इसके पाँच अंक प्रकाशित किये जा चुके हैं। इसका प्रकाशन प्रो0 एच.एस. श्रीवास्तव फाउंडेशन फॉर साइंस एण्ड सोसाइटी, लखनऊ; पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति, लखनऊ; द सोसाइटी फॉर साइंस आफ क्लाइमेट चेंज एण्ड सस्टेनेबल एनवायरनमेंट, दिल्ली तथा विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना (कुशीनगर) द्वारा संयुक्त रूप से किया जा रहा है। इसके संपादक प्रसिद्ध पर्यावरणविद् व सामाजिक कार्यकर्ता प्रो0 राणा प्रताप सिंह हैं। पत्रिका के साथ सह-सम्पादक, उप-सम्पादक तथा सलाहकार मण्डल सदस्य के रूप में देशभर के पर्यावरणविद् व वैज्ञानिक जुड़े हुए हैं। ए4 आकार में आकर्षक रंगीन आवरण सहित 48 पृष्ठों की श्वेत-श्याम रंगों में मुद्रित द्विभाषी पत्रिका में जनोपयोगी व ज्ञानवर्द्धक लेख यथोचित छायाचित्रों के साथ प्रकाशित किये गये हैं। पत्रिका में अधिकाधिक सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, कोई स्थान रिक्त नहीं है। पत्रिका की सहयोग राशि व्यक्तिगत और संस्थागत अलग-अलग है।

पत्रिका नाम : कहार : टिकाऊ विकास के ज्ञान का वाहक (जनसामान्य के लिए बहुभाषाई पत्रिका)
सम्पादक : प्रो0 राणा प्रताप सिंह
सम्पादकीय पता : 247, सेक्टर-2 उद्यान-II, एल्डेको, रायबरेली रोड, लखनऊ-226 025.
ई-मेल : kahaarmagazine@gmail.com
वेबसाइट : www.kahaar.in
सहयोग राशि : एक प्रति रु0 25/- (व्यक्तिगत)
रु0 50/- (संस्थागत)
समीक्षक : प्रो. शशि भूषण अग्रवाल एवं डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी

पुरस्कार/सम्मान/सदस्यता/नियुक्ति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के तीन विद्वानों को 2016 का पद्म पुरस्कार

प्रो0 ओंकार नाथ श्रीवास्तव

प्रो0 ओएन श्रीवास्तव

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विज्ञान संस्थान के भौतिकी विभाग में लाइफटाइम प्रोफेसर के रूप में सेवा दे रहे प्रो0 ओ.एन. श्रीवास्तव को पद्मश्री सम्मान मिला है। वे विश्वविद्यालय के ही छात्र रहे हैं। सन् 1969 में पीएचडी करने के बाद दो साल के लिए न्यूयार्क के कॉर्नेल विश्वविद्यालय चले गये थे। वहाँ से लौटकर 1971 में नेशनल फिजिक्स काउंसिल से जुड़े। सन् 1971 में ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आए और भौतिकी विभाग में अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया। प्रो0 श्रीवास्तव को सन् 1998 में भटनागर फेलोशिप, 2003 में होमी भाभा फेलोशिप और 2014 में भाभा एटॉमिक रिसर्च सेंटर का अवार्ड मिल चुका है। बताया कि 2013 में भारतरत्न स्व. डॉ0 एपीजे अब्दुल कलाम ने इच्छा जाहिर की थी कि काशी को हाइड्रोजन सिटी बनाया जाय। मैं उसी कोशिश में जुटा हूँ।

प्रो0 तपन कुमार लहरी

प्रो0 टी.के. लहरी

प्रख्यात हॉर्ट सर्जन प्रो0 टीके लहरी का नाम मरीजो की सेवा के पर्याय के रूप में जाना जाता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सर सुन्दरलाल चिकित्सालय में प्रो0 लहरी ने मरीजों की सेवा को जीवन का लक्ष्य बनाया हुआ है। उन्होंने विवाह भी अपने काम से ही किया और वही उनकी जीवन संगिनी है। प्रो0 लहरी की एमबीबीएस तक की पढ़ाई कोलकाता में हुई। उन्होंने कार्डियोथोरेसिक सर्जरी में डिग्री लेने के बाद 1974 में आये और यहीं के होकर रह गये। सन् 2003 में सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद से अब वे डिस्टिंगुइश्ड प्रोफेसर के रूप में चिकित्सा विज्ञान संस्थान में सेवा दे रहे हैं। डॉ0 लहरी के बारे में सबसे खास बात यह है कि वे मरीजों के मामले में कोई समझौता नहीं करते। चाहे कितना भी बड़ा आदमी क्यों न हो, जो मरीज कतार में पहले है, उसे पहले देखते हैं। मैं घर से अस्पताल और अस्पताल से घर बस इतना ही सफर तय कर रहा हूँ, वो भी अधिकांशतः पैदल ही। कहा कि भगवान विश्वनाथ की कृपा से जब तक शरीर में शक्ति है, मरीजों की सेवा करता रहूँगा। संस्था के जलपान गृह में ही दिन का भोजन और अपने वेतन से जरूरतमंदों की गुप्तरूप से मदद करना भी उनके जीवन का अंग है।

प्रो0 रामहर्ष सिंह

प्रो0 रामहर्ष सिंह

पद्मश्री सम्मान पाने वाले प्रख्यात काय चिकित्सक एवं राजस्थान आयुर्वेद के कुलपति रह चुके प्रो0 रामहर्ष सिंह ने मरीजों की सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य बना रखा है। चिकित्सा विज्ञान संस्थान के संस्थापक निदेशक रहे डॉ0 उडुप्पा को वह दूसरा महामना मालवीय मानते हैं। प्रो0 सिंह 1955 में यहाँ पढ़ने आये थे। पढ़ाई पूरी करने के बाद यहीं अध्यापन शुरू कर दिया। काय चिकित्सा विभाग से वर्ष 2004 में रिटायर हुए। सन् 2003-2006 तक वे राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय के कुलपति रहे जहाँ उन्होंने आयुर्वेद के उत्थान हेतु अनेक कार्य किया और लोकप्रियता हासिल की। वे पुनः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय लौटकर आये और 2012 तक इमेरिटस प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। इसके बाद से प्रो0 सिंह डिस्टिंगुइश्ड प्रोफेसर के रूप में सेवा दे रहे हैं। प्रो0 सिंह को 2006 और 2015 में राष्ट्रपति पुरस्कार भी मिल चुका है। कहा कि मेरा प्रो0 के.एन. उडुप्पा के निर्देशन में पीएचडी करना महत्वपूर्ण पड़ाव रहा। मरीजों की सेवा ही मेरा उद्देश्य है। ईश्वर से प्रार्थना है कि जीवनभर मैं इसी उद्देश्य की पूर्ति में जुटा रहूँ।

हिन्दी प्रकाशन समिति को राजभाषा पुरस्कार 2016

राजभाषा प्रकोष्ठ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा राजभाषा हिन्दी में उल्लेखनीय कार्य करने हेतु हिन्दी प्रकाशन समिति को वर्ष 2016 का 'राजभाषा पुरस्कार' प्रदान किया गया। दिनांक 28 अक्टूबर, 2016 को के0एन0 उडुप्पा सभागार में आयोजित कार्यक्रम में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय प्रो0 गिरीश चन्द्र त्रिपाठी जी द्वारा समिति के तत्कालीन समन्वयक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल को प्रमाण-पत्र प्रदान किया गया।

समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तक पर लेखक को ह्विटेकर पुरस्कार

हिन्दी प्रकाशन समिति द्वारा सन् 2015 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शताब्दी वर्ष के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तक "भारतीय वैज्ञानिक पुनर्जागरण की आधुनिक महाविभूतियाँ" पर विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा पुस्तक के लेखक श्री जगनारायण को सन् 2015 का ह्विटेकर पुरस्कार प्रदान किया गया।

हिन्दी प्रकाशन समिति की गतिविधियाँ

डॉ. दया शंकर त्रिपाठी*

विज्ञान-गंगा अंक-9 का लोकार्पण

काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के 'अन्तर्राष्ट्रीय पुरातन छात्र - समागम (आईबीएएम-2015)' व 'विज्ञान और धर्म : महामना की दृष्टि' विषयक दो दिवसीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर गत 23 नवम्बर, 2015 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो0 गिरीश चन्द्र त्रिपाठी जी एवं मुख्य अतिथि श्री श्री रविशंकर जी द्वारा संयुक्त रूप से विज्ञान-गंगा अंक-9 का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर हिन्दी प्रकाशन समिति तथा पुरातन छात्र प्रकोष्ठ के समन्वयक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल व पुरातन छात्र प्रकोष्ठ की अध्यक्ष, प्रो0 सुशीला सिंह उपस्थित रहीं। प्रकोष्ठ द्वारा पिछले पाँच वर्षों से विज्ञान-गंगा (ISSN 2231-2455) का निरन्तर प्रकाशन किया जा रहा है। इसका प्रथम अंक सन् 2011 में प्रकाशित हुआ था। यह विज्ञान पत्रिका वर्ष में दो बार प्रकाशित की जाती है। इसमें विज्ञान, कृषि, चिकित्सा और प्रौद्योगिकी से जुड़े लोकप्रिय वैज्ञानिक लेख रोचक व सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशित किये जाते हैं। विज्ञान-गंगा के माध्यम से सामान्यजनों को विज्ञान, कृषि, चिकित्सा और प्रौद्योगिकी से संबंधित जनोपयोगी जानकारियों से लाभान्वित कराया जा रहा है। विज्ञान-गंगा को विज्ञान लोकप्रियकरण, हिन्दी में विज्ञान लेखन का प्रोत्साहन एवं सामाजिक अन्धविश्वास को दूर करने तथा स्वास्थ्य एवं सामाजिक उत्थान के उद्देश्य से प्रकाशित किया जा रहा है। विज्ञान-गंगा अब काफी लोकप्रिय हो गयी है और इसे केन्द्रीय विद्यालय संगठन ने अपने सभी विद्यालयों के पुस्तकालयों के लिए इसकी उपलब्धता अनिवार्य कर दी है। प्रो. अग्रवाल ने कहा कि विज्ञान-गंगा अंक-01 से 05 तक श्वेत-श्याम तथा अंक-06 से बहुरंगी प्रकाशित की जा रही है। पत्रिका में विज्ञान के विविध उपयोगी विषयों पर प्रकाशित सामग्रियाँ राष्ट्रीय स्तर के शिक्षकों, वैज्ञानिकों, अनुसन्धानकर्ताओं, लेखकों तथा छात्र-छात्राओं द्वारा लिखी जाती हैं। वास्तव में इसके सभी अंक संग्रहणीय हैं। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के पूर्व अध्यक्ष ने भी इसके अंकों की काफी सराहना की है। इस पत्रिका के प्रकाशन में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा आंशिक सहयोग भी प्राप्त होता रहता है।

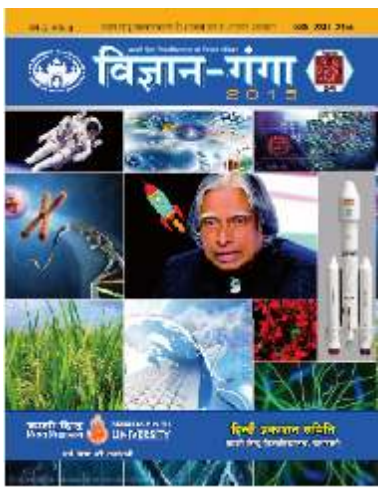

शताब्दी वर्ष के अन्तर्गत प्रकाशित
विज्ञान-गंगा अंक-09

विज्ञान-गंगा अंक-9 का लोकार्पण करते कुलपति प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी एवं आध्यात्मगुरु श्री श्री रविशंकर, साथ में प्रो. शशि भूषण अग्रवाल एवं प्रो. सुशीला सिंह

छात्रोपयोगी व जनोपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन

समिति द्वारा शताब्दी वर्ष के अन्तर्गत जनोपयोगी पुस्तक ''मधुमेह के कारण एवं निवारण'' का प्रकाशन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त पिछले वर्षों में छात्रोपयोगी पुस्तकें ''ओजोन प्रदूषण : वनस्पतियों एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव'', ''पर्यावरण विज्ञान के विविध आयाम'' और ''भारतीय वैज्ञानिक पुनर्जागरण की आधुनिक महाविभूतियाँ'' का प्रकाशित की जा चुकी हैं। पर्यावरण के प्रति रुझान पैदा करने के उद्देश्य से पूर्व में भी दो उपयोगी पुस्तिकाओं ''जल संरक्षण - समस्याएँ एवं समाधान'' तथा ''पर्यावरण सुरक्षा - मूलभूत समस्याएँ एवं निदान'' भी प्रकाशित हुए हैं। ''तरलन : एक सामान्य परिचय'' नामक पुस्तक (शताब्दी वर्ष के अन्तर्गत) मुद्रणाधीन है।

मधुमेह के कारण एवं निवारण (आवरण पृष्ठ)

*हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

संगोष्ठी की चर्चा करते समन्वयक प्रो. शशि भूषण अग्रवाल

शताब्दी वर्ष के अन्तर्गत राष्ट्रीय संगोष्ठी

समिति द्वारा विगत 27 फरवरी, 2016 को ''राष्ट्रभाषा हिन्दी में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा का प्रसार और महामना की दृष्टि'' विषयक एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन विज्ञान संस्थान के संगोष्ठी संकुल सभागार में संपन्न हुआ। इस संगोष्ठी में अनेक राष्ट्र स्तरीय वैज्ञानिकों द्वारा व्याख्यान प्रस्तुत किये गये। आयोजन के मुख्य अतिथि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विशिष्ट प्रोफेसर व तीन विश्वविद्यालयों के पूर्व कुलपति प्रो0 देवेन्द्र प्रताप सिंह थे। उन्होंने अपने उद्‌बोधन में कहा कि अंग्रेजी भाषा ने हमें बहुत पीछे कर दिया है। अंग्रेजों ने यहाँ की शिक्षा और व्यापार को काफी ध्वस्त किया और इसे एक कृषि प्रधान देश बनाकर रख दिया। उन्होंने कहा कि न्यायालयों और वित्त के क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। विशिष्ट अतिथि विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद के प्रधानमंत्री प्रो0 शिवगोपाल मिश्र ने कहा कि हिन्दी में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के लिए लेखन, प्रोत्साहन एवं विस्तार देने की आवश्यकता है। हम इस क्षेत्र में निरन्तर प्रगति कर रहे हैं। विज्ञान परिषद प्रयाग विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी के प्रोत्साहन एवं नये

विशिष्ट अतिथि प्रो0 शिवगोपाल मिश्र को सम्मानित करते प्रो0 उमेश सिंह

विज्ञान लेखकों को तैयार करने में लगातार योगदान कर रहा है। मुख्य वक्ता भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व निदेशक प्रो0 सिद्ध नाथ उपाध्याय ने कहा कि हमें हिन्दी भाषा के अधिक से अधिक प्रयोग की तरफ बढ़ना है। मालवीय जी के प्रयास से ही पहली बार न्यायालयों में हिन्दी में आवेदन स्वीकार किये जाने लगे। उन्होंने अनेक उदाहरणों के साथ मालवीय जी का हिन्दी में विज्ञान के प्रति दृष्टिकोण को पावर प्वाइंट के माध्यम से बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया।

भूगर्भ विज्ञान विभाग के पूर्व आचार्य प्रो0 गिरीश चन्द्र चौधरी ने कहा कि अपनी भाषा में विज्ञान की पढ़ाई होनी चाहिए। जैसा समाज और साहित्य होगा वैसा ही विज्ञान भी हो जायेगा। विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद के डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद मिश्र ने कहा कि विदेशी भाषा के शब्दों को हमें पहले रटना पड़ता है और फिर उसकी अभिव्यक्ति की जाती है। उन्होंने कहा कि आज हम सभी को हिन्दी में विज्ञान पढ़ने की आवश्यकता है और लोगों को हिन्दी के प्रयोग के लिए प्रेरित भी करना चाहिए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, भौतिकी विभाग के प्रो0 आर.पी. मलिक ने कहा कि हमें अपना स्वाभिमान और संस्कृति को देखना है, यही हमें सशक्त बनायेगा। जो विषय हमें विद्यार्थियों के दिलों तक पहुँचानी है उसे हमें मातृभाषा में ही पढ़ाना होगा। डी.एस.टी. अन्तर्विषयक गणितीय अध्ययन केन्द्र के समन्वयक प्रो0 उमेश सिंह ने कहा कि क्लिष्ट भाषा की वजह से हमारे ज्ञान तिरोहित हो गये, हमें उनसे बचना है। हमारे लिए हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसके माध्यम से हम ज्ञान को संरक्षित कर सकते हैं। विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद के सचिव डॉ0 देवव्रत द्विवेदी ने कहा कि इस विश्वविद्यालय के संस्थापक मालवीय जी पाँच बार विज्ञान परिषद प्रयाग के सभापति रहे और उन्होंने उस समय के शीर्षस्थ विद्वानों को खोज-खोजकर परिषद से जोड़ा।

वनस्पति विज्ञान विभाग के डॉ0 के.डी. पाण्डेय ने अपनी अन्टार्टिका यात्रा की चर्चा करते हुए वहाँ पर बढ़ रहे प्रदूषण पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने बताया कि अन्टार्टिका पर रक्षा विभाग से जुड़े लोग मातृभाषा में ही वार्तालाप करते थे। सिविल इंजीनिरिंग विभाग आईआईटी के विभागाध्यक्ष प्रो0 देवेन्द्र मोहन ने हिन्दी की वर्तमान स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि गलत अंग्रेजी बोलने से अच्छा है कि सही हिन्दी बोली जाये, तभी हिन्दी का भला हो सकेगा। कृषि विज्ञान संस्थान के इमेरिटस प्रोफेसर जे.पी. लाल ने कहा कि मनुष्य अपने भावों को केवल मातृभाषा में ही व्यक्त कर सकता है। बताया कि महामना एक महान गौ भक्त थे। इसीलिए उन्होंने विश्वविद्यालय में कृषि शिक्षा के साथ-साथ गो-पालन और पशुपालन को भी शुरू किया। द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान के प्रो0 वी.के. जोशी ने आयुर्वेद में जीवनयापन की विधि को बतलाते हुए कहा कि घरेलू मसाले में खायी जाने वाली पिप्पली में ट्यूबरकुलोसिस (तपेदिक) से बचने का रसायन पाया जाता है, वहीं हल्दी में घावों को शीघ्र भरने का रसायन विद्यमान है। उन्होंने गंगा पर एक स्वरचित कविता भी सुनायी।

संगोष्ठी का शुभारम्भ अतिथियों द्वारा मालवीय प्रतिमा पर माल्यार्पण और कुलगीत के साथ हुआ। समिति के समन्वयक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल ने समिति की उपलब्धियों एवं संगोष्ठी के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला और संगोष्ठी से नये तथ्य एवं मार्गदर्शन मिलने की उम्मीद जाहिर की।

इस अवसर पर संयोजक प्रो0 अग्रवाल ने मंचासीन अतिथियों एवं व्याख्यानदाताओं को प्रतीक पुष्प, स्मृतिचिन्ह एवं अंगवस्त्रम् प्रदान कर सम्मानित किया। संगोष्ठी का संचालन डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ0 देवेश कुमार गुप्त ने किया। इस अवसर पर प्रो0 वी.के. सिंह, प्रो0 एन.के. दूबे, प्रो0 आर.एन. खरवार, प्रो0 जितेन्द्र पाण्डेय, डॉ0 दीनानाथ सिंह, डॉ. संजय कुमार तिवारी, डॉ. प्रेम प्रकाश सोलंकी, श्री इन्द्रसेन सिंह, डॉ0 निवेदिता चौधरी, डॉ0 अमित कुमार मिश्र, आदित्य आभा सिंह, स्वाभा तक्षक सहित अनेक शिक्षकों एवं शोधछात्रों ने प्रतिभागिता की।

निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन

समिति द्वारा विगत 06 फरवरी, 2016 को ''स्वच्छ भारत व हरित भारत अभियान और जनसहभागिता'' विषयक निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

इसमें विज्ञान संस्थान के स्नातकोत्तर गणित के छात्र श्री रविन्द्र सिंह प्रथम, स्नातकोत्तर पर्यावरण विज्ञान की छात्रा सुश्री रीतू रानी द्वितीय, स्नातकोत्तर पर्यावरण विज्ञान की छात्रा सुश्री हेमलता तृतीय, भौतिकी के शोधछात्र श्री हर्षित अग्रवाल और वनस्पति विज्ञान के शोधछात्र श्री अमित कुमार मिश्र प्रोत्साहन पुरस्कार हेतु चुने गये। इन सभी प्रतिभागियों को समिति के संयोजक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल एवं विशिष्ट अतिथि प्रो0 शिवगोपाल मिश्र द्वारा प्रमाण-पत्र, स्मृतिचिन्ह एवं हिन्दी में विज्ञान पुस्तकें प्रदान की गयीं।

विज्ञान परिषद प्रयाग में लोकप्रिय व्याख्यान

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ एवं विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 21-22 नवम्बर, 2016 को ''हिन्दी में विज्ञान लेखन'' विषयक दो दिवसीय कार्यशाला आयोजित किया गया। इस कार्यशाला में डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी द्वारा आमंत्रित वक्ता के रूप में ''हिन्दी में विज्ञान लेखन के कुछ महत्वपूर्ण पहलू'' पर एक लोकप्रिय व रोचक व्याख्यान प्रस्तुत किया गया।

चीनी का ज्यादा सेवन याद्दाश्त कमजोरी का कारण

ज्यादा शर्करायुक्त खाना न केवल मोटापे को बढ़ाता है, बल्कि इसका मस्तिष्क पर भी नाकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह अध्ययन ऑस्ट्रेलिया की यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू साउथ वेल्स के शोधकर्ताओं ने किया। ज्यादा शर्करा लेने से दिमाग उसी तरह प्रभावित होता है, जितना तनाव से। एक दिन में 50 ग्राम से ज्यादा शक्कर का सेवन दिमाग की कोशिकाओं को क्षतिग्रस्त कर सकता है। इससे व्यक्ति की याद्दाश्त कमजोर हो सकती है। शोधकर्ता जयंथी मनियम और मार्गेट मोरिस का कहना है कि शर्करायुक्त पेय पदार्थ जैसे कोला और लेमोनेड हमारी कमर और दाँतों के लिए हानिकारक तो है हीं, पर एक नए अध्ययन में हमने पाया कि शर्करायुक्त पेय पदार्थों का ज्यादा सेवन हमारे दिमाग को भी नुकसान पहुँचाता है। शर्करायुक्त पेय पदार्थ या खाद्य पदार्थ दिमाग के उस हिस्से पर प्रभाव डालते हैं, जो व्यवहार व याद्दाश्त से संबंधित है। इस हिस्से को हिप्पोकैम्पस कहा जाता है। दुर्घटना, चोट लगने, किसी प्रियजन की मृत्यु, प्राकृतिक आपदा या शारीरिक और मानसिक रूप से शोषण होने से याद्दाश्त या व्यक्ति के व्यवहार जैसा परिवर्तन होता है, वैसा ही परिवर्तन ज्यादा शर्करा युक्त पदार्थों के सेवन से भी होता है।

शोधकर्ताओं ने चूहों पर 15 सप्ताह तक चूहों के व्यवहार का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला। उन्हें जन्म के बाद नौ दिन तक एक बंद जगह पर रखा। वहीं कुछ चूहों को शर्करायुक्त भोजन दिया गया और कुछ चूहों को स्वतंत्र छोड़ दिया गया। देखा कि स्वतंत्र रहने वाले चूहे अन्य दोनों तरह के चूहों से ज्यादा स्वस्थ रहे। इसके बाद बंद जगह पर रहने वाले चूहों और शर्करायुक्त भोजन खाने वाले चूहों के मस्तिष्क का अध्ययन किया। देखा कि दोनों तरह के चूहों के मस्तिष्क का याद्दाश्त व व्यवहार से संबंधित हिस्सा समान रूप से प्रभावित हुआ।

मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव

ज्यादा शर्करा के सेवन से वयस्क होने पर मनोरोग भी हो सकते हैं। इसके साथ ही तंत्रिकाओं के विकास से संबंधित जीन न्यूरोड 1 का विकास भी कम होता है, जिससे व्यक्ति के दिमाग का विकास प्रभावित होता है और वह कम उम्र में ही अवसाद, चिंता जैसे मनोरोगों का शिकार हो सकता है।

जानकारी से भी पुरानी निकली सिंधु घाटी की सभ्यता

माना जाता है कि सिंधु घाटी सभ्यता 5500 वर्ष पुरानी है, पर अब इसके और भी प्राचीन होने के प्रमाण मिले हैं। विज्ञान पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित एक रिपोर्ट बताती है कि सिंधु घाटी सभ्यता 8000 वर्ष पुरानी है। आईआईटी-खड़गपुर और भारतीय पुरातत्व विभाग ने इस संबंध में संयुक्त रूप से यह खोज की है जिसमें इसके मिस्र और मेसोपोटैमियन सभ्यता से भी पुराना होने के प्रमाण मिले हैं।

सिंधु घाटी सभ्यता दुनिया की सर्वाधिक प्राचीन तीन सभ्यताओं में से एक है। इसका फैलाव दक्षिण एशिया के उत्तर-पश्चिमी हिस्से में अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत तक था। यहाँ भी कुल आबादी 50 लाख थी।

मेसोपोटैमिया को दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता माना जाता है, परन्तु अब यह बदल गया। यह सभ्यता 6500 से 3100 ईसा पूर्व थी। इसका विस्तार मौजूदा समय के ईराक, सीरिया, कुवैत और तुर्की की सीमा तक था। मिस्र सभ्यता के 7-3 हजार ईसा पूर्व होने के प्रमाण हैं। नई खोज सिंधु घाटी को सबसे प्राचीन सभ्यता बता रही है। यह खोज इतिहास को लेकर नई सोच और समझ सामने लाने वाली है।

महान देश भारत

डॉ0 सरोज शुक्ला*

विश्व क्षितिज पर उभर रहा है, महान देश हमारा।
औद्योगिक स्वास्थ्य, सुरक्षा हो, हर भारतवासी का नारा।
कीर्तिमानों की शृंखला रचकर, बनाएँ नया इतिहास।
हमजोली बन अपनाओ सुरक्षा, ना हो जीवन ह्रास।
वस्त्र, भोजन और पानी, है दैनिक जीवन के अंग।
हर दिन पहने सुरक्षा उपकरण, पूरी नैतिकता के संग।
इर्द-गिर्द हमारे, हैं मशीनों और औजारों की दृष्टि।
सतर्क, सुरक्षित करो हर कार्य, रखो ऐसी दूरदृष्टि।
असुरक्षित कार्य और दूषित वातावरण, है दुर्घटनाओं के मूल कारण।
सजगता, सुरक्षा अभ्यास और प्रशिक्षण, है दुर्घटना के श्रेष्ठ निवारण।
सूरज देता रोशनी, चंदा देता चाँदनी,
प्रकृति देती प्राण वायु और निर्मल पानी, हैं सबसे श्रेष्ठ दानी।
प्रगति की इस होड़ में, प्रकृति करती हाहाकार।
हरियाली और वृक्ष ही, है धरती के सुन्दर अलंकार।
हरे-भरे वृक्षों पर कुल्हाड़ी का प्रहार, पर्यावरण में हो रहा ये कैसा संहार।
सूखी धरती कर रही पुकार, वृक्ष लगाकर मेरा करो शृंगार।
यदि खिलेंगे फूल और महकेंगे उपवन, तो स्वस्थ रहेगा सबका तन-मन।
लक्ष्य हमारा संरक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, अपनाये भारत का हर जन-जन।।

*628, के.ए./94 कुमांचल नगर, इंदिरा नगर के पास, लखनऊ-226015.

ISSN 2231 - 2455

हिन्दी प्रकाशन समिति (भौ.प्र.), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अद्यतन प्रकाशन

1. **मधुमेह के कारण एवं निवारण**
ए 4 आकार में रंगीन आकर्षक आवरण सहित कुल 72 पृष्ठों की पुस्तक
लेखक : डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी
सम्पादन : प्रो. शशि भूषण अग्रवाल
प्रकाशन वर्ष : 2016
ISBN 978-81-929746-4-4
मूल्य : रु. 60.00 (रुपये साठ मात्र)

2. **भारतीय वैज्ञानिक पुनर्जागरण की आधुनिक महाविभूतियाँ**
ए 4 आकार में रंगीन आकर्षक आवरण सहित कुल 108 पृष्ठों की पुस्तक
लेखक : जगनारायण
सम्पादन : प्रो. शशि भूषण अग्रवाल
प्रकाशन वर्ष : 2015
ISBN 978-81-929746-5-1
मूल्य : रु. 160.00 (रुपये एक सौ साठ मात्र)

3. **ओजोन प्रदूषण : वनस्पतियों एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव**
ए 4 आकार में रंगीन आकर्षक आवरण सहित कुल 86 रंगीन पृष्ठों की पुस्तक
लेखक : प्रो. शशि भूषण अग्रवाल एवं सुश्री निवेदिता चौधरी
प्रकाशन वर्ष : 2014
ISBN 978-81-929746-3-7
मूल्य : रु. 200.00 (रुपये दो सौ मात्र)

4. **पर्यावरण विज्ञान के विविध आयाम**
ए 4 आकार में रंगीन आकर्षक आवरण सहित कुल 208 पृष्ठों की पुस्तक
लेखक : डॉ. दया शंकर त्रिपाठी
सम्पादन : प्रो. शशि भूषण अग्रवाल
प्रकाशन वर्ष : 2013
ISBN 978-81-929746-2-0
मूल्य : रु. 160.00 (रुपये एक सौ साठ मात्र)

5. **जल संरक्षण : समस्याएँ एवं समाधान**
ए 4 आकार में रंगीन आकर्षक आवरण सहित (23 उपयोगी चित्रों एवं 5 तालिकाओं के साथ) कुल 28 पृष्ठों की पुस्तिका।
लेखन एवं सम्पादन :
प्रो. शशि भूषण अग्रवाल एवं डॉ. दया शंकर त्रिपाठी
प्रकाशन वर्ष : 2012, ISBN 978-81-929746-1-3
मूल्य : रु. 30.00 (रुपये तीस मात्र)

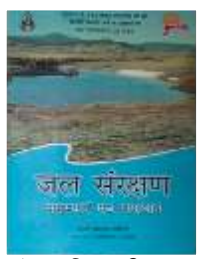

6. **पर्यावरण सुरक्षा : मूलभूत समस्याएँ एवं निदान**
20.5 × 13.5 सेमी. आकार में रंगीन आकर्षक आवरण सहित कुल 20 पृष्ठों की पुस्तिका
संकलन : डॉ. दया शंकर त्रिपाठी
सम्पादन : प्रो. शशि भूषण अग्रवाल
प्रकाशन वर्ष : 2011, ISBN 978-81-929746-0-6
मूल्य : रु. 15.00 (रुपये पन्द्रह मात्र)

7. **विज्ञान-गंगा** (अर्द्धवार्षिक विज्ञान पत्रिका)
(ISSN 2231 - 2455)
रंगीन आकर्षक आवरण सहित ए 4 आकार में कुल 128 रंगीन पृष्ठों की पत्रिका, सन् 2011 से प्रकाशित
अब तक 9 अंकों का प्रकाशन हो चुका है।
सम्पादक : प्रो. शशि भूषण अग्रवाल
मूल्य : रु. 100.00 (रुपये एक सौ मात्र) प्रति अंक

* एक वर्ष (दो अंक) के लिए वार्षिक सदस्यता शुल्क डाक व्यय सहित रु. 275.00 देय है। एक अंक के लिए रजिस्टर्ड पार्सल का व्यय रु. 36.00 देय है। केन्द्रीय विद्यालय के पुस्तकालयों के लिए क्र.सं. 1 से 4 तक के विक्रय मूल्य पर 15 प्रतिशत की छूट दी जाती है, परन्तु डाक व्यय अतिरिक्त देय है।

पुस्तकें प्राप्त करने के लिए सभी भुगतान डिमाण्ड ड्राफ्ट के माध्यम से 'कुलसचिव, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के नाम 'वाराणसी' में देय होना चाहिए अथवा समन्वयक के पते पर मनीआर्डर द्वारा भी प्रेषित किया जा सकता है।

सम्पर्क करें :समन्वयक, हिन्दी प्रकाशन समिति (भौ.प्र.), द्वितीय तल, हिन्दी भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221 005
दूरभाष : 0542-6701424, 2307342 • **E-mail :** hindipublications.bhu@gmail.com

प्रकाशक
हिन्दी प्रकाशन समिति (भौतिकी प्रकोष्ठ)
द्वितीय तल, हिन्दी भवन
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार) के
आंशिक वित्तीय अनुदान द्वारा प्रकाशित

मालवीय जी के जनोपयोगी सदुपदेश

- परमेश्वर को प्रणाम कर सब प्राणियों के उपकार के लिए बुराई करने वालों को दबाने और दण्ड देने के लिए, धर्म स्थापना के लिये धर्म के अनुसार संगठन कर गाँव-गाँव में सभा करनी चाहिए। गाँव-गाँव में पाठशाला खोलनी चाहिए। गाँव-गाँव में अखाड़ा खोलना चाहिए और पर्व-पर्व पर मिलकर बड़ा उत्सव मनाना चाहिये।
- सब भाइयों को मिलकर अनाथों की, विधवाओं की, मन्दिरों की और गौ माता की रक्षा करनी चाहिए और इन सब कामों के लिए दान देना चाहिये।
- स्त्रियों का सम्मान करना चाहिये।
- दुखियों पर दया करनी चाहिये।
- उन जीवों को नहीं मारना चाहिए, जो किसी पर चोट नहीं करते।
- मारना उनको चाहिये, जो आततायी हों अर्थात् जो स्त्रियों पर या किसी दूसरे के धन, धर्म या प्राण पर वार करते हों। यदि ऐसे लोगों को मारे बिना अपना या दूसरों का धर्म, प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है।
- स्त्रियों को भी, पुरुषों को भी निडरपन, सच्चाई, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, धीरज और क्षमा का अमृत के समान सदा सेवन करना चाहिये।
- इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि भले कर्मों का फल भला और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है।
- घट-घट में बसने वाले भगवान विष्णु-सर्वव्यापी ईश्वर का सुमिरन सदा करना चाहिये, जिसके समान दूसरा कोई नहीं है, जो एक ही है और अद्वितीय है।
- सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओं को चाहिए कि अपने-अपने विशेष धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे के साथ प्रेम और आदर बरतें।
- अपने विश्वास में दृढ़ता, दूसरे की निन्दा का त्याग, मतभेद में (चाहे वह धर्मसम्बन्धी हो या लोकसम्बन्धी) सहनशीलता और प्राणिमात्र से मित्रता रखनी चाहिये।
- जो काम अपने को बुरा या दुखदायी जान पड़े उसको दूसरे के साथ मत करो।
- हर एक को उचित है कि वह चाहे कि सब लोग सुखी रहें, सब निरोग रहें, सबका भला हो, कोई दुःख न पावे। प्राणियों के दुःख को दूर करने में तत्पर यह दया बलवानों की शोभा है।

सहयोग राशि अधिकतम ₹100/- मात्र